मर्य्यादा-पुरुषोत्तम

भगवान् रामचन्द्र जी का जीवन

(वास्तविक रूप में)

पं० मुलकराज शर्म्मा, "आनन्द"

१९४९

मूल्य ५।)

प्रकाशक

पं० मुलकराज शर्म्मा आनन्द

'शर्म्मा साहित्य भण्डार', देहली।

भूतपूर्व—दि नौवलिस्ट एजेंसी,

कृष्णनगर, लाहौर।

मुद्रक

बाल कृष्ण, एम०ए०,

युगान्तर प्रेस, मोरी गेट,

देहली।

भूमिका

"राम" नाम आज जगद्विख्यात है। लोग "ओ३म्" को भूल गये हैं, "राम" के जन्मदाता को भूल गये हैं, परन्तु "राम" को नहीं भूले। सहस्रों वर्ष व्यतीत हो गये, परन्तु यह नाम आज भी लोगों की जिह्वा से उसी प्रेम से निकलता है जिससे सहस्रों वर्ष पूर्व निकला करता था। इस नाम को गृह २ में फैलाने का श्रेय आदि-कवि वाल्मीकि जी को है, जिन्होंने अपनी विचित्र लेखनशैली से "राम" को इतना सर्वप्रिय बना दिया कि यह बच्चे २ की जिह्वा पर बैठ गया।

परन्तु समय आया जब संस्कृत साहित्य का सूर्य मध्याह्न से उतर कर पश्चिम को चलने लगा, तो लोग "पौलस्त्य वध"* को भूल गये। फिर आधुनिक काल में जब महात्मा तुलसीदास जी ने हिन्दी भाषा की समधुर और ललित वाणी में "रामचरित मानस" रचा तो यह इतना जनप्रिय हो गया कि आज हिन्दु

---

* दशग्रीव रावण पुलस्त ऋषि के वंशज थे इसलिये वाल्मीकि जी ने अपने महाकाव्य का नाम पहले "पौलस्त्य वध" रक्खा था, पीछे लोग इस नाम को भूल गये, और वह ग्रन्थ "रामायण" के नाम से विख्यात हुआ।

मात्र के घरों में "रामायण" किसी न किसी रूप में विद्यमान है।

महर्षि वाल्मीकि ने "पौलस्त्य वध" की कथा नारद मुनि से सुनी, जिसका उनकी रामायण के प्रथम सर्ग में वर्णन है। यह कथा जो पद्म पुराण में भी कुछ इन्हीं शब्दों में कही गई है, संक्षिप्त है पर परिपूर्ण, और वह यह है :—

"महाराज दशरथ ने अपनी प्रजा के हित को सन्मुख रख कर अपने सर्वगुणसम्पन्न ज्येष्ठ पुत्र को युवराज बनाने का निर्णय किया। उस अवसर पर महाराज की प्रिय महारानी केकयी ने, जिसको महाराज ने पहले किसी अवसर पर दो वर दिये थे, राजतिलक का प्रबन्ध देख राम के लिये वनवास और भरत के लिये राज्य मांगा। तब महाराज ने धर्मपाश में बँधे होने के कारण रामचन्द्र को वनवास दिया।

रामचन्द्र पिता की आज्ञा से, केकयी को प्रसन्न करने के लिये, वन को चले। उन्हें जाते देख कर रानी सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण, जो राम को अति प्रिय थे, भ्राता के साथ हो लिये। उन दोनों को चलते देख राजा जनक की पुत्री सीता, जो साक्षात् देवमाया की भांति सर्वगुणसम्पन्न थी, उनके पीछे ऐसे चली जैसे चन्द्र देव के पीछे रोहिणी नक्षत्र चलता है।

इन तीनों के पीछे कुछ दूर तक नगर के लोग और राजा दशरथ गये और थोड़ी दूर जाकर लौट आये।

रामचन्द्र जी ने गङ्गा तट पर शृङ्गवेरपुर पहुँच कर अपने सारथी को लौटा दिया और निषादों के नेता गुह से मिले। इस भान्ति वह तीनों, वनों और बड़ी २ नदियों को लांघ कर, भरद्वाज मुनि के बताने पर चित्रकूट में आये। वहां पर एक सुन्दर कुटि बना कर देव गन्धर्वों की भान्ति सुखपूर्वक वास करने लगे।

उधर अयोध्या में महाराज दशरथ पुत्रशोक में "हाय राम" "हाय राम" पुकारते स्वर्ग सिधार गये। तत्पश्चात् वशिष्ठ आदि मन्त्रियों ने भरत को राज्य देना चाहा, पर उसने मना कर दिया और चित्रकूट जाकर रामचन्द्र को लौटाने का यत्न किया। रामचन्द्र ने पिता की आज्ञा को दृष्टि में रखते हुये राज्य की इच्छा न की, और भरत से कहा "राज्य करना तुम्हारा धर्म है"। जब यह बात भरत ने न मानी तो राज्य सिंहासन पर रखने के लिये अपनी पादुका देकर रामचन्द्र ने उसे विदा किया।

भरत रामचन्द्र जी के चरणों में सिर नवा कर वापिस लौटे, और लौट कर नन्दी ग्राम नामक गांव में रह कर राज्य प्रबन्ध करने लगे। भरत के लौट जाने पर रामचन्द्र जी ने सोचा कि यहां रहने पर शायद फिर कोई अयोध्यावासी हमारे पास आ जाय, इसलिये यहां रहना उचित नहीं। यह सोच कर उन्होंने दण्डक नामक वन की ओर प्रस्थान किया। वहां विराध नामक राक्षस को मार कर शरभंग, सुतीक्ष्ण, अगस्त और अगस्त जी के भ्राता आदि ऋषियों से मिले। अगस्त ने इन्द्रधनुष, खड्ग और असीम बाणों से भरा हुआ तूणीर उन्हें दिया। यहां पर ऋषि लोग राक्षसों से दुःखी होकर उनके पास आये, और रामचन्द्र जी ने दण्डकारण्य को राक्षसहीन करने की प्रतिज्ञा की। कुछ समय पश्चात् रामचन्द्र जी ने जनस्थान नामी प्रदेश में रहने वाली काम रूपिणी शूर्पणखा नामी राक्षसी को कुरूप किया। इस राक्षसी के कहने से युद्ध के लिये आये हुये खर, त्रिशरा और दूषण राक्षस अपने चौदह सहस्र अनुयायियों सहित रामचन्द्र जी के हाथ से मारे गये।

अपनी जाति का वध सुनकर रावण क्रोध में आया। उसने मारीच को अपना साथी बनाना चाहा। मारीच ने उसे बहुत

समझाया और कहा कि "बलवान के साथ शत्रुता करना उचित नहीं", पर रावण ने उसकी एक न मानी। उस मायावी के द्वारा उसने राम और लक्ष्मण को आश्रम से दूर कराया। तब सीता को हर कर जटायु नामक गृद्ध की हत्या की। गृद्ध को मरा देख और सीता का हरण सुन रामचन्द्र दुःखी होकर विलाप करने लगे। इसी दुःख में उन्होंने जटायु का अन्त्येष्टि संस्कार किया।

फिर सीता को ढूंढते २ भीषण आकृति वाले कबन्ध राक्षस को मार कर स्वर्ग भेजा। उस राक्षस ने मरते समय राम से कहा कि "आप तपस्विनी शबरी के पास जायं।"

राम उस तपस्विनी के पास गये तो उसने सम्मान पूर्वक उनकी पूजा की। फिर वह पम्पा तट पर हनुमान से मिले। हनुमान के कथन से उन्होंने सुग्रीव से भेंट की और अपनी विपत्ति की बात कही। सुग्रीव ने उसे सुन कर अग्नि को साक्षी रखते हुये राम से मित्रता की और अपना दुःख राम से कहा। तब कृपा-सिन्धु राम ने बालि को मारने की प्रतिज्ञा की। सुग्रीव ने बालि के बल का राम से वर्णन किया, उसे रामचन्द्र के बल में सन्देह था, इसलिये बालि की शक्ति वर्णन करते हुये दुन्दभी नामक राक्षस के पिंजर को उन्हें दिखाया। तब रामचन्द्र जी ने मन्द-मुस्कान से उस पिंजर को पांव की ठोकर मारी तो वह दश योजन दूर जा पड़ा। फिर सात वृक्षों और पर्वत को एक ही बाण से बेंध दिया।

तब सुग्रीव प्रसन्न होकर किष्किन्धा के द्वार पर जा कर गर्जा। उसकी गर्ज सुन कर बालि तारा को समझा कर घर से निकला और सुग्रीव के साथ युद्ध में प्रवृत्त हुआ। रामचन्द्र ने एक ही तीर से बालि को मार कर उसका राज्य सुग्रीव को दे दिया।

तब वानरराज सुग्रीव ने सीता को ढूंढ़ने के लिये वानरों को चारों ओर भेज दिया। महाबली हनुमान सम्पाति नामी गृद्ध के कथन से सौ योजन खारी सागर को पार करके लंका पुरी में पहुँचे। वहां अशोक वाटिका में ध्यान करती हुई सीता को देख कर उसने रामचन्द्र की मुद्रा उसे दी, और उनका वृत्तान्त बताकर उसे सान्त्वना दी। फिर वाटिका के द्वार को तोड़ डाला। इस पर युद्ध हुआ, तो सेना के पांच सेनापतियों, मन्त्रियों के सात पुत्रों और अक्षय कुमार को मार कर उसने स्वयं अपने को ब्रह्मास्त्र के द्वारा बंधन में डाला। तत्पश्चात् सीता के निवास स्थान को छोड़ शेष लङ्का को जला कर समुद्र के उस पार आया, और रामचन्द्र जी को सब कुछ कह सुनाया। रामचन्द्र जी ने सुग्रीव को साथ लेकर सागर तट पर आकर तीव्र बाणों से समुद्र में हलचल मचा दी.........फिर नल से समुद्र पर सेतु बंधवाया और लङ्का पहुँचे। वहां रावण को मार कर सीता को पाया, पर लज्जा अनुभव करते हुए सबके सन्मुख उन्होंने सीता को कठोर शब्द कहे। सीता ने उन शब्दों को सहन न करके अग्निप्रवेश किया। फिर अग्नि के वचन से सीता को पाप रहित जान राम ने उसे ग्रहण कर लिया। रामचन्द्र के उस महान् कार्य से देवता, ऋषि ही नहीं, संसार भर के लोग प्रसन्न हुये, और लोगों ने रामचन्द्र की प्रशंसा की। रामचन्द्र विभीषण को राज्य देकर प्रसन्न हुये। फिर देवताओं से आशीर्वाद लेकर विमान पर सवार होकर अयोध्या को लौट आये। मार्ग में उन्होंने भरद्वाज जी के आश्रम से भरत के पास हनुमान को भेजा, और बीती घटनाओं का वर्णन करते हुये सुग्रीव के साथ पुष्पक विमान पर चढ़ कर नन्दी ग्राम पहुँचे। भरत ने श्रद्धा से स्वागत किया और राज्यसिंहासन अर्पण किया। अब रामचन्द्र जी इन्कार न कर सके। उस रात अयोध्या में घर २ दीपमाला हुई।"

इस सामग्री की नींव पर "पौलस्त्य वध" का भवन निर्माण हुआ, और फिर "पौलस्त्य वध" और "अन्य राम कथाओं को सन्मुख रखकर" भक्तशिरोमणि तुलसीदास जी ने "रामचरित मानस" की रचना की। इसका वर्णन उन्होंने "मानस" के बाल काण्ड के चतुर्थ और सप्तम श्लोक में किया है।

"धनुर्धारी राम" की कथा भी इसी सामग्री से निर्मित हुई है। अन्तर केवल दृष्टिकोण का है। "पौलस्त्य वध" के रचयिता महर्षि वाल्मीकि भगवान् रामचन्द्र जी को आदर्श रखकर संसार के सन्मुख एक ऐसा उदाहरण रखना चाहते थे जिसे भावी गृहस्थ और नरपति कार्य रूप में परिणत करें। इसी भांति वह भगवती जानकी सीता को पतिव्रतधर्म की अद्वितीय मूर्ति के स्थान पर दिखाना चाहते थे। इसमें वह कहां तक सफल हुये हैं यह कहने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि आज विश्व में एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं जिसे माता सीता के चरित्र पर सन्देह करने का साहस हो। भक्तशिरोमणि तुलसीदास रामचन्द्र जी के रूप में सर्वव्यापक ईश्वर की सगुण और साकार मूर्ति को देखते थे। और उन्होंने "रामचरितमानस" के द्वारा उस भांकी को जो उनकी दृष्टि के सन्मुख थी सारे विश्व को दिखाने का प्रयत्न किया। निस्संकोच हो कर यह कहा जा सकता है कि आज जगत् में राम भक्तों की गणना अन्य मतवादियों से किसी प्रकार भी कम नहीं है। इस सफलता पर "रामचरितमानस" का लेखक गर्व कर सकता है।

इन दोनों महाकवियों के चरणों में शीश झुकाकर मैं यह लिखने पर विवश हूं कि आज हम जिस समय में से गुज़र रहे हैं उसमें राज्य और राजा का आदर्श कोई मूल्य नहीं रखता, क्योंकि संसार राजभक्ति को त्याग कर लोकराज (Democracy) की ओर जा रहा है। न ही रामभक्ति के लिये किसी परिश्रम की आवश्यकता है क्योंकि यह सब उद्देश्य पूर्ण हो रहे और हो चुके हैं। "धनुर्धारी राम" में भगवान रामचन्द्र जी के जीवन का जो दृश्य उजागर किया गया है वह उनकी देशभक्ति है। महर्षि वाल्मीकि, और भक्तशिरोमणि तुलसीदास जी महाराज राम के जीवन के इस पहलू की ओर से अनभिज्ञ नहीं थे, परन्तु उनकी दृष्टि के सन्मुख वह आदर्श रूप में उपस्थित नहीं थे। इसलिये उन्होंने उसे उभारने की आवश्यकता न समझी। मैं इसे पाठकों के सन्मुख रखकर उनका ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूं।

महर्षि वाल्मीकि ने अपनी कथा में कहीं २ अमानुषीय शक्तियों का आश्रय लिया है, और भक्तशिरोमणि तुलसीदास तो रामजी के रूप में परमात्मा के दर्शन ही करते थे। इसलिये उन दोनों की पुस्तकों में इन बातों की झलक विद्यमान है। मेरे विचार में इस की आवश्यकता न थी, क्योंकि रामजी का जीवन एक खुली पुस्तक था, जो इन आश्रयों का आश्रित नहीं था।

: २ :

रामायण के उत्तरकांड के सम्बन्ध में, जिसमें सीता जी के पुनर्वनवास की कथा वर्णित है, विद्वानों को भारी सन्देह है,

क्योंकि नारद जी की वर्णित कथा जिस पर "पौलस्त्य वध" आश्रित है इस सम्बन्ध में सर्वथा मौन है। इसलिये यह सन्देह सत्य प्रतीत होता है कि यह वाल्मीकि जी की वास्तविक पुस्तक में नहीं था। उसे उस पवित्र पुस्तक में सम्मिलित करने वाले ने निस्सन्देह जगत् के सम्मुख यह शिक्षाप्रद कथा रखकर उपदेश दिया है, कि राजा को लोकमत का पूर्ण सम्मान करना चाहिये। परन्तु साथ ही शायद अनजाने से रामचन्द्र जी के चरित्र पर यह अमिट कलंक भी लगा दिया है कि यद्यपि सीता का चरित्र निष्कलङ्क था, और रामचन्द्र जी को स्वयं उस पर कोई सन्देह नहीं था, और लंका में अग्निपरीक्षा में उसके पतिव्रत धर्म की बलवान साक्षी मिल चुकी थी, फिर भी उन्होंने उसे निर्वासित किया, और वह भी उस दशा में जबकि वह गर्भ के अन्तिम दिवस गिन रही थी और उसे वनवास देकर उसकी रक्षा का कोई प्रबन्ध न किया!

रामचन्द्र जी के चरित्र को जानते हुए कोई बुद्धिमान् पुरुष इस बात को स्वीकार नहीं कर सकता। इसलिये इस कथा को वाल्मीकिजी के नाम मढ़ने वाले ने उनके और रामचन्द्रजी के साथ अन्याय किया है। इसलिये मैंने उसे जाली मानते हुए धनुर्धारी राम की गाथाओं में सम्मिलित करने से इन्कार कर दिया है।

: ३ :

श्रीमद्भगवद्गीता के दशम अध्याय के इकत्तीसवें श्लोक में नाना विभूतियों का वर्णन करते हुये भगवान् कृष्ण चन्द्र कहते हैं :—

"रामः शस्त्रभृतामहम्"

अर्थात्—"शस्त्रधारियों में मैं राम हूँ।" यह शब्द कह कर भगवान् ने गागर में सागर को बंद कर दिया है। वह राम की पितृ-भक्ति की प्रशंसा नहीं करते, वह उनके आदर्श राजा होने पर नहीं रीझते, उनकी दृष्टि में रामचन्द्र जी के जीवन में यदि कोई अच्छाई है, जिसे वह जगत् के सन्मुख रख कर प्रसन्न होते हैं, तो वह उनका "शस्त्रधारी" होना है। "शस्त्रधारी" शब्द का प्रयोग इस स्थल पर हथियार धारण करने वाले के अर्थ में नहीं किया गया इसका अर्थ "धनुर्धारी" है, जिसकी व्याख्या करते हुए इस शब्द के अर्थ एक ऐसे योधा के किये जा सकते हैं जो शत्रु के सन्मुख अपनी शक्तियों को एक सूत्र में पिरोना जानता हो, और जो संगठन (Organisation) की शक्ति रखता हो। "शस्त्रधारियों में राम" वही हो सकता है जिसे श्रीकृष्ण अपना आप कहने में गौरव समझते हैं।

श्री कृष्ण चन्द्र जी ने राम के जो गुण वर्णन किये हैं उन्हें दृष्टि के सन्मुख रखकर मैंने रामचरित्र का अध्ययन किया और उस स्वाध्याय का परिणाम "धनुर्धारी राम" के पन्नों में पाठकों को मिलेगा।

महारानी केकयी के साथ रामचरित्र के लेखकों ने जो अन्याय किया है वह विस्मय-जनक है। उसे बुरे से बुरे, तथा काले से काले, रूप में चित्रित करने का यत्न किया गया है। पर साथ ही यह माना भी जाता है कि उसने अनेक अवसरों पर जब अन्य रानियां महलों में बैठी आनन्द का जीवन व्यतीत करती थीं, अपने प्राणों

की कोई परवाह न करके महाराज दशरथ की जान बचाई थी। अन्य महारानियों के सम्बन्ध में, जिन्होंने राम तथा लक्ष्मण सरीखे पुत्रों को जन्म दिया, अपशब्द मुख से कहना मूर्खता होगी, तो भी यह निश्चयात्मक रूप में कहा जा सकता है कि वीरता और शौर्य में उनमें से कोई भी उस पंजाबी या काश्मीरी रानी की तुलना नहीं कर सकती थीं, जिसे केकयी के नाम से पुकारा जाता है। क्योंकि यह वही और केवल वही थी, जो प्राणों को हथेली पर रखे महाराज दशरथ की रक्षा के लिये रणक्षेत्र में जाने में गौरव अनुभव करती थी। ऐसी शूरवीर, योद्धा महारानी पर स्वार्थ का घृणित दोष आरोपण करना यदि अन्याय नहीं तो क्या है ?

धनुर्धारी राम में उसके चरित्र के एक पहलू पर से परदा उठाकर यह दर्शाने का यत्न किया गया है कि राम के बनवास में वह किस सीमा तक और क्यों उत्तरदायी थी ?

महर्षि वाल्मीकि जी ने अयोध्या काण्ड के चौथे सर्ग में रामचन्द्र जी को सम्बोधन करके महाराज दशरथ के मुख से यह शब्द कहलवाए हैं :—

"जब तक भरत वहां (ननिहाल) से नहीं आते तब तक तुम्हारा राज-तिलक हो जाए, मैं यही चाहता हूँ। यद्यपि तुम्हारे भ्राता भरत भले पुरुषों की रीति पर चलने वाले, ज्येष्ठ भ्राता के अनुसार कार्य करने वाले, धर्मात्मा, दयालु तथा जितेन्द्रिय हैं, तो भी धर्मात्मा तथा सज्जन लोगों का भी चित्त सदा स्थिर नहीं रहता।"

यह शब्द बताते हैं कि भरत को ननिहाल में भेजकर रामचन्द्र

जी के युवराज बनाने का प्रबन्ध इस कारण किया गया था कि महाराज दशरथ को संदेह था कि भरत के मन में कोई और विचार न आ जाये और वह सिंहासन पर अधिकार प्रगट न करने लग जावे। इसी सम्बन्ध में रामचन्द्र जी के वह शब्द भी विचारणीय हैं जो महर्षि वाल्मीकि जी ने अपनी पुस्तक के अयोध्या काण्ड के सर्ग १०७ में लिखे हैं। यह उस समय की वार्ता है जब भरत रामचन्द्र जी को लौटा लाने के लिये चित्रकूट पर्वत पर पहुंच कर उनसे प्रार्थना कर रहे थे कि वापिस अयोध्या चलकर राज्य को संभालें। उस समय रामचन्द्र जी ने कहा :—

"भरत! तुमने जो कथन किया, वह ठीक है, महाराज दशरथ के सुपुत्र होकर क्यों न ऐसे वचन कहोगे। परन्तु मैं जो कहता हूँ उसे भी ध्यान देकर सुनो—

जब पिता जी ने तुम्हारी माता से विवाह किया, तब तुम्हारे नाना से यह प्रतिज्ञा की थी कि "तुम्हारी पुत्री से जो पुत्र उत्पन्न होगा वही मेरे राज्यासन पर बैठेगा।"

यदि ऐसी खुली प्रतिज्ञा करके भी महाराजा दशरथ ने प्रतिज्ञा भङ्ग करना उचित समझा तो उस के लिये केकई को दूषित समझना कहां तक न्याय अनुकूल है, इसका निर्णय हम पाठकों पर ही छोड़ते हैं।

: ४ :

प्रश्न किया जा सकता है कि क्या श्री रामचन्द्र जी को वनवास केवल महारानी केकयी के शब्दों के कारण ही मिला, या इसका कोई और भी कारण था?

महर्षि वाल्मीकि इस प्रश्न का उत्तर महर्षि भरद्वाज के मुख से निम्नलिखित शब्दों में देते हैं। (देखो अयोध्या काण्ड, सर्ग ९२)—

यह वह अवसर था जब भरत जी श्रीराम चन्द्र जी को लौटा लाने के लिये चित्रकूट को जा रहे थे और उन्होंने मार्ग में रात्रि भरद्वाज आश्रम में बिताई थी। उस समय जब उन्होंने महर्षि भरद्वाज से वार्तालाप में माता केकई को कोसना आरम्भ किया तो महर्षि ने कहा :—

"भरत, केकयी को दोष न दो। क्योंकि रामचन्द्र जी का यह बनवास भविष्य के लिये सुखकारक होगा और उससे देव, दानव तथा महर्षियों का कल्याण होगा।"

तत्पश्चात् जब जन-स्थान विजय हो गया, खर, दूषण और त्रिशरा मारे गये, उस समय का वर्णन करते हुए वाल्मीकि जी अरण्यकाण्ड के तीसवें सर्ग में लिखते हैं :—

"बड़े २ राजर्षि, महर्षि अगस्त मुनि जी को साथ लेकर रामचन्द्र जी के पास आये और उन की स्तुति करके बोले :—

"दशरथ पुत्र! इसी लिये इन्द्र शरभङ्ग मुनि के आश्रम में आए थे। और इसी कारण से मुनि लोग अनेक उपायों से आप को इस देश में लाए थे। आपने इन दुष्ट राक्षसों को मार कर हमारा बड़ा काम किया। अब दण्डकारण्य में ऋषि लोग निष्कण्टक अपने धर्म का व्यवहार करेंगे।"

सचमुच भारतवर्ष को राक्षस-हीन करना ही एक काम था जिसने रामचन्द्र जी के नाम को अमर बनाकर उन्हें भगवान् का

अवतार बना दिया, नहीं तो जगत् में पितृ-भक्त, अच्छे गृहस्थ तथा अच्छे राजाओं का तो कभी अकाल न था।

: ५ :

'धनुर्धारी राम' के पाठकों को इसके पन्नों में कई प्रकार के अस्त्रों और शस्त्रों का वर्णन मिलेगा। इससे पूर्व 'देशभक्त श्याम' ❀ के पन्नों में भी इसी प्रकार के अस्त्रों-शस्त्रों का वर्णन किया गया था। प्राचीन पुस्तकों में यह वर्णन इतना अधिक मिलता है कि पाठक उस समय के युद्ध विज्ञान के सम्बन्ध में विस्मित रह जाता है। फिर भी आजकल सर्व साधारण इन पर विश्वास करते हुये हिचकिचाते हैं। उनकी सूचना के लिये निम्नलिखित शब्द लाहौर के प्रसिद्ध समाचार पत्र ट्रिब्यून (The Tribune) की ७ अक्टूबर १९४५ की प्रति से उल्लेख किये जाते हैं :—

"ऐसट्रोलौजिकल मैगज़ीन (Astrological Magazine) अपने ताजा परचे में लिखता है कि आधुनिक परमाणुबम हमें हिन्दू लोगों के आग्नेय अस्त्र का स्मरण कराता है, जो प्रकृति की कुछ शक्तियों को खुला छोड़कर दूर २ तक प्रलय मचा सकता था। हालहैड (Halhead) ने एक प्राचीन संस्कृत पुस्तक में से जिसमें अग्नि अस्त्रों का वर्णन आता है, उद्धृत करते हुए लिखा है 'पाठक यह देखकर विस्मय में डूब जायेंगे कि ऐसी प्राचीन पुस्तकों में, जिनके समय का निर्धारित करना भी असम्भव है,

---

❀ ग्रन्थ कर्ता की अन्य पुस्तक जिसमें भगवान् कृष्ण चन्द्र का जीवन वृत्तान्त है।

अग्नि-अस्त्रों (Fire-arms) के प्रयोग का निषेध है और उनके हृदयों में वह सन्देह ताजा हो जायेगा जिसे दीर्घ काल से निरर्थक कहा जा रहा है, कि अलक्षेन्द्र को भारत में सचमुच इसी प्रकार के किसी अस्त्र से वास्ता पड़ा था। आग्नेय अस्त्र की कई असाधारण विशेषताओं में से एक यह थी कि एक बार छूट जाने पर वह अग्नि की कई धाराओं में परिवर्तित हो जाता था जिनमें से प्रत्येक का प्रभाव वही होता था, और उनकी अग्नि एक बार प्रज्वलित होने के पश्चात् शान्त नहीं की जा सकती थी।'

ड्यूटन्स (Dutens) लिखता है कि सालमोनैन्स (Salmonens) ने ब्राह्मणों की कड़क की नकल करने का यत्न किया था। उसके लेख में वह शब्द अति विचारणीय हैं जिनमें उसने बताया है, कि अलक्षेन्द्र भारतवर्ष में अपनी विजय को इस कारण न बढ़ा सका कि भारतवर्षियों ने कुछ विचित्र अग्नि-अस्त्रों का उपयोग किया। उसके शब्द हैं—

"यह अति बुद्धिमान लोग विपासा और गंगा नदी के मध्य के प्रदेश में वास करते हैं। अलक्षेन्द्र ने उनके देश में प्रवेश नहीं किया और न ही वह उसे विजय कर सकता था, क्योंकि वह लोग आक्रमणकारियों का सामना करने के लिये रणक्षेत्र में नहीं आते। वह पवित्र, ईश्वर के प्यारे लोग, अपने गृह में से ही प्रलय और विद्युत फेंक कर शत्रु को नष्ट कर देते हैं।"

यह उदाहरण प्रमाणित करते हैं कि प्राचीन हिन्दू परमाणु शक्ति के प्रयोग की विधि और उसे भले कार्यों में उपयोग करने के

ढंगों से अवश्यमेव परिचित होंगे। यदि किसी निकृष्ट धातु के केवल परमाणु विच्छिन्न करके उनमें से कुछ भागों को निकाल कर और परमाणुओं को फिर से जोड़ कर उसे स्वर्ण की आकृति दी जा सकती है तो हिन्दू इस विद्या से अनभिज्ञ न थे, जैसा कि तन्त्र-विद्या की पुस्तकों से ज्ञात होता है।

नागअर्जुन अपनी पुस्तक "रस रत्नाकर" में ताम्बे को स्वर्ण बनाने की कई विधियां लिखता है। वह किसी गुप्त भाषा में लिखी हुई नहीं, और कोई भी आधुनिक विश्व-विद्यालय इन विधियों का प्रयोग कर सकता है। आधुनिक विज्ञान को अभी तक उस विधि का ज्ञान नहीं हुआ जिससे ताम्बा स्वर्णाकार में परिवर्तित हो जाये।

केवल हठधर्मी, और प्राचीन आचार्यों की बुद्धि और विज्ञान पर सन्देह और अविश्वास ही उनके अन्वेषणों और अनुसन्धानों से जो सहस्रों वर्षों तक होते रहे हैं, लाभ उठाने के मार्ग में बाधा है।

आशा है कि भविष्य के अन्वेषण उन पुस्तकों की खोज में सफल होंगे जिनमें उन अस्त्रों के निर्माण की गुप्त विधियां लिखित होंगी।"

: ६ :

सर्वसाधारण आधुनिक सीलोन (सिंहल देश) को लंका कहते हैं और अधिकांश विद्वान भी इसी विचार से सहमत हैं। परन्तु वाल्मीकि जी की पुस्तक इसका समर्थन नहीं करती। उसमें लिखित घटनाओं से ज्ञात होता है कि दशग्रीव रावण 'राक्षस द्वीप'

का स्वामी था, उसकी राजधानी भूमध्य रेखा पर भारत की अंतिम सीमा से जहां पर महेन्द्र पर्वत सागर में लुप्त हो रहा था, एक सौ योजन अर्थात् चार सौ कोस की दूरी पर थी। आधुनिक सीलोन पर यह बातें घटित नहीं होतीं। कुछ संस्कृत पुस्तकों में सिंहल-द्वीप को लंका से पृथक वर्णन किया गया है। महाभारत में भी कुछ ऐसा ही दीख पड़ता है। इन बातों पर विचार करके एक विद्वान ने मालद्वीप को लंका बताने का साहस किया है। अन्य सज्जनों का यह भी विचार है कि एक महाद्वीप, जिसका नाम लिमोरिया (Lemuria) कहा जाता है, हिन्द महासागर में जलनिमग्न हुआ २ है। इस महासागर की गहराई भी भारत से लेकर मैडगास्कर द्वीप तक बहुत थोड़ी है। इससे यह विचार परि-पक्व हो जाता है कि लिमोरिया अर्थात् राक्षस द्वीप अफ्रीका से लेकर आधुनिक लंका और उससे आगे जावा, सुमात्रा इत्यादि से आगे आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, बोर्नियो, न्यू गिनी में सम्मिलित होकर दक्षिण अमरीका तक चला गया था। लंका उस द्वीप की राजधानी थी और हमें उसकी खोज भूमध्य रेखा के निकट ही करनी चाहिये।

: ७ :

श्री रामचन्द्र जी के समय में भारत के मान-चित्र पर वर्तमान रियासतें और प्रान्त नहीं थे, इसलिये उस समय की वार्त्ता को समझने के लिये आज का भूगोल काम नहीं देगा। उस समय इस देश की जनसंख्या भी अभी इतनी अधिक नहीं थी और देश

छोटे २ राज्यों में विभक्त था। इन्हें राज्य कहना भी शायद उचित नहीं होगा, क्योंकि जब महाराज मनु ने इस देश पर सर्वप्रथम पग रक्खा तो यह जन-हीन था और प्रकृति माता ने इसे प्रत्येक प्रकार के भूषणों से विभूषित कर रक्खा था। वर्तमान मनुष्य-जाति के महापितर देवलोक से जल-विप्लव के कारण (जिसमें से भगवान मनु निकल कर इस देश में आये थे) इधर आये और उनमें से प्रत्येक कुल ने इस देश में जहां उचित समझा अपना अधिकार जमा लिया। असुर, दस्यु अर्थात् राक्षस लोग मध्य एशिया और उत्तरगिरि के पर्वतों से उनका सामना करने का साहस न रखते हुए 'पाताल' को भाग गये। वहां से उन्होंने दक्षिणी ध्रुव और राक्षस द्वीप पर अपना अधिकार जमा कर एक नवीन सभ्यता की नींव डाली। पर वह देव अर्थात् आर्य लोगों से अपनी शत्रुता को नहीं भूले थे। इसलिये वह किसी न किसी विधि से इस देश को अपने आधीन करना चाहते थे। राक्षस राजा रावण के समय में यह आन्दोलन कार्य रूप में परिवर्तित हो चुका था। दूरदर्शी ऋषि लोग इसे भांप चुके थे। और यही कारण श्री रामचन्द्र जी के प्रादुर्भाव का था। उन्होंने अपनी शूरवीरता और नीति-निपुणता से इस कठिनाई को सदैव के लिये दूर करके आर्य और राक्षस जातियों को परस्पर मित्रता की रज्जु से बांध दिया।

इस सम्बन्ध में हम पाठकों को अपनी पुस्तक "वैवस्वत मनु और श्रद्धा" के पाठ का अनुरोध करेंगे, क्योंकि इस लम्बे इतिहास का साधारण टिप्पणी में वर्णन करना असम्भव है।

: ८ :

भूमिका लम्बी हुई जाती है और कोमल-स्वभाव पाठक इसे पढ़ते हुए घबरा रहे होंगे। पर अभी बहुत सी गुत्थियां ऐसी हैं जिन्हें खोल कर जनता के सन्मुख रखने की आवश्यकता है, परन्तु इसी पर समाप्त करके "धनुर्धारी राम" को आपके कर कमलों में अर्पण करता हूँ—इस आशा से, कि आप इसका पाठ करके अपने पूर्वजों के चरण-चिन्हों पर चलने का यत्न करेंगे। रामचन्द्र जी लाखों वर्षों से जगत के लिये प्रकाश-स्तम्भ रहे हैं। इस पुस्तक का उद्देश्य उनके प्रकाशको और भी देदीप्यमान करना है। इसमें मैं कहां तक सफल हुआ हूं, यह कहना पाठकों का काम है; मेरा नहीं।

धनुर्धारी राम

कोप भवन

"क्या कहा, महारानी कोप भवन में ?"

"हां महाराज !"

"क्यों ?"

"इसका उत्तर मैं क्या दे सकती हूं, स्वयं महारानी ही बता सकेंगी।"

महाराज का माथा ठनका, हृदय धड़का ! आज के दिन महारानी कैकयी कोप भवन में ! वह महारानी जिस के अधरों की मुस्कान जगद्विख्यात थी, जिसकी सहास्य प्रकृति से समस्त रनवास परिचित था, जिसे दासियों पर भी क्रोधित होते नहीं देखा गया था, वह कोप भवन में ! और वह भी आज के दिन।

"नहीं तुम असत्य कहती हो। हमारे आने पर महारानी कोप भवन में नहीं रह सकतीं, और नहीं रहने दी जायेंगी।"

यह कह कर महाराज दशरथ कोप भवन की ओर बढ़े और भीतर प्रवेश करते ही महाराणी का हाथ पकड़ कर कहने लगे:—

"यह क्या ? आज किस की शामत आई है ? किस ने मेरी प्रिया को क्रोधित किया है ? किसने मेरी देवी के हृदय

को दुखाया है ? हैं ! आज तो शरीर पर कोई अलंकार भी दिखाई नहीं देता। आज तो वस्त्रों की भी सुधि नहीं है। बात क्या है ?"

महारानी—(चरणों में सिर झुकाते हुये) स्वामी ! मुझे छोड़ दो। मुझे स्पर्श मत करो ! आज मेरे लिये मृत्यु-दिवस है !!

महाराज—कैसी बातें कर रही हो ! ऐसे अपशब्द तुम्हारे मुख से नहीं निकलने चाहियें। किसने तुम्हें इतना दुखित किया है ? बोलो ! मेरा क्रोध पागल हो रहा है।

महारानी—(सुनी अनसुनी करके) भरत कब आयेगा ?

महाराज—तो क्या भरत की स्मृति सता रही है ? उसे गये कौन सी देर हुई है। आ जायेगा दो चार मास में।

महारानी—क्या सत्य ही वह आ जायेगा ?

महाराज—आयेगा क्यों नहीं ? वह ननिहाल गया है, पाताल नहीं गया, कि आना असम्भव हो। पिता जी उसे इतना प्रेम करते हैं, भ्राता युधाजित उसे अपनी सन्तान से बढ़ कर समझते हैं।

महारानी चुप रही, उस के मुंहसे एक भी शब्द न निकला।

महाराज—परन्तु तुम्हारे क्रोध का यह कारण नहीं हो सकता। बात क्या है ? तनिक मैं भी तो श्रवण करूं, किस ने मेरी प्रिया को इतना क्रुद्ध कर दिया है कि आज मेरे साथ सीधे मुख से बात भी नहीं करती ?

महारानी से कोई उत्तर न पाकर महाराज ने उसे गुदगुदाया,

परन्तु महारानी उनसे बलपूर्वक छूट कर यह कहती हुई अलग हट गई कि "मुझे तंग न कीजिये।"

महाराज—जहां तक सोचता हूं मैंने कोई अपराध नहीं किया। बात क्या है ?

यह कह कर वे फिर आगे बढ़े। परन्तु उनका हाथ महारानी के शरीर पर पड़ा भी न था कि वह भाग कर कमरे के दूसरी ओर हो गई और कहने लगी—

"मेरे लिये आज सत्य ही रोने का दिन है!"

महाराज—रोएं तुम्हारे शत्रु! तुम्हें रोने की आवश्यकता नहीं है।

महारानी, जो अब तक अपने पर नियन्त्रण रखे हुये थी, फूट पड़ी। और कुछ ही काल में उस की हिचकियां बंध गईं। यह देख कर महाराज ने आगे बढ़ कर उसे गोद में ले लिया और प्रेम करते हुये बोले—प्रिये! केकयी! महारानी! बात क्या है, तुम रोती क्यों हो?

बहुत आग्रह पर महारानी के अधर हिले और उसने कहा—रोऊंगी! रोऊंगी! आयु भर रोऊंगी। आप पूछते हैं क्यों? बताने की बात हो तो बताऊं।

महाराज के हृदय पर वज्राघात हुआ और अत्यन्त आग्रह से उन्होंने कहा—"रोना ही है तो हम भी तुम्हारे साथ रोयेंगे, पर कारण तो ज्ञात हो।"

महारानी—कारण········? कारण ········? कारण क्या बताऊँ? जिसका आदर्श दृष्टि से जाता रहे, जिसके जीवन भर की आशायें धूल में मिल जायं—उसके हाथों जिससे इसकी कभी आशा न हो—वह कारण क्या बताए। उसे तो अपने भाग्य पर रोना है।

महाराज (व्याकुलता से)—विस्तार पूर्वक कहो जिससे उसका उपाय हो सके············

महारानी—उपाय क्या होगा और कौन करेगा? (रोकर) मेरे लिये कोई उपाय नहीं!

महाराज—वह कौनसी बात है जिस का कोई उपाय नहीं? वह कौनसा रोग है जो असाध्य है?

महारानी—आप पूछने पर ही उतारु हो रहे हैं, तो सुन लीजिए। मैं जिस देवता की आज तक पूजा करती रही हूँ आज ज्ञात हुआ कि वह देवता नहीं और ही कुछ है।

महाराज—मैं अब भी नहीं समझा।

महारानी—मैं आज तक यह जानती थी कि—

रघुकुल रीति सदा चली आई।
प्राण जायँ पर वचन न जाई॥

और इसी बातको जानते हुये संसार को ललकारकर कहा करती थी कि सूर्य में धब्बा हो सकता है परन्तु सूर्यवंश का जिसमें मेरे माता पिता ने मुझे व्याहा है, मुख सर्वदा से उज्वल रहा है, परन्तु·········

महाराज—परन्तु क्या ?

महारानी—आज मेरे मुख पर कालिमा पुत गई ! आज मैं विश्व में मुख दिखाने योग्य नहीं रही !!

महाराज थर्रा उठे और उनके मुख से निकला "क्यों आज क्या हो गया ?"

महारानी—आप भूलते हैं या जान बूझ कर अनजान बनते हैं ?

महाराज—मैं नहीं समझा।

महारानी—जो न जानता हो उसे बताऊं, जो जानता हो पर न जानना चाहता हो उसे क्या बताऊँ ?

महाराज—तुम्हारे सिर की सौगन्ध, मुझे कुछ पता नहीं।

महारानी—मेरे सिर की सौगन्ध खाइये, यह और किस काम आयेगा ? परन्तु महाराज ! मैं पूछती हूँ भरत कहां है ?

महाराज—विश्व विदित है कि वह केके देश में अपने नाना अश्वपति जी के पास है।

महारानी—नहीं ! उसे देश निकाला दिया गया है ?

महाराज—(हंसकर) आज तुम्हें क्या हो गया है ? भरत और देश निर्वासन ! इसका कारण ?

महारानी—कि महाराज को अपनी मनोकामना पूर्ण करने का अवसर मिल जाय, ताकि वह उनकी इच्छा पूर्ति के मार्ग में बाधा न बने............

महाराज—(बात काट कर) यह विचार किसने तुम्हारे मन में डाल दिया है ?

महारानी—किसका नाम लूँ ? परन्तु दो और दो चार ही हो सकते हैं पांच नहीं। आज बाहर क्या हो रहा है ? आज अयोध्या में आनन्द मंगलाचार क्यों मनाया जा रहा है ?

महाराज—कल उत्सव है। कुछ दिनों से मुझे भयानक स्वप्न आ रहे थे और मेरा हृदय कह रहा था कि अब मैं अधिक काल तक इस संसार में नहीं रहूंगा, इसलिये उचित समझा गया है कि श्रीराम को युवराज बना दिया जाय।

महारानी—और यह समाचार मुझ से छिपाया गया। भरत से छिपाया गया, भरत की ससुराल से छिपाया गया, मेरे मैके वालों से छिपाया गया !

महाराज—उतावली के कारण महाराजा जनक, उनके भ्राता और महाराजा अश्वपति जी को नहीं निमन्त्रित किया जा सका।

महारानी—स्पष्ट क्यों नहीं कहते कि उनसे भय था, इस कारण चोरों की भाँति यह सब कुछ किया जा रहा है। परन्तु महाराज ! क्या आपको अपनी वह प्रतिज्ञा विस्मरण हो गई जो विवाह के समय मेरे और मेरे पिता जी से की थी ?

महाराज का मुख विवर्ण हो गया और उससे केवल यह शब्द निकल सके "नहीं तो !"

महारानी—(आवेश में आकर) तो वह कब पूर्ण होगी ? क्या

मेरी और भरत की मृत्यु के पश्चात् ?

महाराज के मुख से कोई शब्द न निकला तो महारानी ने फिर कहा—"श्री महाराज ! आपको समरण करा दूं कि मुझ से विवाह के पूर्व आपकी किसी रानी से आपके पुत्र नहीं था। इस कारण मुझसे विवाह करते समय आपने यह वचन दिया था कि भावी राजा केकै देश का धेवता होगा। केकयी का पुत्र अयोध्या के राज्य-सिंहासन का अधिकारी होगा।

वह वचन अब कहां है ? वह प्रतिज्ञा आज इस प्रकार पूरी की जा रही है कि कौशल्या का पुत्र सिंहासनासीन होगा और केकयी-नन्दन को देश से निर्वासित किया जायगा।

महाराज—महारानी !

महारानी—श्री महाराज ! आप ने जो कुछ किया है उसने रघुकुल के मुख पर सदैव के लिये कालिमा पोत दी है। वैवस्वत कुल का देदीप्यमान मुख सर्वदा के लिये काला हो गया है...

महाराज—क्षमा, केकयी, क्षमा !

महारानी—(बात को जारी रखते हुये) मैं कौशल्या के पुत्र की शत्रु नहीं थी और नहीं हूं। मैं जानती हूं कि वह इस संसार में मेरे भरत से कुछ काल प्रथम आया था। मुझे यह भी ज्ञात है कि आप उसे भरत से अधिक प्रेम करते हैं। और यदि आप सीधे मार्ग पर चलते हुये मुझपर विश्वास करते तो मैं स्वयं राम को राज्यसिंहासन पर बिठाकर अपने हाथ से उसे तिलक लगाती। इस प्रकार इक्ष्वाकुकुल में घरेलू झगड़े के उत्पन्न होने का

कोई कारण न रहता। परन्तु आपके अविश्वास ने आज मुझे विवश कर दिया है कि मैं देश से निकाले हुये निर्वासित भरत के अधिकारों के लिये खड़ी हो जाऊं। मैं जानती हूं कि स्वयं भरत भी इसे पसन्द नहीं करेगा क्योंकि उसे बड़े भ्राता से प्रेम ही नहीं, वह उसकी देवता की भांति पूजा करता है। परन्तु स्वामी को, नहीं नहीं इक्ष्वाकु कुल को लगने वाले कलंक से सुरक्षित रखने के लिये मुझे अपने हृदय पर वज्राघात करना होगा।

महाराज—(घबरा कर) कैकयी! प्रिया! क्षमा कर दो। मेरे हृदय में यह विचार कभी नहीं आये।

महारानी—आये हों अथवा न, परन्तु यह सत्य है जिससे इन्कार नहीं किया जा सकता। और यदि आप की यह इच्छा है कि मैं राज्य-सभा के सन्मुख सत्य के लिये इसे प्रकाश में न लाऊं, यदि आप चाहते हैं कि आप झूठे न कहलायें, तो आपको इसका प्रायश्चित करना होगा।

महाराज—(घबराये हुए) मैं प्रायश्चित करूंगा, मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि इस पाप के प्रायश्चित के लिये यदि मुझे प्राण भी देने पड़ें तो पीछे न रहूंगा।

महारानी—आप की यह प्रतिज्ञा भी पहली प्रतिज्ञा जैसी ही होगी।

महाराज—नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।

महारानी—तो इस का प्रायश्चित यह है कि भरत राज्य-सिंहासन पर बैठे, और राम चौदह वर्ष के लिये बन-गमन करे।

महाराज के मुख का रंग उड़ गया और कुछ काल ही में वह मूर्छित हो गये। जब कुछ सुधि आई तो उन की जिह्वा से निकला "महारानी !".................

इससे आगे न बोल सके, टक २ महारानी के मुख की ओर निहारते हुये मूक वाणी से मानो कह रहे थे "देवि, क्षमा !"

महारानी (उनकी इच्छा को भांप कर)—महाराज! न्याय करना कितना कठिन है, यह उस समय ज्ञात होता है जब अपने आप और अपनों के साथ न्याय किया जाय। किसी अन्य के पुत्र को कारागार में ठोंसना, नहीं २ मृत्यु के मुख में दे देना, सुगम है; परन्तु अपने पुत्र को थप्पड़ मारना भी कठिन है। क्षत्रिय के जीवन में कठिनतम समय वही होता है जब वह दृढ़ संकल्प के साथ अपने आप से न्याय करता है।

महाराज—केकयी ! राम के साथ ऐसा कठोरता का वर्त्ताव न करो। उसने ऐसा कोई पाप नहीं किया जिस के लिये उसे वनवास दिया जाय।

महारानी—मुझे ज्ञात है श्री महाराज ! और राम को वन भेज कर मुझ से अधिक दु:ख स्यात कौशल्या को भी नहीं होगा। राम शूरवीर है, शुद्ध चरित्र है, प्रजा के नेत्रों का तारा है, और मुझे भरत से अधिक प्रिय है। परन्तु इन्हीं बातों का विचार करके नीति कहती है कि भरत के राज्यतिलक के समय और तत्पश्चात् दीर्घ काल तक उसे राज्य से बाहर रहना चाहिये।

महाराज के शरीर पर वज्राघात हुआ और वह कटे हुये वृक्ष

की भाँति भूमि पर गिर पड़े। महारानी ने उन का सिर अपनी गोदी में ले लिया और जब उन्हें कुछ सुधि आई तो बोली, "श्री महाराज ! इतनी सी बात पर घबरा गये ! उठिये, धीरज धारिये। क्षत्रिय कभी हृदय को छोटा नहीं करता।"

महाराज (महारानी के मुख की ओर निहारते, हुये करुणा भरे स्वर में)—नगर में घोषणा हो चुकी है, सारे सरदार और सामन्त एकत्रित हो चुके हैं, आस पास के राजा आ चुके हैं, राज्य सभा निर्णय कर चुकी है............

महारानी—राज्य सभा ? क्या महाराज ने राज्य सभा के सामने अपनी प्रतिज्ञा की बात कही थी ? और क्या सभा का निर्णय उस प्रतिज्ञा को दृष्टिगोचर कर के किया गया है ?

महाराज से कोई जवाब न बन सका।

महारानी—श्री महाराज, अब इस समस्या को सुलझाने के यह उपाय हैं:—

(१) कह दीजिये कि आपने कोई प्रतिज्ञा नहीं की थी। ऐसी अवस्था में यदि आवश्यकता हुई तो मुझे उस का प्रमाण देना होगा।

(२) मुझे कारागार में डाल दीजिये, या इसी स्थान पर गला घोंट कर मार दीजिये, ताकि संसार के श्रोत्रों तक मेरे शब्द न पहुँच सकें। परन्तु फिर भी भय है कि मेरे पिता और भ्राता आप को क्षमा नहीं करेंगे, और अयोध्या युद्ध-भूमि बन कर रहेगी।

महाराज—महारानी ! हठ छोड़ दो।

महारानी—हठ मैं कर रही हूं या आप कर रहे हैं ? मैंने आज तक आप की प्रतिज्ञा के सम्बन्ध में किसी को कुछ नहीं कहा, क्योंकि आवश्यकता न थी। परन्तु आप ने मुझ पर विश्वास न किया, अपने हृदय के टुकड़े भरत पर अविश्वास किया, और जो कार्य सीधी अंगुली से हो सकता था उसे अंगुली टेढ़ी करके करना चाहा। परिणाम यह है कि मेरे नेत्र उस दृश्य को देख रहे हैं जब अयोध्या की गलियां रक्त रंजित होंगी। एक ओर भरत और उसके मामा, नाना और उसके श्वसुर होंगे, उसकी सहायता को मुझे भूषण छोड़ कर शस्त्र ग्रहण करने होंगे। दूसरी ओर राम होंगे और शायद महाराज जनक। श्री महाराज! इस दृश्य की कल्पना से मेरा हृदय कांपता है परन्तु स्मरण रखिये जिस समय मैं शस्त्र हाथ में लूँगी मेरे हाथ नहीं कांपेंगे। सत्य हमारी ओर है और निश्चय ही जय सत्य की होगी।

महाराज—त्राहिमाम ! त्राहिमाम !

महारानी—आज आपने मेरे और मेरे बच्चे के लिये विष का बीज बोया है। आपने उसे बोते समय आगा पीछा नहीं देखा। मैं उस बीज को उखाड़ना चाहती हूँ। इसलिये आपकी रक्षा का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता।

महारानी का प्रत्येक शब्द कटार की धार की भांति काट कर रहा था। महाराज के पास उनमें से किसी का उत्तर नहीं था। वृद्धावस्था ने उनके हृदय और मस्तिष्क को पहले ही दुर्बल कर दिया था, और केकयी के दृढ़ संकल्प को जानते हुये उन्हें उससे दया

की आशा नहीं थी। दूसरी ओर अयोध्या भर में आनन्द की लहर फैल रही थी, नगर नववधु की भांति सजाया जा रहा था, राज्यकर्मचारी बड़े परिश्रम से नगर को सजाने और अगले दिन होने वाले राज्य तिलक के लिये सामग्री एकत्र करने में रात को दिन बना रहे थे। चारों ओर से निमन्त्रित लोग आ रहे थे। उनको क्या उत्तर दिया जा सकेगा ? राम को वनवास की आज्ञा कैसे सुनाई जा सकेगी—यह विचार सामने आते ही महाराज चेष्टाहीन से हो गये। उनके सिर में चक्कर आगया और वह मूर्छित होकर धराशायी हो गये।

दिन निकला, नियत समय पर दरबार सज गया, आस-पास के राजागण, राज्य-मन्त्रि, और राज्याधिकारी तथा प्रजा के प्रतिनिधि अपने २ स्थान पर विराजमान हो गये, और महाराज की प्रतीक्षा होने लगी। परन्तु जब समय बीतने पर भी महाराज न स्वयं पधारे और न कोई संदेश भेजा, तो मन्त्रि-परिषद ने महामन्त्रि सुमन्त से प्रार्थना की कि विलम्ब का कारण ज्ञात करें।

महामन्त्रि उठे और यह कहकर कि "हम अभी महाराज को साथ ले कर आते हैं" सभा स्थल से बाहर हुये। पूछने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि श्री महाराज मंझली महारानी के महल में विराजमान हैं। इसलिये उधर ही चल दिये। महामन्त्रि को रनवास में प्रवेश का अधिकार था, इसलिये राजभवन में किसी ने टोका नहीं। अन्तिम ड्योढ़ी पर पहुंच कर उन्होंने श्री

महारानी जी की सेवा में सूचना भिजवाई कि महामन्त्रि सुमन्त महाराज की सेवा में उपस्थित हुये हैं और दर्शन की आज्ञा चाहते हैं। आज्ञा मिली कि श्री महाराज रात्रि भर युवराज के अभिषेक के सम्बन्ध में जागते रहे हैं, इस कारण प्रातःकाल उनकी आंख लग गई, परन्तु अब वह श्री रामचन्द्र के दर्शन के उत्सुक हैं, उन्हें भिजवा दिया जाय। महाराज उनके साथ ही राज्य-सभा में उपस्थित होंगे।

"जो आज्ञा" कह कर महामन्त्रि श्री राम के भवन में पधारे और उन्हें महाराज का सन्देश सुनाया। राम जी उस समय श्री जानकी जी के साथ राज्याभिषेक की बात ही कह रहे थे। महाराज की आज्ञा पालन में वह बाहर आये, तो कनिष्ठ भ्राता लक्ष्मण बाहर खड़े थे। उनके नमस्कार का उत्तर दे कर राम जी ने कहा "श्री महाराज ने मंझली माता जी के भवन में बुलाया है, वहाँ जा रहा हूं"।

लक्ष्मण—मंझली माताजी के भवन में? क्या बात है? पिता जी को इस समय राज्य दरबार में होना चाहिये था, अभी तक रनवास में क्यों हैं?

राम—महामन्त्रि जी से पूछिये।

महामन्त्रि—महाराज कुमार! श्री महाराज इस समय तक राज्य दरबार में नहीं आये, इस कारण उनकी सेवा में उपस्थित हुआ था। तो मंझली महारानी जी की ओर से आज्ञा मिली कि

'महाराज रात्रि भर जागते रहे हैं अब शयनागार में हैं। पर राम जी के दर्शन के उत्सुक है।"

लक्ष्मण—आपने महाराज के दर्शन नहीं किये। उन्होंने श्री मुख से आपको कोई सन्देश नहीं दिया?

महामन्त्रि—नहीं।

लक्ष्मण—(दोनों की ओर देखकर) बात मेरी समझ में आई नहीं।

महामन्त्रि—कौन सी बात?

लक्ष्मण—यह कि इतना दिन बीत चुका, महाराज अभी तक विश्राम कर रहे हैं, और उन्होंने श्री मुख से आप को कोई सन्देश नहीं दिया।

राम—अभी ज्ञात हो जायेगा।

लक्ष्मण—मुझे भी साथ जाने की आज्ञा है?

राम—चलिये, क्या आपत्ति है?

दोनों भ्राता बाहर निकले तो आशीर्वाद देने वालों की भीड़ थी। सारा वातावरण "युवराज की जय" की प्रतिध्वनि से गूंज उठा। और आगे बढ़े तो राज मार्गों पर, बाजारों में, चहुँ ओर भीड़-भाड़ थी। गली बाजार और मुहल्ले सजे हुये थे। जिधर से उनकी सवारी जाती थी "युवराज की जय", "रामचन्द्र जी की जय", "श्री महाराज की जय" यही शब्द श्रवणगोचर होते थे। बाजारों में से होते हुये वे राज्य भवनों की ओर चले और अन्त में महारानी कैकेयी के भवन में जा पहुंचे।

राम जी लक्ष्मण और महामन्त्रि को अन्तिम ड्योढ़ी पर छोड़ कर स्वयं भीतर गये तो माता कैकेयी उन्हें लिवाने को बाहर आईं। राम जी ने चरणों में नमस्कार किया और पूछा, "पिताजी कहां हैं ?"

महारानी जी ने सिर सूंघ कर कहा "भीतर चलो बेटा"।

राम भीतर पहुँचे तो श्री महाराज शय्या पर लेटे थे, मुख विवर्ण था और नेत्र बन्द थे। राम जी ने चरणों में सिर रक्खा तो महाराज नेत्र खोलकर उन्हें गोदी में लेने को उठे, परन्तु केवल "राम" यह शब्द कह कर शय्या पर गिर पड़े, क्योंकि पांव लड़खड़ा रहे थे और सिर घूम रहा था।

श्री राम जी ने दौड़ कर पिता का सिर गोद में ले लिया और उनके हाथों की तलियों को मलते हुये माता से पूछा "बात क्या है ?"

कैकेयी—रात अधिक समय तक जागते रहे हैं, इसलिये चक्कर आ रहे हैं। घबराओ नहीं, अभी ठीक हो जाते हैं। मैं अभी गुलाब छिड़कती हूं।

कुछ समय में महाराज स्वस्थ हुये और आंखें खोलीं। उस समय उनकी दृष्टि राम के मुख पर थी। कुछ क्षण टक २ देखने के पश्चात् उनके मुंह से निकला, "भगवन् ! मैं क्या करूँ ?"

राम—क्यों पिताजी, बात क्या है ? क्या आप अपने राम से क्रुद्ध हैं जो उससे बात नहीं करते ?

महाराज के मुख से "आह" और नेत्रों से अश्रुधारा बह निकली।

राम—(विस्मित होकर) माता जी! आप ही बताइये पिता जी क्यों इस सेवक से क्रुद्ध हैं?

कैकेयी—(हिचकिचाते हुए) महाराज क्रुद्ध नहीं, परन्तु उनके हृदय में एक बात है जिसे मुख से उच्चारण नहीं करना चाहते।

राम—तो आप ही कह दें।

कैकेयी—(महाराज से) आप कहेंगे या मैं कहूँ?

महाराज के मुख से कोई शब्द न निकल सका। पर नेत्रों से छम २ अश्रु प्रवाहित होने लगे।

राम का आश्चर्य और भी बढ़ गया और उनके मुंह से निकला "परमात्मन्! किस से पूछूँ? न पिताजी बोलते हैं, न माता जी कुछ बताती हैं।"

कैकेयी—तो मुझे ही कहना पड़ेगा। बेटा राम! तुम्हें ज्ञात है मैंने आज तक तुम में और भरत में कोई अन्तर नहीं जाना। तुम्हारे पिता को तुम जितने प्रिय हो यह भी तुम जानते हो। परन्तु आज तुम्हारे कारण तुम्हारे पिता को जो दुःख हो रहा है वह उनके मुख से ही जान पड़ता है।

राम—मेरे कारण? जहां तक मेरा विचार है मैंने ऐसा कोई कार्य नहीं किया जो महाराज को दुःख देने का कारण हो।

कैकेयी—यह ठीक है कि तुमने स्वयं ऐसा कोई कार्य नहीं

किया, और न ही कर सकते हो। परन्तु समय और अवस्था मिलकर कई बातों का कारण बन जाते हैं, जिनसे बिना जाने भी मनुष्य दूसरे के दुःख का हेतु बन जाता है।

राम—यदि मैंने कोई ऐसा कार्य किया है तो शीघ्र बताइये, यदि मेरी शक्ति में हो तो उसका उपाय करूँ। मेरे लिये तो पिता जी के दुःख को देखना असम्भव है।

कैकेयी—राम! एक समय था, तुम अपनी माता के गर्भ में नहीं आये थे, लक्ष्मण और शत्रुघ्न भी नहीं थे, परन्तु तुम्हारे पिता को सन्तान का मुख देखने की इच्छा प्रबल थी। उस समय उन्होंने नये विवाह का संकल्प किया और कैकेयी देश के स्वामी महाराज अश्वपति जी से अनुरोध किया कि वह अपनी पुत्री को उनसे ब्याह दें। महाराज अश्वपति जानते थे कि कोशल नरेश बड़े प्रतापी हैं, उन्हें यह भी ज्ञात था कि रघुकुल के राजा धर्म पर प्राण न्यौछावर करने वाले हैं, परन्तु वह यह भी जानते थे कि महाराज की महिषि और अन्य अनेक रानियां भी हैं। इसलिये वह नहीं चाहते थे कि अपनी पुत्री का विवाह उनसे करके उनकी काम-पूर्ति का साधन बनें। अब एक ओर कोशल नरेश का आग्रह था, दूसरी ओर महाराज अश्वपति का इन्कार। अन्त में महाराज के अनुरोध का फल यह हुआ कि कोशल नरेश ने यह प्रतिज्ञा की कि चाहे उनकी रानियों में से किसी के भी सन्तान पहले हो उनके उपरान्त राज्य का उत्तराधिकारी कैकेय देश का धेवता ही होगा।

राम—मैं समझ गया माता जी ! श्री महाराज मेरे प्रेम में अपनी प्रतिज्ञा को भूल गये और अब भरत का राज्य मुझे दे रहे हैं।

महाराज दशरथ (चौंक कर) राम ! बेटा............

राम—पिता जी आप दुःखी न हों ! राम का इतना पतन नहीं हुआ कि अन्य की वस्तु को लोभ की दृष्टि से देखे। भगवान् न करे जो वह भ्राता भरत का अधिकार छीन कर राज्य की इच्छा करे।

कैकेयी—बेटा, मैं तुम्हारे धर्माचरण से अनभिज्ञ नहीं। मैं जानती थी और जानती हूँ कि कोशल राज्य तो एक ओर रहा, यदि तुम्हें सारे संसार का राज्य भी मिले और तुम्हें ज्ञान हो कि उस पर अन्य का अधिकार है तो तुम उसे स्वीकार नहीं करोगे, परन्तु ..

राम—परन्तु ?

कैकेयी—श्री महाराज ने भूल से—परन्तु मैं भूल नहीं कहूंगी—उतावली से ऐसी अवस्था उत्पन्न कर दी है कि अब तुम दोनों भाइयों का एक स्थान में रहना कठिन है।

राम—माता, आप सत्य कहती हैं। इसलिये यदि महाराज चाहें और भरत की इच्छा हो, तो मैं अयोध्या को छोड़ दूंगा।

कैकेयी—इसमें किसी की इच्छा का प्रश्न नहीं। नीति यह कहती है कि राज्य के दो अधिकारी एक स्थान में नहीं रहने चाहियें। इसलिये बहुत सोच विचार के पश्चात्, सारी बातों को सन्मुख रखते हुए, मैंने श्री महाराज से यह प्रार्थना की थी कि वह तुम्हें चौदह वर्ष तक बन में रहने की आज्ञा दें।

महाराज—महारानी! कैकेयी! इतना अत्याचार न करो!

राम—पिता जी! माता जी जो कुछ कथन कर रही हैं ठीक है। जान कर या अनजाने में मुझ से दूसरे की वस्तु की इच्छा करने का पाप हुआ है। मैं चौदह वर्ष तक वन में रह कर इसका प्रायश्चित करूंगा।

महाराज—राम! यह शब्द मुंह से न निकालो, मेरा हृदय फटा जा रहा है।

राम—पिता जी! प्रेम आपको सता रहा है, मैं इसे समझता हूँ। परन्तु मैंने माता जी की बात का मर्म समझ कर अपना मार्ग निश्चित कर लिया है। आपको मेरे लिये दुःखी नहीं होना चाहिये। कौन जाने इसमें भी कोई भलाई हो, क्योंकि भगवान् ने अपना रहस्य किसी पर प्रकट नहीं किया।

माता-पिता के चरण छूकर राम बाहर निकले। उन्हें अकेला आते देख कर महा मन्त्री ने कहा "महाराज कब पधारेंगे?"

राम—श्री महाराज अभी नहीं आयेंगे। उनकी आज्ञा है कि उत्सव स्थगित कर दिया जाय। भरत के आने पर पुनः निश्चय किया जायेगा।

यह कह कर महामन्त्री को विस्मित छोड़ कर लक्ष्मण जी का हाथ पकड़े हुए बाहर आये। रथ में बैठे तो लक्ष्मण ने पूछा "यह क्या लीला है?"

राम—अब राज्य सिंहासन पर भरत बैठेंगे, हम चौदह वर्षों के लिये वन जा रहे हैं।

लक्ष्मण—(विस्मित होकर) वनों को ? यह आप क्या कह रहे हैं ? आपने कौन सा पाप किया है जिसके लिये वन में जाने की आज्ञा हुई है ?

राम—(हँस कर) क्या वन में जाना बुरी बात है ? क्या पाप किये विना किसी को वन जाने की आज्ञा नहीं ? क्या वन-वासी ऋषि-महर्षि पापी होते हैं ?

लक्ष्मण—मेरी समझ में कुछ नहीं आया।

राम—बात यह है कि एक भूल हुई। उसके परिणाम के रूप में आज का दरबार हुआ, पर उसका सुधार समय पर हो गया। नहीं तो ईश्वर जाने क्या होता !

लक्ष्मण विस्मय से भाई के मुंह की ओर तकते रहे।

राम—भाई लक्ष्मण ! आज ज्ञात हुआ कि पिता जी ने हम लोगों को प्राप्त करने के लिये कितना भारी बलिदान किया है। उनके ऋण से हम कभी उऋण नहीं हो सकते।

लक्ष्मण—बात क्या है ?

राम—श्री पिता जी दीर्घ काल तक पुत्रहीन रहे थे, इसलिये उन्होंने पुत्र प्राप्ति के लिये विवाह पर विवाह किये और जो विवाह माता कैकेयी के साथ हुआ उसमें यह शर्त हुई कि उस विवाह की सन्तान का सिंहासन पर अधिकार रहेगा।

लक्ष्मण—पिता जी को यह शर्त करने का क्या अधिकार था ? राज्य उनकी निज की सम्पत्ति तो नहीं था ?

राम—यह प्रश्न उठाना हमारा काम नहीं। हम लोगों को इस जगत में लाने वाले देवता वह हैं। इसलिये उनकी आज्ञा हमारे सिर-आंखों पर रहेगी।

लक्ष्मण—हमारे कुल में आदि से लेकर आज पर्य्यन्त ज्येष्ठ पुत्र राज्य का अधिकारी रहा है। पिता जी इस प्रथा को कैसे तोड़ सकते थे? यदि उन्होंने नीति या और किसी कारण से किसी समय ऐसा किया तो हम लोग उसके लिये उत्तरदायी कैसे हो सकते हैं?

राम—यह बालकों की सी बातें हैं। पिता और माता की आज्ञा हमारे लिये परमात्मा की आज्ञा है। मेरा आत्मा कह रहा है, और भविष्य बता देगा, कि इसमें कोई रहस्य है जिसे हम इस समय जान नहीं सकते। शायद परम पिता परमात्मा को इस शरीर से कोई और कार्य लेना है।

लक्ष्मण—यदि आपका यह निश्चय है तो आपका सेवक आपके साथ चलेगा।

राम—वनवास राम को मिला है, लक्ष्मण को नहीं।

लक्ष्मण—तो क्या वनवास मिले बिना वन जाना मना है?

राम—(हंसकर) नहीं तो!

लक्ष्मण—फिर लक्ष्मण को चरणों से अलग होने का उपदेश क्यों करते हैं? वह जानता है कि उसके भाव इतने उच्च नहीं जितने आपके हैं। वह अयोध्या के राज्यसिंहासन पर आपके अतिरिक्त अन्य को नहीं देख सकेगा। इसलिये यदि आप उसे

यहां छोड़ जायेंगे तो घरेलू कलह, जिससे बचने के लिये आप वन की शरण ले रहे हैं, होकर रहेगा। मैं अयोध्या में रह कर मौन नहीं रह सकता।

राम—यह तो एक नई कठिनाई खड़ी हो गई।

लक्ष्मण – इसमें कठिनाई क्या है? लक्ष्मण आज पर्यन्त आपका सेवक रहा है, वह आपके बिना जीवित नहीं रह सकेगा। उसे यदि जीवित देखना है तो आपको अपने चरणों में रखना होगा।

राम—यदि तुम्हारा यही विचार है तो माता सुमित्रा से आज्ञा ले लो।

❀ ❀ ❀

सीता—अति शीघ्र लौट आये, क्या बात है?

राम—राजतिलक आज नहीं होगा। भरत के लौटने तक उसे स्थगित कर दिया गया है।

सीता—कारण?

राम—महाराज की इच्छा।

सीता—क्या महाराज की इच्छा अकारण भी हुआ करती है?

राम—सकारण हो या अकारण, महाराज की इच्छा महाराज की इच्छा है। (गम्भीरता पूर्वक) प्रिये! अब राज्य सिंहासन पर भरत बैठेंगे, और हम राज्य को घरेलू झगड़ों से सुरक्षित रखने के लिये चौदह वर्षों के लिये वन जा रहे हैं।

सीता—वन को? कब?

राम—अभी, इसी समय।

सीता—और सीता ?

राम—उसे यहां रह कर माता कौशल्या की सेवा करनी होगी जो ऐसे समय में, जबकि उन्हें सेवक की आवश्यकता है, उससे वंचित रहेंगी।

सीता—क्या सीता आपकी अर्धाङ्गी नहीं ?

राम—क्यों नहीं ?

सीता—तो फिर आप महाराज की आज्ञा का पालन कैसे करेंगे ? वनवास आधे अङ्ग को मिला है या सारे को ?

राम—प्रिये ! मैं जानता हूँ कि तुम्हारी इच्छा मेरे साथ वन जाने की है। परन्तु वन महाराज की वाटिका नहीं। वहां चहुँ ओर सिंह, चीते और अन्य हिंसक जीव विचरते हैं, पग २ पर मनुष्य भक्षी राक्षस छिपे रहते हैं, कोसों तक मनुष्य का पता नहीं मिलता, वन्य फलों को छोड़ कर न कुछ खाने को मिलता है न पीने को, वस्त्र आभूषण तो बस ईश्वर का नाम है, रहने को मकान नहीं, पाओं में जूता नहीं, वनों का वास वन्य मनुष्यों के लिये है, तुम्हारे जैसी राज-पुत्री के लिये नहीं।

सीता—आप क्या कह रहे हैं और किसे कह रहे हैं ? सीता ने जन्म जन्मान्तरों की तपस्या के पश्चात् आप को पाया है, वह नहीं जानती परन्तु उसका अन्तरात्मा इस बात की साक्षी देता है कि सहस्रों, नहीं २ लाखों वर्षों तक आवागमन के चक्कर में भटकने के पश्चात् उस ने आप के श्रीमुख के दर्शन किये हैं, और वह यह कहने के योग्य हुई है कि राम मेरे हैं और मैं उन

की हूँ ।' आप के विना यह राज्यभवन उसे काट खाने को दौड़ेंगे, वस्त्राभूषण उसे चुभेंगे, खाद्य वस्तु कंठ से नीचे नहीं उतरेंगी । आप के साथ होते वन महाराज की वाटिका तो नहीं, परमात्मा का विस्तृत उद्यान दिखाई देगा, कोकिलों की कू कू कृत्रिम वाद्यों से सहस्र गुणा भली प्रतीत होगी, वृक्षों की छाया गगन-चुम्बी अटारियों से अधिक सुखदायक रहेगी, (चरणों में सिर रख कर) नाथ ! परमात्मा के लिये मुझे चरणों से पृथक न कीजिये ! मैं प्रतिज्ञा करती हूँ कि आप से वन में कोई वस्तु नहीं मांगूंगी । आप का दर्शन मेरे आत्मा का भोजन होगा, और आप की सेवा इस तुच्छ शरीर की खूराक । जहाँ आप जायेंगे मैं आप के मार्ग के कंटक हटाना अपना सौभाग्य समझूंगी ।

राम—(सीता को उठाकर गले से लगाते हुये, रुंधे स्वर से) प्रिये ! यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो मैं उस में बाधा नहीं डाल सकता । जो कुछ गृह में है ब्राह्मणों और निर्धनों को दान कर दो । हमें अधिक समय यहाँ नहीं ठहरना ।

* * *

"उर्मिला ! प्रिये ! भाग्य का इतना प्रबल चक्कर आज तक नहीं देखा था ।"

उर्मिला—क्यों स्वामिन्, क्या हुआ ?

लक्ष्मण—क्या बताऊं ? शब्द मुख से निकलते हैं, परन्तु हृदय उन पर विश्वास नहीं करता !

उर्मिला—(मुस्करा कर) क्यों नहीं करता ?

लक्ष्मण—आज प्रातः तक राम युवराज बन रहे थे, परन्तु अब भरत युवराज बनेंगे !

उर्मिला—(विस्मय से) सच ?

लक्ष्मण—यही तो कह रहा हूँ कि हृदय उस पर विश्वास नहीं, करता और……

उर्मिला—और क्या ?

लक्ष्मण—राम चौदह वर्ष के लिये वन में जायेंगे।

उर्मिला के मुख से चीख निकल गई और उस के नेत्रों से अश्रुधारा बह निकली।

लक्ष्मण—अभी से घबरा गईं, सारी बात तो सुन लेतीं।

उर्मिला—(आंसू पोंछ कर) क्या इस से बुरी सूचना शेष है ?

लक्ष्मण—भाभी जी भ्राता जी के साथ वन को जायेंगी !

उर्मिला—बहिन और जीजा जी वनों में विचरेंगे ! जहाँ कोई खाद्य पदार्थ नहीं मिलेंगे, वास स्थान नहीं होगा, जहाँ वन्य पशु घूमते हैं, जहाँ सर्प और अजगर रेंगते हैं। यह कैसे हो सकेगा ? और वह भी एक दिन, दो दिन, एक मास, दो मास, एक वर्ष, दो वर्ष के लिये नहीं, इकट्ठे चौदह वर्ष के लिये !

लक्ष्मण—एक शब्द में इसका उत्तर 'महाराज की इच्छा, नहीं ईश्वर इच्छा' कहा जा सकता है।

उर्मिला—फिर भी यह इच्छा क्यों हुई ? (नेत्र रोते रोते लाल हो गये)

लक्ष्मण—माता कैकेयी ने महाराज को उनका कोई भूला हुआ प्रण याद दिलाया, जिसने उन्हें विवश कर दिया कि वह राम को वन में भेजें और भाभी जी ने उनकी सहधर्मिणी होने के कारण उस आज्ञा को अपने आप पर भी लगा लिया।

उर्मिला—तो अब क्या होगा?

लक्ष्मण—मैंने उनके सेवक होने के नाते उनके साथ जाने का निश्चय किया है, ताकि वनवास के समय उनके दुःखों को हलका कर सकूं।

उर्मिला—आप धन्य हैं! परन्तु आप को मुझे भी साथ चलने की आज्ञा देनी होगी। मैं आपकी तो नहीं, वहिन जी की सेवा करके जीवन कृतार्थ कर लूंगी।

लक्ष्मण—(उर्मिला को गले से लगाते हुए रुंधे हुये स्वर से) उर्मिला! मुझे तुम से यही आशा थी। तुमने गौरव से मेरा सिर ऊंचा कर दिया। परन्तु शोक है कि मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण नहीं कर सकूंगा।

उर्मिला—(विस्मित होकर) क्यों?

लक्ष्मण—बता चुका हूँ कि वनवास की आज्ञा राम के लिये है, मेरे लिये नहीं। मैं यदि वन में जा रहा हूं तो राजाज्ञा की पूर्ति के लिये नहीं, वल्कि अपने सेवक धर्म को निवाहने के लिये। वह धर्म मुझे विवश करता है कि अपने आधे अङ्ग को माता सुमित्रा और माता कौशल्या की सेवा के लिये छोड़ जाऊं। उर्मिला! प्रिये! विचार करो उस समय का जो दूर नहीं, जब राजकुमार भरत

कोशल राज्य के स्वामी होंगे, उस समय माता कैकेयी का बोलबाला होगा, दूसरी माता उनके हाथों और मुख की ओर देखेंगी, और वह जैसे भी चाहे उनसे व्यवहार करेंगी। उस समय यद्यपि माता सुमित्रा की सेवा के लिये राजकुमार शत्रुघ्न उपस्थित होंगे, परन्तु माता कौशल्या को सहारा देने वाला कौन होगा? उन्हें पग पग पर राम और सीता की याद आयेगी, और कौन जाने इतने दीर्घ काल पर्यन्त वह जीवित भी रह सकेंगी या नहीं। मैं तुम्हें यहाँ छोड़ना चाहता हूं, ताकि तुम ऐसे समय में उस स्थान की पूर्ति कर सको जो राम, भाभी जी, और मेरी अनुपस्थिति में रिक्त रहेगा।

उर्मिला—आप के बिना इतना दीर्घ काल कैसे काट सकूंगी? (आंखें अश्रु परिप्लुत हो गईं)

लक्ष्मण—उर्मिला! तुम वीर-पुत्री हो, वीर-पत्नी बनने का प्रयत्न करो।

उर्मिला—स्वामिन्! आप के बिना यह जगत अन्धकारपूर्ण होगा।

लक्ष्मण—उर्मिला! मेरी उर्मिला! क्या तुम्हें विश्वास है कि मैं तुम्हारे बिना जीवित रह सकूंगा? पर समय इन बातों का नहीं, धर्म का मार्ग असि की धार है। इसपर चलते हुये हमें अपने हृदय को काट देना चाहिये। मैं यदि अपने शीश पर चौदह वर्ष के बनवास का बोझ उठा रहा हूँ तो इसलिये कि मेरा धर्म यह कह रहा है। और वही धर्म मुझ से और तुम से यह बलिदान

मांग रहा है कि हम इतने दीर्घ काल पर्य्यन्त एक दूसरे से अलग रहें। मुझे आशा ही नहीं, तुम्हें अपने आत्मा का अंग जानते हुये यह विश्वास है, कि तुम इस परीक्षा में उत्तीर्ण होगी। पुरुषार्थी के लिये दिन, मास, वर्ष कोई अस्तित्व नहीं रखते। परमात्मा ने चाहा तो इन चौदह वर्षों में हम वनों में भी कोशल से बड़ा राज्य स्थापित करने में सफल होंगे। वह राज्य, वह शासन यदि मेरा स्वप्न पूर्ण हुवा, तो हमारे अपने भुजबल से बनेगा, और इस प्रकार का होगा कि तुम सदैव उसपर गौरव करोगी।

उर्मिला—(चरणों में गिरकर) नाथ ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य्य है। उर्मिला कलेजे पर पत्थर रखेगी, परन्तु जिस धर्म मार्ग पर आप चलना चाहते हैं उसमें बाधा नहीं बनेगी। जाइये ! भावी इतिहास-वेत्ता उर्मिला के समान तुच्छ और निर्बल स्त्री को भूल जायेंगे, परन्तु भ्रातृ प्रेम के लिये आप का नाम अमर हो जायेगा। भगवान् आपको अपने संकल्प में सफल करें !

लक्ष्मण—(उर्मिला को हृदय से लगाकर) उर्मिला ! मेरी उर्मिला ! तो तुम माता कौशल्या की सेवा करोगी ?

उर्मिला—(रोते हुये) नाथ ! क्यों न करूंगी, जब आपकी यह आज्ञा है।

❀ ❀ ❀

निर्वासितों को देश से निकालने के लिये रथ आ गया। उस में आसीन होने के लिये महाराज दशरथ की आंखों के तारे आ गये। उस समय उनका भेष राजकुमारों का न था। उनके शरीर

पर वल्कल शोभायमान थे। राज्य भवनों में रहने वाली सीता माताओं के चरणों में मस्तिष्क नवाकर, श्वसुर जी के पाओं छू कर और बहनों को गले मिल कर आगे बढ़ी, राम ने भुजा से पकड़ कर उसे रथ पर बिठाया, और स्वयं महाराज दशरथ से विदा होने को उन के चरणों में झुके, तो महाराज की चीखें निकल गईं, और जिस समय उन से विदा हो कर माता कौशल्या की ओर गये तो दर्शकों की सिसकियों की ध्वनि दूर २ तक सुनाई देने लगी।

राम ने माता कौशल्या से विदा होकर माता सुमित्रा के चरणों में झुक कर आशीष ली, और माता कैकेयी को हाथ जोड़ कर प्रणाम किया। उधर लक्ष्मण जी तीनों माताओं से विदा हो कर आगे बढ़ने को थे कि उर्मिला ने उनके चरणों में गिर कर मार्ग रोक लिया। उसे उठाते हुये लक्ष्मण जी के मुख से निकला:—

लक्ष्मण—उर्मिला! सीता राम के साथ रहेगी, पर तुम्हारा राम वन को जारहा है अकेला, तुम्हें यहां छोड़ कर। उसे जीवन यात्रा का एक भारी भाग तुम्हारे बिना व्यतीत करना है। उठो सुस्मित वदन से उसे विदा करो, ताकि जब भी वन प्रदेश में वह तुम्हारे ध्यान में मग्न हो, तुम्हारा प्रफुल्लित मुख उसके नेत्रों के सामने आये।

उर्मिला—(चरणों को छू कर) परमात्मा आपको शक्ति दें! आप की उर्मिला आप की छवि को दृष्टि के सामने रख कर इस दीर्घ काल को व्यतीत कर देगी। आप जीजा जी और जीजी की सेवा करते हुये इस तुच्छ स्त्री को भूल जायें।

क्योंकि इसी प्रकार ही हम विधाता को जीत सकते हैं। जाइये प्रतीक्षा हो रही है, रथारूढ़ हो जाइये।

रथ आगे चला तो अयोध्या वासियों की भीड़ पैदल साथ थी। यह देख कर सारथी ने घोड़ों को चाबुक लगाया। घोड़े चाबुक खाने के अभ्यस्त नहीं थे, इस लिये रथ को लेकर उड़े और पैदल लोगों को पीछे छोड़ कर वायु वेग से बढ़े। उस समय राम और लक्ष्मण ने पीछे मुड़ कर देखा तो महाराज दशरथ "हाय राम" "हाय लक्ष्मण" "हाय सीता" कहते हुये पागलोंकी भाँति भाग रहे थे और ठोकर खा कर गिरने को थे कि महामन्त्री ने दौड़ कर उन्हें थाम लिया।

दशरथ प्राण त्याग

"कौशल्या ! देवी ! जागती हो ?"

"जागती हूं महाराज ! मुझ अभागी को नींद कहां !"

"मेरे पापों ने आज तुम से राम जैसा सुपुत्र छीन लिया (सिर पर दोहत्थड़ मारते हैं)।

"क्या कह रहे हैं महाराज ! आप का इसमें क्या दोष ?"

"कौशल्या ! क्या तुमने वह पुरुष देखा है जो आक बोकर आम खाने की आशा रखता हो ? जो पलाश को सींच कर सेब खाना चाहता हो ? यदि नहीं देखा तो अब देख लो।"

कौशल्या—महाराज ! कौनसा विचार दुख दे रहा है ?

दशरथ—लोग कैकेयी को दोष देते होंगे, मैंने भी अपने मुख से शायद उसे बुरा कहा होगा, परन्तु दोष मेरे खोटे कर्मों का है, और किसी का नहीं।

कौशल्या—महाराज का ध्यान किस ओर जा रहा है ?

दशरथ—आज पूर्णिमा है, चन्द्रदेव यौवन पर हैं, परन्तु राज्य लक्ष्मी मुझ से विदा हो रही है। इस समय अपने किये हुए कर्म दृष्टिगोचर हो रहे हैं !!

कौशल्या—आपने खोटे कर्म किये हैं, यह कोई नहीं मान सकता।

दशरथ—जगत क्या जाने? पापी पाप को गन्दगी की भाँति छिपाता है, तो भी समय आने पर वह अपने आप को दिखाये बिना नहीं रहता।

कौशल्या—आप·········

दशरथ—(हाथ के संकेत से रोक कर) मैं निज को जानता हूं! मुझे मत रोको!! आज इस विश्व को छोड़ने से प्रथम मैं तुम्हें एक कथा सुनाना चाहता हूं जिसने भीतर ही भीतर मेरे हृदय को जला रखा है, जिसे स्मरण करके मैं अपने आप को कभी क्षमा नहीं कर सकता। देवी! तू उस समय अनूढ़ा थी, मैं युवराज था, युवावस्था थी, मैं हर प्रकार के अस्त्र-शस्त्र चलाने में प्रवीण था, शब्द-वेधी प्रसिद्ध था, शब्द पर बाण चलाता था, डींग मारता था कि मेरा बाण निष्फल नहीं जा सकता (माथे पर दोहत्थड़ मार कर) हाय! मैं शब्द-वेधी न होता!! ·······

महारानी कौशल्या ने शीघ्रता पूर्वक हाथ पकड़ लिया, और बोली "महाराज संभलिए! क्या कर रहे हैं?"

दशरथ—(उठ कर बैठते हुए) कौशल्या! मुझे छोड़ दो। मुझे अपने पाप का प्रायश्चित करने दो। मैंने ही तुम्हें पुत्रहीन किया है!

कौशल्या—(हाथ जोड़ कर) नाथ! ऐसे शब्द मुख से न निकालिये।

दशरथ—(संभल कर) हां महारानी! मैं तुम्हें वह कहानी

सुनाने लगा था, बहक गया.........बहुत वर्ष बीते वर्षा काल था, धीमी २ फुहार पड़ रही थी, सरयू का पवित्र जल गदला होकर इस प्रकार भागा जा रहा था मानों क्रोधित सर्प किसी को डसने के लिये जा रहा हो। मैं यौवन के मद में मस्त धनुष कंधे पर डाले अयोध्या के बाहर बन में घूम रहा था। सूर्यदेव अस्ताचल को जा चुके थे, अन्धकार फैल रहा था, परन्तु मुझे चिन्ता न थी; शब्द पर बाण छोड़ने वाले के लिये, शब्द-वेधी के लिये, अन्धेरा और उजाला एक समान हैं, इस लिये फैलते हुये अन्धकार का ध्यान न करके मस्त घूम रहा था, तुणीर में बाण मचल रहे थे और मेरे शरीर में हृदय गुदगुदियां ले रहा था। आँखें इधर उधर लग रही थीं, श्रोत्र तन रहे थे कि किसी ओर शिकार की शक्ल दिखाई दे या उसका शब्द सुनाई दे और उसे यम लोक पहुँचाऊं, जब कि एकाएक.........गड़, गड़, गड़, गड़, गड़,.........साथ ही मेरी चुटकी से बाण छूट कर वायु में कूद गया। साथ ही आवाज़ आई :—

'पापी ! मैंने तेरा क्या बिगाड़ा था जो तूने जल भरते का वध कर दिया !"

कौशल्या—(चौंक कर) हरे ! हरे ! महाराज, क्या आपका बाण किसी मनुष्य को लगा ?

दशरथ (मौनरहने का संकेत करते हुए) मेरा कलेजा धक से रह गया, सिर पर पाओं रख कर उस ओर भागा जिधर बाण गया था, तो देखता हूं कि एक ऋषिपुत्र, बाल बिखरे, बाण कलेजे

में लिये, तड़प रहा था ! मेरे पाओं तले की मिट्टी निकल गई जब मैंने सुना, "मैंने कभी किसी को दुख नहीं दिया था, मुझ जटा-धारी के वध से किसी को क्या लाभ हो सकता है ? हाय ! माता पिता क्या करेंगे, जिनकी लाठी इस भाँति टूट गई !!……"

मेरे पाओं की चाप सुनकर ऋषि-पुत्र ने मेरी ओर देखा और बोला "इस बाण को मेरे कलेजे से निकाल दो, मेरा शरीर इस की अग्नि से फुँका जा रहा है।"

मैं जानता था कि बाण कलेजे से निकला और ऋषि-पुत्र के प्राण पखेरू भी साथ ही उड़ जायेंगे। दूसरी ओर उस का दुख भी देखा नहीं जा सकता था। ना ही अभी तक मुझे यह विदित था कि अनजाने में मैंने किस के रक्त से हाथ रंगे हैं। इस लिये मैंने कहा 'महात्मन्, मुझ से भूल हुई, वन्य पशु समझ कर मैंने बाण छोड़ दिया। इस पाप का प्रायश्चित कैसे होगा ?'

ऋषि पुत्र—विधाता के लेख को कौन मेट सकता है ? परन्तु अपने दुख से अधिक यह दुख हो रहा है कि माता पिता मेरा मार्ग देख रहे होंगे, वह तृषित थे, उन के लिये जल लेने आया था ! (कराह कर) वह दोनों अन्धे हैं, मैं ही उन की लाठी था। अब उनका क्या बनेगा ?

ऋषि पुत्र के शब्दों को सुन कर मेरे हृदय पर जो बीती उसका वर्णन कैसे करूं ? मुख से केवल यह निकला "ऋषि कुमार ! क्षमा करो मैं कौशल देश का युवराज दशरथ हूं, भूल से पाप हो गया, घोर पाप हो गया !!……"

ऋषिकुमार—मैंने तुम्हें क्षमा किया परन्तु उन की क्या कहूं······!! मेरा आत्मा शरीर को छोड़ रहा है, तुम्हारे बाण ने आग लगादी है·········अब यह घड़ा उठालो, यह पथ पिताजी के आश्रम को जाता है, शीघ्र जा कर उन्हें बतादो कि उन का पुत्र श्रवण अब संसार में नहीं रहा··········

ऋषिकुमार तड़पा और कुछ ही क्षणों में मिट्टी का ढेर हो गया। मैं निस्तब्ध खड़ा स्वप्न सा देख रहा था। ऋषिकुमार की अन्तिम चीत्कार ने यह स्वप्न भंग कर दिया, और मैं घट कंधे पर उठा कर उस ओर चल दिया जिधर ऋषि आश्रम था।······"

इतनी कथा सुन कर महारानी कौशल्या के मुख से चीख निकल गई। वह स्वयं पुत्र-वियोग में तड़प रही थी, इस लिये इस बात से अनभिज्ञ नहीं थी कि उस का सदैव के लिये बिछुड़ना माता पिता के लिये क्या होता है। महाराज दशरथ के सामने वह सारा दृश्य ऐसे घूम रहा था मानों आज ही की बात है। वह प्रसंग जारी रखते हुए बोले—

"मेरे पाओं की चाप दूर से ही सुन कर ऋषि बोले, "पुत्र श्रवण! इतनी देरी! हम तो तृषा से मरे जा रहे हैं।"

मैंने आगे बढ़ कर पास पड़े बर्तन में जल डाल कर कहा, "महाराज! जल पान कीजिए।"

शब्द सुन कर ऋषि के कान खड़े हो गए और वे बोले— "तुम्हारी आवाज़ कैसे बदल गई? तुम श्रवण हो या कोई राक्षस मुझे धोखा दे रहा है?"

मेरा शरीर काँप उठा और मैंने डरते २ कहा, "महाराज ! मैं श्रवण नहीं, कोई राक्षस भी नहीं। पापी राजकुमार दशरथ हूं ! मेरे बाण ने आप के पुत्र को घायल कर दिया है.........मैं निर्दोष हूं...... क्षमा कीजिये......मैंने समझा कोई हस्ति जल पी रहा है.........."

मेरे शब्द नहीं थे इन्द्रवज्र था, जिस के वार से ऋषि बेसुध हो कर गिरा। ऋषिपत्नि दम तोड़ने लगी। अल्पकाल के पश्चात जब उन के होश ठिकाने आये तो ऋषि की पुकार हृदय-वेधक थी जब उसने कहा:—"हे पुत्र ! तूने हमारे कारण इतने कष्ट सहे। पितृ-ऋण से उऋण होने में युवाकाल नष्ट कर दिया ! स्वयं दुःखी हुआ पर हमें सुख दिया। हाय ! जगत से धर्म्म जाता रहा। मेरे पुत्र का घातक अभी जीवित है और वह धर्म्म का स्तम्भ जिस ने पितृ सेवा का आदर्श स्थापित कर दिया, पापी की भाँति मार दिया गया........."

इस विलाप को श्रवण करना असम्भव था, इस लिये मैं ने कहा—"भगवन् ! आप को सब कुछ ज्ञात है, आप का गला बैठा जा रहा है, जल का एक घूंट तो पान कर लीजिए"।

ऋषि—जल ! जल ! जल पान कराने वाला नहीं तो उसे पान करने वाले कैसे जी सकते हैं ? राजकुमार ! तूने अनर्थ कर दिया। ....बन में विचरने वाले बनवासी के रक्त से हाथ रङ्ग लिये। किस जन्म में तेरा भला होगा ?.........

मैं—अपराधी हूं। पर जान-बूझ कर मैंने ऐसा नहीं किया।

ऋषि—जान बूझ कर यदि तूने यह पाप किया होता तो क्या तू समझता है कि तेरी मूर्धा सात टुकड़े हो कर उड़ न गई होती ? इस समय पर्यन्त रघुकुल का बीज नाश न हो गया होता ! मेरे कुल का विनाशक इतनी देर यहीं खड़ा रहता ? ......

मैं—महाराज ....

ऋषि - (बात काटकर) हमें उस स्थान पर ले चल जहाँ हमारा लाल पड़ा है ! हाय ! नेत्र होते तो उसके शरीर को देख कर कलेजा कुछ तो ठंडा कर लेते !

ऋषि तथा ऋषि-पत्नि की लाठी पकड़ कर मैं उन्हें उस स्थान पर ले गया जहाँ मेरे पापों के फल-स्वरूप उनका जीवनाधार निर्जीव पड़ा था। उसके मृत शव को हाथ लगाकर, उसे गोदी में लेकर, बूढ़े बूढ़ी ने जो विलाप किया उसे सुनाकर मैं तुम्हें अधिक दुःखी नहीं करूंगा। मेरे श्रोत्र उन हृदय-वेधक शब्दों को इस समय भी उसी प्रकार सुन रहे हैं जिस प्रकार वह उस अन्धियारी रात्रि में कहे गये थे; विशेष कर जब ऋषि ने कड़क कर कहा था:—

"राजकुमार ! तूने क्षत्रिय होते हुये एक ब्रह्मचारी, तपस्वी, वानप्रस्थी का वध किया है। तेरी इच्छा ऐसा करने की न थी यह अन्य बात है, परन्तु तू इसके फल से बच नहीं सकता। जिस भांति तूने हमारे पुत्र का वध कर के हमें जीते ही मार दिया है, जिस भांति तूने हमारे पुत्र को हम से अलग किया है, उसी भांति तू भी पुत्र-शोक से मृत्यु को प्राप्त होगा !!"

यह अन्तिम शब्द थे जो उस वृद्ध के मुख से निकले। उन्हें मुख से निकाल कर ऋषि गिरा और गिरते ही अमर आत्मा नशवर शरीर को छोड़ कर चलता बना। ऋषि-पत्नि पहले ही दम तोड़ चुकी थी······(कुछ ठहर कर) कौशल्या! देवी! समय आगया है। ऋषि-वाक्य पूर्ण हो रहा है······राम! ······राम!······क्या तुम्हारे दर्शन हो सकते हैं?······क्या कोई ······तुम्हारे दर्शन करा सकता है?······नहीं···पापी पाप का फल भोगेगा······कौशल्या! मुझे तुम्हारा मुख नहीं दीखता! ······ मेरी स्मृति जारही है ······यम के दूत उतावले हो रहे हैं······राम! तुम कहां हो? ······बेटा! मुझे क्षमा करना ······कौशल्या! तुम कहां हो? मुझे तुम नहीं दीखतीं ······सुमित्रा! तुम कहां हो?···कैकेयी? तुम कहां हो? ······" शब्द गले में रह गया। कौशल्या तथा अन्य महारानियां जल्दी से उठीं तो महाराज के नेत्र पथरा चुके थे। राज्य-वैद्य भागे हुए आये, पर जब तक वह आयें, वहां क्या था, मिट्टी का ढेर!!!

ऋषि सभा

जिस समय की कथा हम लिख रहे हैं वह पाश्चात्य विद्वानों के कथनानुसार आज से कुछ सहस्र वर्ष पूर्व का था। पर आर्य्य इतिहास-वेत्ता इसे सहस्रों से आगे लाखों वर्षों तक ले जाते हैं। उस समय में भारत का मानचित्र आज से भिन्न था—क्योंकि एक ओर तो राजनैतिक दृष्टि से इस में अनेक स्वतन्त्र राज्य उपस्थित थे, दूसरी ओर देश में वन और जंगल भारी गणना में उपस्थित थे जिनकी स्थिति आर्थिक दृष्टि से अत्यावश्यक थी। इन्हीं बातों के कारण देश में पशुओं की कमी न थी और इसलिये दुग्ध घी सर्व साधारण को प्रायः खुला मिल जाता था। दानवीर दान देते थे तो दुग्ध देने वाले पशुओं, विशेष कर गो का। इन्हीं वनों की कृपा से दरिद्र से दरिद्र व्यक्ति दुग्ध, फल तथा इंधन आदि के लिये किसी के सन्मुख हाथ पसारता न देखा जाता था।

वनों के अतिरिक्त देश में ऋषि आश्रमों का एक जाल सा बिछ रहा था, जहाँ राव और रंक एक ही भांति जीवन व्यतीत करते हुए, एक ही आचार्य वा गुरु से विद्या प्राप्त करते थे। विद्या उपार्जन में बड़े छोटे में कोई अन्तर दीख नहीं पड़ता था।

उपनयन संस्कार के पश्चात् विद्यार्थी का पुनर्जन्म माता सरस्वती के गर्भ से आचार्य पिता के गृह में हुआ समझा जाता था। माता की सारी सन्तान एक थी और एक गिनी जाती थी।

यह ऋषि-आश्रम केवल पुस्तक विद्या ही नहीं सिखाते थे, उन में नाना प्रकार की विद्याओं के साक्षात (practical) प्रयोग और अनुसन्धान करने का प्रबन्ध भी किया जाता था। वहाँ एक ओर कलाकौशल के विद्यार्थी धुरन्धर विद्वानों से कलाकौशल तथा शिल्प आदि सीखते थे—न केवल सीखते थे, वरन् यन्त्र आदि स्वयं बनाते थे और दूसरी ओर क्षात्र धर्म में रुचि रखने वाले धनुर्विद्या को ग्रहण करते हुए नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र बनाने में प्रवीण होते थे। इस प्रकार ऋष्याश्रम धर्म, ज्ञान, विज्ञान, कला-कौशल, राजनीति, धनुर्विद्या आदि के सीखने के लिये भारी विद्यापीठ (यूनीवर्सिटी) थे, जो अपने अपने आचार्य के नाम से विख्यात होते थे।

इसी प्रकार का एक विश्वविद्यालय गंगा और यमुना के संगम पर उस स्थान पर उपस्थित था जहाँ आज प्रयाग का भारी नगर आबाद है। उस आश्रम के आचार्य महात्मा भरद्वाज थे, जिनके नाम की ख्याति हमारी कथा के समय दूर दूर तक फैल रही थी। उस आश्रम में विद्या उपार्जन के लिये किसी विद्यार्थी से, चाहे वह राजपुत्र हो या दरिद्र, न कोई शुल्क लिया जाता था, न भोजन का व्यय। आश्रम के व्यय की पूर्त्ती का प्रबन्ध विद्यार्थी स्वयं करते थे। कृषि-विभाग लगभग सब आश्रमवासियों के भोजन

के लिये अन्न, सब्जी, फल फूल इत्यादि उत्पन्न करता था। यहाँ तक कि कभी कभी राजा लोग भी अपनी सेना सहित आश्रम में पधारते तो आश्रम किसी के सन्मुख हाथ नहीं फैलाता था। आश्रम के साथ लगती एक भारी गोशाला थी, जिस में आश्रमवासियों को दुग्ध पिलाने के लिये सहस्रों गौवें रहती थीं। उनके चरने के लिये आश्रम के निकट ही भारी जंगल था जहाँ घास, लकड़ी, फल फूल आदि बहुत थे। यह जंगल विद्यार्थियों को वन-विद्या (Forestry) सिखाने के काम भी आता था।

इस आश्रम में एक सुरक्षित स्थान पर, जो विद्यार्थियों के पठन-पाठन के स्थान से दूर था, हम आज एक छोटी-सी सभा देख रहे हैं जिसमें महर्षि भरद्वाज के मुख से यह शब्द निकलते हुए सुनाई देते हैं—

भरद्वाज—महात्मा सज्जनो! आज इस आश्रम की भूमि पवित्र हो गई, जो आप महानुभावों ने इतने कष्ट उठाकर इस पर अपने चरण रखे। इस कष्ट के लिये आपसे क्षमा मांगता हूं। परन्तु समय ऐसा आ रहा है कि आप लोगों का यहां पधारना आवश्यक था। इसलिए अधिक समय न लेता हुआ महर्षि विश्व-मित्र जी से प्रार्थना करूँगा कि वह देश की साम्यक् अवस्था आप के सन्मुख रखें।

आपको स्मरण होगा कि महर्षि विश्वमित्र जी ने आपके देश तथा जाति के लिये ही नहीं, मनुष्य समाज के लिये क्या कुछ काम किया है? इस कारण आशा है कि जो कुछ वे कथन करेंगे

आप उसे दत्तचित्त होकर श्रवन करेंगे।

विश्वमित्र—सज्जनो ! शोक है कि जिन लोगों को इस समय देश की शोचनीय अवस्था पर ध्यान देना चाहिये था, उनमें से एक भी यहां उपस्थित नहीं। इसका अर्थ केवल यही हो सकता है कि क्षत्रिय लोग विषय-वासना में पड़कर अपने धर्म को विस्मरण कर चुके हैं। इस कारण हम लोगों के सिर पर भार अत्यधिक हो गया है, अस्तु। आप जानते हैं कि मेरा आश्रम सिद्धाश्रम[1] के नाम से विख्यात है। उसके निकट ही मलद[2] तथा करुष नाम के दो प्रदेश हैं जो धन-धान्य से परिपूर्ण थे। परन्तु कुछ समय हुआ सुन्द नाम राक्षस ने उन प्रदेशों में लूट-खसोट मचाना आरम्भ किया। परिणाम यह हुआ कि वह प्रदेश उजड़ गए। लोगों ने उस समय अगस्त्य मुनि जी के चरणों में प्रार्थना की और उन्होंने सुन्द को मार गिराया। इसके पश्चात् अगस्त्य जी दक्षिण दिशा को चले गए तो सुन्द की भार्या ताड़िका ने जो यक्ष कन्या थी, अपने पुत्रों मारीच और सुबाहु को साथ लेकर फिर उस प्रदेश पर अधिकार जमा लिया। उस स्त्री को हम लोगों से विशेष शत्रुता थी, इस कारण उसने हमें तथा अन्य तपस्वियों और विद्यार्थियों को सताना आरम्भ किया। हमने युवावस्था में ऐसे सहस्रों राक्षसों के सिर तोड़े हैं, परन्तु अब शरीर उस अवस्था में नहीं रहा। न ही चित्त हिंसा पर उतारू

---

१. बकसर के निकट ज़िला शाहबाद में भोरा और गङ्गा के सङ्गम पर था। २. बिहार प्रान्त में शाहबाद ज़िले के पश्चिमी भाग का नाम था।

होता है। इसलिए हमने कोशल देश के महाराजा दशरथ से प्रार्थना की और वशिष्ठ जी की कृपा से उन्होंने हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ली, कि महाराज के बड़े राजकुमार राम और उनके कनिष्ठ भ्राता लक्ष्मण कुछ समय हमारे आश्रम में व्यतीत करके हमसे धनुर्विद्या ग्रहण करें। हमारी इच्छा थी कि जीवन-समाप्ति से पूर्व उन विद्याओं को जिन्हें हमने सम्पूर्ण आयु व्यतीत करके प्राप्त किया है, किसी योग्य शिष्य को दे जावें। हमें वशिष्ठ जी द्वारा यह ज्ञात हो चुका था कि इस समय समस्त भारत में क्षत्रियों में यही दो राजकुमार इन विद्याओं की प्राप्ति के अधिकारी हैं। इसलिए हमने बला* तथा अतिबला* नाम विद्यायें सिखाने के अतिरिक्त अन्य बहुत-सी विद्यायें जिनका हमें ज्ञान था, उन दोनों राजकुमारों को सिखाईं। उन राजकुमारों ने हमारे निकट जो समय व्यतीत किया, उसमें हमने देख लिया कि उनके अन्दर संगठन शक्ति इतनी प्रबल है कि अल्प-काल में उन्होंने आश्रम के विद्यार्थियों तथा इर्द-गिर्द के ग्रामीण लोगों को सङ्गठित करके ताड़िका, मारीच और सुबाहु पर आक्रमण कर दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि ताड़िका और सुबाहु तो मारे गये और मारीच भागकर कहीं दूर चला गया।

इसी प्रकार यमुना तीर पर मधु नाम राक्षस ने अपना स्थान बनाकर मधुपुरी बसाई है।

---

* इन विद्याओं का ज्ञाता हर प्रकार के भय से रहित हो सकता था।

तीसरी ओर हिमालय पर्वत पर मानसरोवर के निकट दशग्रीव नामक राक्षस ने अपना अधिकार जमा लिया है। यह राक्षस पुलस्त ऋषि का पौत्र और विश्रवा जी का पुत्र है। विश्रवा जी का बड़ा पुत्र यक्षराज विश्रवन है जिसे दशग्रीव ने लङ्कापुरी से निकाल कर उस राज्य को उससे छीन लिया है। फिर वह हिमालय पर्वत पर चला गया था पर दशग्रीव वहाँ भी पहुँच गया।

दशग्रीव जिसे जनता रावण कहती है, इस समय दक्षिण के समुद्रों में राक्षस द्वीप पर भी राज्य कर रहा है। लङ्कापुरी उसकी राजधानी है। उसके राज्य की सीमा पाताल देश से चलकर पृथ्वी के दक्षिणी सिरे पर पहुँच गई है। अब उसकी दृष्टि भारत पर लग रही है। परन्तु वह चतुर नीतिवान् होने के कारण भारत के राज्यों से एकाएकी झगड़ा मोल लेना नहीं चाहता। वह इस देश को लेना चाहता है पर बिना लड़े-भिड़े। मारीच, सुबाहु, मधु आदि सर्व राक्षस इस देश के बनों तथा जंगलों में उसी की सहायता से विचर रहे हैं। दक्षिणापथ में उसने जनस्थान नामक एक भारी बस्ती समुद्र तथा गोदावरी तीर पर बना ली है। उस बस्ती का राज्य उसने अपनी कनिष्ठ बहिन शूर्पणखा को, जिसके पति को उसने युद्ध में मार दिया था, दे रखा है। और उसकी सहायता उसके दो सौतेले भ्राता खर और दूषन चौदा सहस्र सेना सहित कर रहे हैं। यह बस्ती दण्डक वन के एक कोने पर है।

दण्डक वन में दशग्रीव के दूत शनैः शनैः छोटे-छोटे राज्य स्थापन करके उसके लिये मार्ग बना रहे हैं। उसी दक्षिणापथ में किष्किन्धा नाम नगरी में वानर जाति के राजा वाली राज्य कर रहे हैं। यह जाति वनों में रहती, वन्य फलों पर गुजारा करती, अति चतुर, फुर्तीली तथा बलवान है। राजा वाली स्वयं बड़े बुद्धिमान तथा शक्तिशाली हैं। दशग्रीव ने उनके साथ सन्धि कर रखी है जिससे दोनों परस्पर सहायक बन चुके हैं।

इस प्रकार जब समय आएगा और दशग्रीव समुद्र, आकाश तथा पृथ्वी-तल से भारत पर अधिकार जमाने के लिए बढ़ेगा तो वानर सेना उसकी सहायक होगी, स्थान-स्थान पर के राक्षस राज्य उसके साथ होंगे, और वह सुगमता से इस देश को अपने आधीन कर लेगा।"

विश्वमित्र जी मौन हुए तो महर्षि भरद्वाज जी ने सुतीक्ष्ण जी को कथन करने का संकेत किया।

सुतीक्ष्ण—"देश-हितैषी सज्जनो! आज आवश्यकता थी कि आपकी सभा में गुरुदेव महात्मा अगस्त्य मुनि जी स्वयं विराजमान होते। परन्तु अत्यावश्यक कार्यों में लगे होने के कारण उन्होंने मुझे आपके सन्मुख आने की आज्ञा दी है। आप समान दूरदर्शी सज्जनों के सामने मेरे समान अल्प-बुद्धि मनुष्य का कुछ कथन करना उचित तो नहीं, पर महर्षि जी की आज्ञा का उल्लङ्घन भी नहीं कर सकता। पूज्य विश्वमित्र जी के भाषण के पश्चात् मुझे आपसे केवल यह कहना है कि देश और जाति, नहीं नहीं,

वेद धर्म पर आपत्ति आ रही है। राक्षस लोग जो अपने-आप को मनुष्य-समाज के रक्षक कहते हैं, भारतवर्ष की स्वाधीनता को पद-दलित करके उसके वासियों को अपने चरण-सेवक बनाने पर तुल रहे हैं। आप को स्मरण होगा कि कुछ समय बीता भरतखण्ड और दक्षिणापथ के भीतर दो वस्तु ऐसी खड़ी थीं जो इन प्रदेशों को परस्पर मिलने नहीं देती थीं। इस कारण यह दोनों प्रदेश पृथ्वी के दो विभिन्न भाग बन गए थे जो इच्छा होते हुए भी एक दूसरे को कोई सहायता नहीं दे सकते थे। यह दो वस्तुएँ उत्तरीय विन्ध्याचल पर्वत तथा उसके आगे स्थित समुद्र थीं। राक्षस लोग उस समुद्र का आश्रय लेकर अपनी जल-शक्ति से भारत पर आक्रमण किया करते थे। राक्षसों में उनकी वह जाति जिसे कालकेय कहते हैं और जिसमें दशग्रीव ने अपनी बहिन शूर्पणखा का विवाह किया था, अति बलवान थी। वे लोग अपनी नौकाओं में आते थे और भारत के समुद्र-तीर को लूट-खसूट कर जो कुछ मिलता उठा ले जाते थे। उस समय भारतवासियों की जल-सेना अधिक नहीं थी। इस कारण जब प्रत्युत्तर में उन पर आक्रमण होता तो कालकेय राक्षस नौकाओं में कूदकर समुद्र के मध्य में पहुँच जाते थे, जहाँ भारतवासी न पहुँच पाते थे। उन लोगों के ऐसे अनेक अत्याचारों से तंग आकर देशवासियों ने गुरुजी (अगस्त्य मुनिजी) के चरणों में प्रार्थना की। गुरुजी ने उनकी सहायतार्थ दक्षिण को प्रस्थान किया। परन्तु सामने विन्ध्याचल पर्वत के गगनचुम्बी शिखर महाकाय राक्षसों की भांति मार्ग रोके

खड़े थे। आप सर्व सज्जनों को ज्ञात है कि गुरुदेव उस मिट्टी से नहीं बने जो आपत्तियों और बाधाओं को देखकर दिल छोड़ दें। उन्हें आपत्तियों और बाधाओं पर विजय पाने का रोग है। परिणाम यह हुआ कि वह विन्ध्य पर्वत जिसने उस समय-पर्यन्त किसी भारतवासी को मार्ग नहीं दिया था गुरुदेव के चरणों में झुक गया। आज भगवान् की कृपा तथा गुरुदेव के बुद्धिबल के कारण एक राजमार्ग भारत से दक्षिणापथ को जाता है।"

(साधु ! साधु ! करतलध्वनि)

"उसके पश्चात् गुरुदेव समुद्र तीर पर पहुँचे तो उसे देखकर उनका प्रथम अनुभव यह था कि भारतवासियों को अपनी जल-सेना बलवान बनानी चाहिये। परन्तु इस कार्य के लिये देश-देश के राजाओं की सहायता की आवश्यकता थी, जिसके मार्ग में राजनीति के दाओं पेच उपस्थित थे। इसलिये राजा लोगों के सन्मुख सहायतार्थ प्रार्थी होने के स्थान में गुरुजी ने वह कार्य किया जिसे कोई मनुष्य न कर सकता था और शायद भविष्य में भी न कर सके। उन्होंने समुद्र को शुष्क करने का विचार किया। बाह्य दृष्टि वाले मनुष्यों के लिये यह कार्य अमानुषी था। प्रत्युत गुरुजी का कथन सर्वदा यह रहा है कि यदि वह कार्य किया जिसे साधारण मनुष्य कर लेते हैं तो उसे करने में विशेषता क्या हुई ? उन्होंने इस विषय पर विचार किया, चिरकाल पर्यन्त विचार किया, और अन्त में ऐसा यन्त्र रचने में सफल हो गये जिसने अल्प काल में ही समुद्र के जल को उछाल कर इधर उधर फैंकना

आरम्भ करदिया। यह यन्त्र रचकर गुरुदेव ने एक स्थान पर जहाँ पृथ्वी के किनारों में अन्तर अधिक न था वाहर से आने वाले जल को रोकने का यत्न किया। आरम्भ में यह कार्य महान् था; पर गुरुदेव की इच्छा के सन्मुख जल को भी झुकना पड़ा, और अब आप स्वयं अपने नेत्रों से देख सकते हैं कि वह समुद्र जो भारत को दक्षिणापथ से अलग कर रहा था एक साधारण सरोवर से अधिक नहीं रहा। यह सरोवर भी शुष्क हो रहा है। उसके चारों ओर हरे भरे खेत लहलहा रहे हैं।"

परन्तु अब गुरुदेव देख रहे हैं कि वही महान् कार्य, जो देश को एक आपत्ति से सुरक्षित करने के लिये किया गया था, भविष्य में उसके विनाश का कारण वन जायगा। गुरुदेव दक्षिणापथ की अन्तिम सीमापर अपने आश्रम में वैठे २ उस आगामी ज्वार को जो राक्षस सेना के आक्रमण की सूरत में होगा, देखकर उसे रोकने का यत्न कर रहे हैं। परन्तु वह अकेले मनुष्य से रुकने वाला नहीं। क्योंकि राक्षस-राजा दशग्रीव* लङ्कापुरी का छोटा सा राजा नहीं।

* जिस समय का वर्णन किया जा रहा है उस समय में अफ्रीका का देश एक महातल के साथ जिसका बचा खुचा निशान आजकल आस्ट्रेलिया, जावा, सुमात्रा, सीलोन, लङ्काद्वीप, मैडगासकर आदि द्वीपों के रूप में दीख पड़ता है, दक्षिण अमरीका से सम्मिलित हो रहा था। दशग्रीव ने इस महातल को विजय करके वहाँ राक्षस राज्य स्थापित किया था। उसकी यह तीव्र इच्छा थी कि भारत को विजय करके और सारे के सारे एशिया, योरुप आदि को अपने आधीन करके चक्रवर्ती राजा बन जाये।

वह भारत से लेकर पाताल पर्यन्त एक विस्तृत समृद्धिशाली राज्य का स्वामी है।"

कुछ भाषण और हुए, उनके पश्चात् महर्षि भरद्वाज ने कहा—

भरद्वाज—देश की राजनैतिक स्थिति के संबन्ध में जो बातें आवश्यक थीं आपने श्रवण करलीं। आपको यह भी ज्ञात हो गया कि इस समय क्षत्रियराष्ट्र या तो इस भंयकर स्थिति को अनुभव नहीं करता, या अनुभव करके भी शत्रु की शक्ति के ज्ञान के कारण उससे टक्कर लेने के लिये उद्यत नहीं। स्यात यह ठीक भी है। इसलिये आपको विचार करना है कि अब क्या किया जाना चाहिये।

विश्वामित्र—मेरे विचार में इस समय भारत के किसी भी राज्य को, उस कार्य के लिये जो हम करना चाहते हैं, अगुवा बनाना ठीक न होगा। क्योंकि राक्षस लोगों ने अभी तक हमारे राष्ट्र को कोई ऐसा अवसर नहीं दिया जिससे वह उससे युद्ध के लिये तय्यार हो। इसमें सन्देह नहीं उन्होंने वनवासी तपस्वियों को दुःख दिया है। पर तपस्वियों का दुखित होना किसी राज्य को युद्धाग्नि में धकेलने के लिये पर्याप्त नहीं। साथ ही यह भी दीख पड़ता है कि शत्रु उचित समय पर भारत के सब राज्यों को हड़प कर जायगा, जिससे देश एक ऐसी जाति से पददलित हो जायगा जो विजय के मद में उन्मत्त होगी। इसलिये हमें उस समय के लिये उद्यत रहना चाहिये। निश्चय जो पुरुष शत्रु को बलवान

होता देखता है और स्वयं हाथ पर हाथ रखकर बैठा रहता है, विनाश को प्राप्त हो जाता है।"

परशुराम—निस्सन्देह जो कुछ विश्वमित्र जी ने कहा है सत्य है। हमें राक्षस सेना के आक्रमण के लिये अभी से तय्यार रहने की आवश्यकता है। परन्तु इस कार्य के लिये कोई ऐसा नेता चाहिये जो सङ्गठन की महिमा को न केवल जानता हो बल्कि देश के उन सब लोगों को जो इस कार्य में सहायता दे सकते हैं एक सूत्र में पिरोने की शक्ति रखता हो।

भरद्वाज—ब्रह्मर्षि विश्वमित्र तथा आपके होते कौन हमारा नेता बनने का साहस कर सकता है?

परशुराम—महर्षि! आपने जो कहा वह अनुचित नहीं। पर रोग को देखकर वैद्य का निश्चय होना ठीक है। अपने समय में हमने महान् कार्य किये हैं और ब्रह्मर्षि जी ने भी। पर इस कार्य के लिये हमें भिन्न प्रकार के नेता की आवश्यकता है।

विश्वमित्र—भगवान् परशुराम जी ने ठीक कहा। मेरी दृष्टि में इस समय एक ही व्यक्ति है जो इस कार्य को हाथ में लेकर इसे सफलता को पहुँचा सकता है। पर स्यात हम उसकी सेवा से लाभ नहीं उठा सकते।

सबके-सब—कौन?

विश्वमित्र—वही जिसका वर्णन मैं कर चुका हूँ। अपने आश्रमवास, अपने निकट रहने तथा ताड़िका सुबाहु आदि से युद्ध में उसकी कार्यदक्षता को देख कर मेरा विचार है कि यदि दाशरथी

राम हमारा नेता बन सके तो सफलता में सन्देह नहीं। और यदि उसका कनिष्ठ भ्राता लक्ष्मण भी उसके साथ हो तो और भी अच्छा हो। परन्तु यह सम्भव नहीं।

परशुराम—जानकी विवाह के पश्चात् हमने भी उन दोनों को देखा था। निस्सन्देह वे यह कार्य सुगमता से कर सकते हैं परन्तु.........

भरद्वाज—निराश होने की कोई बात नहीं। यदि आपको राम तथा लक्ष्मण की सेवा की आवश्यकता है तो वह मिल सकती है।

विश्वमित्र—कैसे ?

भरद्वाज—नवीन समाचार आपको नहीं मिला। वशिष्ठ जी की ओर से यह सन्देश आया है कि राम को चतुर्दश वर्ष के लिये बनवास मिल गया है, और महाराज दशरथ का देहान्त हो गया है। राम इधर आ रहे हैं, लक्ष्मण और सीता उनके अङ्ग सङ्ग हैं।

सब (विस्मय पूर्वक)—राम को बनवास ! किस दोष में ?

भरद्वाज—(हंस कर) आपकी सहायता के लिये।

बात किसी की समझ में न आई इसलिये भरद्वाज जी ने उसे खोल कर बताते हुए कहा :—

भरद्वाज—महाराज दशरथ को अपने जीवन के सायंकाल में ऐसा प्रतीत होने लगा कि वह अधिक काल तक जगत् में न रह सकेंगे। इस कारण उन्होंने निश्चय किया कि जीवन काल में ही अपना राज्य अपने पुत्रों में से एक को सौंपदें। उनके पुत्रों में

राम सबसे बड़े हैं। न केवल आयु में बल्कि बल, बुद्धि, आचार, व्यवहार, नीति, धनुर्विद्या आदि सभी गुणों में। प्रजा भी उनके सद्गुणों पर मोहित है। पर राजा ने महारानी कैकेयी से विवाह के समय उसके पिता को यह वचन दिया था कि कैकेयी का पुत्र राज्य का उत्तराधिकारी होगा। इस कारण महाराज संशय में रहते थे। वह इस बात पर कोई निश्चय नहीं कर पाते थे।

यदि महाराज दशरथ महारानी कैकेयी के हृदय को परखने की शक्ति रखते, तो स्यात उन्हें किसी प्रकार का कष्ट न होता। क्योंकि वह महारानी राम को अपने पुत्र भरत से अधिक प्रेम करती है, वह उसके सद्गुणों को उसकी सगी माता से अधिक जानती है।

पर भावी अटल है। श्री महाराज के मन में भरत के सम्बन्ध में कुछ सन्देह उत्पन्न हुआ और उन्होंने उसे ननिहाल भेज कर राम को युवराज बनाने का प्रस्ताव राजसभा के सन्मुख रखा। अविश्वास ने अविश्वास को उत्पन्न किया और कालचक्र की गति ने महारानी कैकेयी को इस बात पर बाध्य कर दिया कि वह महाराज को उनकी प्रतिज्ञा पूर्ति पर विवश करे। परिणाम यह है कि राम वनों को आ रहा है। महाराज पुत्रवियोग के दुःख को सहन न करके परलोक को सिधार गये हैं। और भरत अयोध्या की राजगद्दी पर बैठेगा।

विश्वमित्र—इस सारे चक्र के भीतर ईश्वरीय हाथ काम कर रहा स्पष्ट दीख पड़ता है। हमें इस अवसर को न खोते हुए इन

चतुर्दश वर्षों में अपना कार्य समाप्त कर लेना चाहिये।

भरद्वाज—राम आज अथवा कल इस स्थान पर पधारेगा। यदि आप आज्ञा दें तो मैं उससे इस विषय पर वार्तालाप करलूं। मुझे आशा है कि वह क्षत्रियकुमार देश की पुकार को सुनकर उससे मुख नहीं मोड़ेगा !

"साधु" "साधु" का शब्द चारों ओर गूंज उठा।

विश्वमित्र—भरद्वाज जी ने जो समाचार सुनाया है, वह यद्यपि कोशलदेश के लिए हृदय वेधक है, परन्तु जगत् में किसी की हानि किसी का लाभ है। राम अयोध्या की गद्दी पर नहीं बैठा तो हम उसे वनराज्य की गद्दी पर बिठा कर उसे वह कार्य करने पर उद्यत करेंगे जो उसके नाम को अमर बना देगा। अब आप लोगों को सावधानी से अपने २ स्थान पर अपना कार्य्य आरम्भ कर देना चाहिये, ताकि जब समय आवे तो शत्रु हमें सोया हुआ न पाए।

तत्पश्चात् महर्षि ने सब को अलग अलग बुलाकर कुछ बातें कहीं और सभा विसर्जित हुई।

चित्रकूट पर्वत

कोशल देश के राजकुमार वनवास की इच्छा से चित्रकूट पर्वत की ओर आ रहे हैं, यह समाचार अयोध्या से निकला और पवन के पंखों पर उड़ कर दूर निकट विस्तृत हो गया। वह जिस मार्ग से चले उस पर जनता की दृष्टि लग गई। राम लक्ष्मण की शूर-वीरता के साखे ताड़िका और सुबाहु के युद्धों के कारण पहले से ही सर्वसाधारण में विख्यात थे, अब उनका निर्दोष राज्य से निर्वासित होना सुवर्ण पर सुहागा हो गया। यहाँ, वहाँ, इधर, उधर उन्हीं की बातें होने लगीं। वह गङ्गा तीर पर पहुँचे तो निषाद सरदार गुह ने जिस के सहचर ५०० नौकाओं के साथ गङ्गा के घाटों और किनारों के स्वामी बन रहे थे उनके चरणों में शीश निवा दिया। आगे बढ़े तो महर्षि भरद्वाज ने उन्हें अपने आश्रम में आया देख हृदय से स्वागत किया। महर्षि से वार्तालाप में राम जी को ज्ञात हो गया कि उनके वनवास का कारण केवल महारानी कैकेयी की हठ ही नहीं थी, वरन् उसके साथ भारत का भाग्य-चक्र भी काम कर रहा था। क्योंकि ऋषि ने उन्हें बताया कि ऋषि मण्डल उनसे वह कार्य लेने का निश्चय कर चुका है जिसे अयोध्या का छोटा सा राज्य कदाचित नहीं कर सकता। वह ऋषि

की आज्ञा को शिरोधार्य करके आगे चले तो भरद्वाज आश्रम से दस मील आगे तमसा नदी के तट पर वाल्मीकि जी का आश्रम दृष्टिगोचर हुआ। महर्षि वाल्मीकि जी से वार्त्तालाप के पश्चात् यह निश्चय हुआ कि वनवासी चित्रकूट पर्वत के शिखर पर कुटी बना कर निवास करें। शब्द मुख से निकालने की देरी थी कि वाल्मीकि आश्रम में आये हुए पर्वतवासी कुल्हाड़ी, दरांती तथा अन्य हथियार लेकर वनों में घुस गये। कोई बांस काटने लगा, कोई लकड़ी तोड़ने में मग्न हो गया। दूसरे छप्पर बनाने में लग गए। शेष जो थे उन्होंने कुटी की दीवारें बनानी आरम्भ कर दीं। इस प्रकार अभी सूर्य्य देव ने पश्चिम की ओर मुख मोड़ा ही था कि एक विलक्षण पर्णकुटी बन कर तैयार हो गई, जिसकी धरती पर पलंग के स्थान में जङ्गल का कोमल घास बिछ रहा था।

रात्रि वाल्मीकि-आश्रम में व्यतीत करके राम सीता को लेकर कुटी की ओर चले। लक्ष्मण ब्रह्ममुहूर्त्त में ही वहाँ जाकर सब कुछ ठीक-ठाक कर चुके थे।

सीता जी ने कुटी को देखा तो चित्त प्रसन्न हो गया। क्योंकि चहुं ओर, नीचे, ऊपर, वह दृश्य दीख पड़ा जो अयोध्या और जनकपुरी की अट्टालिकाओं में न देखा था। ऊपर प्रकृति माता ने विशाल आकाश की नीली चादर ओढ़ रखी थी जिस के नीचे नाना प्रकार के पक्षी अपने पंख फैलाये उड़ रहे थे। एक ओर मन्दाकिनी नदी ऋष्यवान पर्वत से निकल कर चित्रकूट के नीचे

बहती हुई यमुना के चरणों में प्रणाम करने को चली जा रही थी। दूसरी ओर जहाँ तक दृष्टि जाती थी वन्य वृक्षों की फल फूलों से लदी हुई पंक्तियाँ शोभायमान थीं। पर्वत की तराई में दूर तक हरियावल का फर्श बिछा था और यद्यपि कुटी में पहुँचने के लिये खासी चढ़ाई चढ़नी पड़ती थी, पर ऊपर खड़े यही प्रतीत होता था कि एक समतल हरियावल से लदा हुआ मैदान है जो कोसों तक चला गया है। राजकुमारी सीता इस दृश्य को देख कर अपने आप में खोई सी गई। वह जिधर देखती थी वही स्वर्गीय दृश्य सम्मुख आता था जिस पर पड़ कर दृष्टि दूसरी ओर जाने का नाम न लेती थी। इतने में राम जी ने कहाः—

राम—लक्ष्मण ! हमारे वनवास के कारण और चाहे कुछ ही हों पर एक बात बारम्बार मेरे मन में आ रही है और कोई मूक वाणी मुझे यह सन्देश दे रही है कि हम लोगों को इस स्थान में इसलिये भेजा गया है कि हम साधारण ग्रामीण मनुष्यों का जीवन व्यतीत करते हुए यह अनुभव करलें कि वह लोग अपना जीवन किस भाँति गुजारते हैं। गगन चुम्बी प्रासादों में रहते हुए, भोजनशाला में स्वादिष्ट भोजन खाते हुए, पालकियों, नालकियों, रथों, अश्वों पर चढ़ते हुए, रेशमी वस्त्र पहनते हुए हम लोग नहीं समझ सकते कि विस्तृत आकाश के नीचे, शिर छिपाने को स्थान न रखते हुए, कई २ दिन पर्यन्त भूखे रह कर, पैदल जूते के बिना चलते हुए, कैसे संसार यात्रा पूर्ण की जाती है। निश्चय

ऊँचे राज्य पदों पर विराजमान लोग यह अनुभव नहीं कर सकते कि दरिद्र लोग कितने दुःख और कष्ट से कर देकर सुख का श्वास लेते हैं।

लक्ष्मण ! सीते ! इतने अल्प समय में ही परमपिता परमात्मा ने अपने अनुग्रह से मेरे नेत्र खोल दिये हैं और मुझे भलीभाँति ज्ञात होने लग गया है कि प्रजा के सामान्य मनुष्यों को किन २ दुःखों में से गुज़रना पड़ता है। आशा है कि हम लोगों का वनवास इस विषय में अन्य अनेक गुप्त रहस्यों को खोलने का कारण बनेगा।

लक्ष्मण—आपने सत्य कहा, राजा तथा राजमन्त्री कितना भी यत्न करें, प्रजा के हृदय को समझने के लिये कितना भी माथा मारें, उन्हें नहीं समझ सकते जब तक उन लोगों के भीतर रहकर, उनके सुख दुःख के स्वयं साथी न बनें।

राम—भविष्य में मेरी दिनचर्य्या का एक भाग इर्द गिर्द के ग्रामों में घूमना, वहाँ के वासियों के सुख दुःख को समझना और उन्हें यथाशक्ति हर प्रकार की सहायता देना रहेगा।

लक्ष्मण—कुटी के बनाने में जो लोग लगे थे, उनको आपसे कितना प्रेम था यह मैं अल्प समय में ही समझ गया हूं। वह बार-म्बार मुझ से कह रहे थे—"राजकुमार ! हम आप को इन पर्वतों में, इन वनों में, इस नदी के तीर पर आखेट के लिये ले चलेंगे। हम आपको अपना सारा प्रदेश दिखायेंगे। हमारे देशों में सिंह, व्याघ्र आदि अधिक हैं, वे कभी २ किसी मनुष्य को भी मार

डालते हैं। पशुओं को तो वह बड़ी हानि पहुँचाते हैं। हम आप को बताएंगे हम उन वन्य जीवों से कैसे युद्ध करते हैं।

राम—इन वनों में हिन्सक जीव पशु तथा मनुष्यों का वध करते हैं ?

लक्ष्मण—ऐसा वे लोग कहते हैं।

राम—तो मेरी ओर से उन लोगों को सन्देश देदो, कि जब भी कभी किसी पर कोई आपत्ति आये, वे मुझे भूले से भी स्मरण करेंगे तो मैं उनके स्थान पर पहुँच कर, उनकी सहायता करके, अपने जीवन-उद्देश्य को सफल करूँगा।

सीता—स्वामिन ! आप हिंसा करेंगे ? क्या वन में रहकर भी आप हिंसा का त्याग नहीं करेंगे ?

राम—प्रिये ! क्या तुम ने समझ लिया कि राम वनवासी होकर संन्यासी हो गया ? पिता जी ने हमें वन में रहने की आज्ञा दी है क्षात्र धर्म को त्यागने की आज्ञा तो नहीं दी—यदि हमें क्षात्र धर्म को ही त्यागना होता तो (धनुष आदि की ओर संकेत करके) इन अस्त्र शस्त्रों को कंधे का बोझा क्यों बनाते ? प्रिये ! विश्वास करो दुःखी दीन की पुकार सुनकर जो क्षत्रिय अपने शरीर को भूल नहीं जाता उसने जन्म लिया है तो केवल माता के शरीर को दुखी करने के लिये। ऐसे पुरुष को चाहिये कि जितनी शीघ्र हो सके पृथ्वी को अपने भार से मुक्त कर दे।

लक्ष्मण—ओ३म् ।

राम—(सीता से) कुटिया के भीतर आकर तो तुमने इस के सौन्दर्य पर दृष्टि ही नहीं डाली। भ्राता लक्ष्मण जी ने हमारे अस्त्र ऐसी चतुर विधि से चारों ओर लटका दिये हैं कि देख कर चित्त प्रसन्न हो जाता है। (बैठ कर) आहा! पत्तों का बिछौना कैसा कोमल है ?

सीता—(बैठ कर हँसते हुए) आप इसीलिये मुझे अयोध्या में छोड़ रहे थे कि इन कोमल वस्त्रों का आनन्द अकेले ही उड़ाएं। सचमुच यहाँ आकर ज्ञात हुआ कि आनन्द ईंट पत्थर में नहीं आनन्द रेशमी तथा सूती वस्त्रों में नहीं। उसका स्रोत कहीं और ही है।

———

"मैं वह पुष्प लूंगी जो मन्दाकिनी के उस ओर उग रहे हैं।" नदी के तीर पर भ्रमण करते हुए जानकी सीता ने कहा—वह और राम हाथ में हाथ दिये पर्ण कुटी से निकल कर पर्वत तथा नदी का दृश्य अवलोकन करते हुए घूम रहे थे। मन्दाकिनी के दोनों ओर वन्य वृक्ष ऊँचे उठे हुए थे। उन में नाना प्रकार के पुष्प खिल रहे थे। पर्वत की ऊँचाइयों और तराइयों में प्रकृति माता पुष्प वर्षा कर रही थी। दोनों प्रेमी जिस ओर जाते वहीं के हो रहते। इसी बीच में राम जी ने सुन्दर फूलों के कई गुच्छे तोड़ कर उन्हें बलात जानकी के बालों में बाँधते हुए कहा "आज तुम वन-देवी बन गईं।"

जानकी—जाने आप क्या स्वांग बना रहे हैं मेरा।

राम—इस स्थान में और तो कुछ है नहीं, मन्दाकिनी के

निर्मल जल में ही मुँह देख लो। जानकी! आज तो तुम सचमुच कुछ और ही बन गई।

जानकी—(मुसकराते हुए) कहीं भूल न जाना।

राम—कुछ ऐसा ही प्रतीत हो रहा है। तुम्हें नहीं तो अपने आप को तो अवश्यमेव भूल रहा हूँ।

जानकी—पर मुझे वह कमल पुष्प चाहियें जो जल में उगे हैं।

राम—उन्हें लेकर क्या करोगी?

जानकी—क्या करूँगी? पुष्प लेकर क्या किया करते हैं? आपने पुष्प लेकर क्या किया था?

राम—हमने तो अपनी वन देवी को चढ़ाए थे। तुम क्या करोगी?

जानकी—(मुख नीचा किये तनिक लजाते हुए) आप तोड़ देंगे या मैं जाऊँ?

यह सुनना था कि राम जल में कूद गए और थोड़ी देर में ही कमल के श्वेत और लाल पुष्पों का गुच्छा जानकी की गोदी में पहुँच गया।

जानकी—इन की डंडियां तो नहीं तोड़ दीं?

राम—तुम्हारे सामने तो हैं, देखलो।

पुष्प लेकर जानकी ने उन्हें गूंथना आरम्भ किया और उनकी दण्डियों को कहीं से तोड़, कहीं से सूत्र निकाल, कुछ क्षण में एक सुन्दर माला बना डाली, जिसे देखकर राम ने कहा—

राम—जी चाहता है तुम्हारे हाथ चूम लूं। कैसी अच्छी माला बना दी है इन हाथों ने।

जानकी—(माला उनके गले में डालते हुए) मेरे देवता! इन पुष्पों को जो आप के ही दिये हुए हैं स्वीकार कीजिये।

राम—यह क्या?

जानकी—देव पूजा! (कर जोड़ कर) वनराज! अपने अनन्य भक्त पर प्रसन्न होंगे या नहीं?

राम—(हंस कर जानकी के गले में बाहु डाल कर) भक्त के बस में हैं भगवान्!

❀ ❀ ❀

परस्पर प्रेम में मग्न यह प्रेमी इस प्रकार दिन को रात बना रहे थे कि एक ओर से कोलाहल का शब्द सुनाई दिया जिसे श्रवण करते ही राम उठ खड़े हुए और कुछ क्षण के पश्चात् बोले—

राम—प्रतीत होता है कोई वन्य जीव भारी हानि करके भाग गया है और लोग कोलाहल कर रहे हैं—

जानकी—कोलाहल तो हो रहा है, पर यह आप को कैसे ज्ञान हुआ कि कोई वन्य जीव पलायमान हो रहा है?

राम—(धनुष पर डोरी डालते हुए) अभी पता लग जाएगा, वह इसी ओर आ रहा है। (थोड़ी देर ठहर कर) भयङ्कर सिंह है! एक शिशु को उठाए आ रहा है। घबराना नहीं। केवल उस वृक्ष

की ओट में हो जाओ। उसने हमें नहीं देखा और इसी ओर छलांग मारता हुआ आ रहा है।

जानकी वृक्ष की ओट में होकर उधर ताकने लगी जिधर राम ने संकेत किया था, तो उसने देखा कि एक भयङ्कर सिंह एक बालक को मुख में दबाए भागा आ रहा है। वृक्ष से कुछ दूर आकर वह ठहरा, मानो मनुष्य की गंध ने उसे मनुष्यों के निकट होने का पता दे दिया। प्रतीत होता था कि वह मुड़ना चाहता है पर राम के धनुष से निकले हुए बाण ने अवसर न दिया। बाण के लगने से सिंह झल्ला गया और बालक को मुख से फेंक कर एक छलांग से उधर झपटा जिधर से बाण आया था। पर राम सब कुछ समझ रहे थे और अभी जानकी को यह ज्ञातभी न हुआ था कि क्या हो गया है, कि उनकी कटार सिंह की छाती में घुस कर उसका कलेजा फाड़ गई।

कटार खाकर सिंह ऐसे भीषण शब्द से दहाड़ा कि चहुँ दिशाएँ कम्पायमान हो गईं। पर रक्त के फुहारे बहे जा रहे थे और उन्होंने उसके शरीर की शक्ति क्षीण कर दी थी, इसलिये वह मूर्च्छित होकर गिरा और शीघ्र ही ठण्डा हो गया।

राम ने बालक के निकट जाकर जानकी को पुकार कर कहाः–

राम—जानकी! भक्षक से रक्षक कितना अधिक शक्तिशाली है! देखो बालक को दांत तक नहीं लगा।

जानकी मन्त्रमुग्ध की भांति सब कुछ देख रही थी। राम

के शब्द सुनकर वह दौड़ी और बालक को उठाकर उसके शरीर से मिट्टी झाड़ती हुई बोली:—

जानकी—कैसा सुन्दर बालक है! कौन जाने किस माता के कलेजे का टुकड़ा है।

❀ ❀ ❀

सिंह के बालक को उठा ले जाने और राम के यत्न से बच निकलने का समाचार अल्पकाल में ही चहुँ ओर के ग्रामों में फैल गया। क्योंकि बालक के माता पिता और अन्य लोग कोलाहल करते हुए उधर आ रहे थे जिधर राम और जानकी उसे गोदी में लिए खड़े थे। बालक को उसकी माता को सौंप कर राम सिंह की ओर बढ़े और उसके शरीर से बाण खींचकर हँसते हुए बोले—

राम—धन्य परमात्मन्! मेरा बाण मिल गया। इस जङ्गल में इसे कहां पाना था?

लोग विस्मयपूर्वक सिंह से राम की ओर और राम से सिंह की ओर ताक रहे थे, क्योंकि सिंह पूर्ण युवा और दीर्घकाय जीव था। उन्हें विस्मित देखकर राम ने कहा:—

राम—यदि कोई इसका चर्म उतारना जानता हो तो उतार कर पर्ण कुटी में भेज दे। किसी के आसन का काम देगी।

❀ ❀ ❀

सायंकाल हो चुका था, राम, लक्ष्मण और जानकी संध्यावंदन से निवृत्त होकर कुटी के बाहर बैठे थे। इर्द-गिर्द ग्रामीण

लोगों की भीड़ हो रही थी और सिंह और उसकी शक्ति का वर्णन हो रहा था। कोई कह रहा था 'सिंह ने इतने मनुष्यों का रक्त पीया था'। कोई कहता 'उसने इतने पशुओं की हिंसा की'। कोई राम के बाहुबल को सराहता, कोई जानकी की निर्भयता की प्रशंसा करता। जितने मुंह उतनी बातें थीं। तब राम के मुख से यह शब्द निकले, जिन्हें सुनकर सब मौन हो गए :—

राम—हमने देखा है कि वन्य पशु आपके इधर अति दुखदायक हैं। हमारे विचार में ठीक यह होगा कि आप उनसे अपनी रक्षा करना सीखें और ऐसा करने के लिये लाठी और दण्ड छोड़कर हथियारों का आश्रय लें। ऐसे हथियार जो इन पर्वतों में काम दे सकते हैं स्वयं बनाएं और बना कर उन्हें प्रयोग करने की विधि भी सीखें। यह कार्य कठिन नहीं। यदि आप इच्छा प्रगट करें तो आपके लोहकार ऐसे साधारण शस्त्रों को बनाने में सफल हो जाएंगे।

सब लोग—हमें धनुष बनाना सिखाइये। हमें खाण्डा चलाना सिखाइये।

राम—आप कुछ पुरुषों को कल से हमारे समीप भेज दें। हम थोड़े दिनों में उन्हें इस कार्य में प्रवीण बना देंगे। ऐसे सीखे हुए लोग आप सबको सुगमता से सब कुछ सिखा सकेंगे।

सब—हम आपकी कृपा के कृतज्ञ हैं। कल से ऐसा प्रबन्ध हो जायगा।

भरत मिलाप

"भ्राता! उठिये। कवच धारण कीजिए और अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित हो जाइए।" पर्ण कुटि के सामने उगे हुए ऊंचे वृक्ष के शिखर पर चढ़े हुए लक्ष्मण ने राम से कहा:—

राम—क्यों? क्या आपत्ति आगई?

लक्ष्मण—चतुराङ्गिणि सेना आ रही है। निश्चय हमारी कुटी ही उसका लक्ष्य है।

राम—ध्वजा किस की है? पहचानते हो?

लक्ष्मण—क्यों न पहचानूंगा। अयोध्या की सेना और कोशल देश की ध्वजा को लक्ष्मण न पहचानेगा तो और कौन पहचानेगा?

राम—कोशल देश की ध्वजा?

लक्ष्मण—मेरा विचार है कैकेयी का पुत्र सेना लेकर हम लोगों पर आक्रमण करने आया है कि हम दोनों और जानकी जी की हत्या करके निष्कण्टक राज्य करे।

राम—वृक्ष से नीचे आ जाओ।

लक्ष्मण वृक्ष से नीचे उतरा तो राम ने मन्दमुस्कान से कहा—

राम—लक्ष्मण तुम्हें भरत पर इतना संदेह क्यों है ?

लक्ष्मण—(हाथ बांधे) क्या मेरा संदेह अनुचित है ?

राम—तुम ने मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। मैं पूछता हूँ क्या यह नहीं हो सकता कि भरत नाना जी के यहां से लौट कर आया हो तो सारी वार्ता का पता मिलने पर कैकेयी माता पर क्रुद्ध होकर हम लोगों से मिलने की इच्छा से इधर आया हो ?

लक्ष्मण—हो सकता है। पर वह भी हो सकता है जो मैंने कहा।

राम—और यदि तुम्हारा कहा सत्य हुआ तो ?

लक्ष्मण—तो..........................जगत् देख लेगा कि राम और जानकी जी का वध इतना सुगम नहीं जितना उन्हें अयोध्या से निर्वासित करना था। निश्चय यदि भरत यह सङ्कल्प करके आया है कि हमें मार कर उसे निष्कण्टक राज्य का अवसर प्राप्त हो जाएगा तो वह राज्य उसे अति महंगा पड़ेगा।

राम—भरत से युद्ध करोगे ?

लक्ष्मण—भरत तो एक ओर यदि आप आज्ञा दे देते तो लक्ष्मण अयोध्या छोड़ने से प्रथम पिता जी को भी बता देता कि राम को राज्य से वंचित करने का अर्थ क्या है।

राम—क्या सचमुच राज्य ऐसी वस्तु है कि उसके कारण पिता और भ्राता के रक्त से हाथ रंगे जायें ?

लक्ष्मण—यदि मेरा नहीं तो आज का भरत का कृत्य आप पर यह प्रत्यक्ष कर देगा।

राम—भ्राता! मेरा विचार इससे भिन्न है। मैं तुम्हें बता चुका हूँ कि मेरा अनुमान है कि भरत हमसे लड़ने के लिए नहीं आया। वह पवित्र हृदय से यह बताने आया है कि माता कैकेयी जी ने जो कुछ किया उसमें उसकी स्वीकृति नहीं थी और यदि वह यहाँ आया तो मैं उससे याचना करूंगा कि वह अयोध्या का राज्य लक्ष्मण को दे दे। मुझे आशा है कि मेरी याचना का आदर होगा और मैं राजकुमार लक्ष्मण को कोशल देश का राजा देख कर प्रसन्न हूंगा।

लक्ष्मण—(कांप कर भ्राता के चरणों में गिरते हुए) आप का राज्य आप ही को सफल हो। लक्ष्मण तो आपके चरणरज को मस्तक पर लगाने को ही अपना राज्य समझता है। जो कुछ मुखसे निकल गया उसके लिए क्षमा का प्रार्थी हूँ।

राम—(उसे उठा कर गले से लगाते हुए) राज्य के लिये लड़ना और वह भी कनिष्ठ भ्राता से! यह राम के लिये नहीं। उसे ज्ञात है कि वह चाहे तो अपने बाहु बल से अयोध्या से बड़ा राज्य प्राप्त कर सकता है, पर भ्राता को प्राप्त करना उसकी शक्ति में नहीं। निस्संदेह अभी अल्प काल में ही तुम्हें ज्ञात हो जायगा कि भरत वह नहीं जो तुम उसे समझ रहे हो। वह बहुत महान् है। उसकी महानता को देखने के लिये जगत् को बहुत ऊंचा उठना पड़ेगा।

❀ ❀ ❀

"हाय भ्राता ! आपकी यह दशा ! मेरे कारण !"

राम के चरणों में गिरते हुए भरत ने कहा। राम उस समय कुटी के वाहर एक वृक्ष की छाया में विराज रहे थे। शरीर पर वन के वृक्षों की छाल और पत्तों का वलकल शोभा दे रहा था। साध्वी सीता कुटी के भीतर थी। लक्ष्मण दूसरी ओर अग्नि सुलगा रहा था।

राम—(उठ कर भरत को गले से लगाते हुए) भरत ! तुम तो पहचाने ही नहीं जाते। अरे ! तुम ने भी यह बलकल पहन रखे हैं। यह क्यों ? यह वनवासियों के लिये हैं, राजाओं के लिये नहीं।

भरत—भ्राता ! कांटों पर न घसीटो। राजा और भरत ! यह दो शब्द एक साथ नहीं रह सकते। भरत राज्यसेवक हो सकता है, राजा नहीं हो सकता। वह राजा बनने के लिये उत्पन्न नहीं हुआ। न उसके हृदय में राज्य का लोभ कभी जागृत हुआ है।

राम—कहो कैसे पधारे ? पिता जी तो कुशल से हैं ?

भरत—(अश्रु धारा बहाते हुए) पिता जी ! हाय पिता जी इस जगत में नहीं ! मुझ अभागे के कारण वह स्वर्ग को पधार गये और ज्येष्ठ भ्राता ने वनकी राह ली। हाय मैं क्या करूँ ! माता ! माता कैकेयी ! तूने जन्मते ही मेरा गला क्यों नहीं घोट दिया ? क्या इस कलङ्क के लिये यही अभागा रह गया था ?

भ्राता ! सुनता हूँ पिता जी तो अन्तिम समय भी आपको ही स्मरण कर रहे थे।

राम—(दुखित हृदय से) क्यों दुखी होते हो ? पिता जी ने यदि हम सब को अनाथ छोड़ कर स्वर्ग गमन का निश्चय कर लिया तो उस में हम क्या कर सकते हैं ? पर मन में यह रह गई कि अन्तिम समय उनके दर्शन न हो सके, न उनसे कोई उपदेश लिया। आह ! चार पुत्र हों और अन्त समय उन में से एक भी पास न हो। कितनी बुरी बात !

भरत ! तुम फिर भी भाग्यवान् हो कि महाराज का दाहकर्म तो अपने हाथ से कर पाए, मेरी ओर देखो जिसे यह सौभाग्य भी न मिला (लक्ष्मण को आवाज़ देकर) लक्ष्मण ! हम अनाथ हो गये ! सीते ! तुम्हारे श्वसुर स्वर्ग सिधार गये ! भरत यह संदेश लाये हैं।

इस समाचार ने कुटी पर, जहां इस समय तक सुख और शान्ति का साम्राज्य था, शोक की वर्षा कर दी। राम, लक्ष्मण, सीता, भरत सब ही दुखित होकर रोने लग गए। पर राम ने शीघ्र ही अपने आप को वश में करके कहा—

राम—पिताजी की मृत्यु रोने का अवसर नहीं। उन्होंने अपने जीवन में सैकड़ों यज्ञ किये, करोड़ों का दान किया, जगत को सुख देने के लिये सहस्रों कार्य किये। वह इस समय स्वर्ग-सुख भोग रहे होंगे। यह जगत उनके लिये सुखस्थान नहीं रहा था इसलिये उन्होंने इसे त्याग दिया। (बात बदल कर) कहो भ्राता ! कब चले थे ? और किस प्रकार यहां पहुँचे ?

भरत—मैं नाना जी के यहां कैकेयी देश में था, यह तो आप को ज्ञात ही है। वहीं पर मुझे गुरु वशिष्ठ जी का संदेश मिला कि अत्यावश्यक कार्य के लिये महाराज ने बुलाया है। नाना जी से आज्ञा लेकर चला और रात्रि को दिन बनाता हुआ शीघ्र से शीघ्र अयोध्या पहुंचा। वहाँ पहुंचने पर ज्ञात हुआ कि पिता जी स्वर्ग की यात्रा कर गये। आपके आने के छठे दिन उनका देहान्त हुआ। चैत्र शुक्ल पक्ष की दशमी को आपने बन यात्रा की, पूर्णिमा को अर्ध रात्रि के समय महाराजा ने देह त्याग दिया। क्योंकि जब सुमन्त जी लौट कर अयोध्या पहुंचे तो महाराज का जो उस समय तक इस आशा पर जीवित थे कि आप थोड़े दिन बन में रहकर लौट आयेंगे, हृदय टूट गया। वह इस दुःख को सहन न कर सके, और आपका नाम जपते हुए इस असार संसार को त्याग गये। गुरु जी और अन्य मंत्रियों ने उनके शरीर को तैल में रख दिया। मेरे आने पर दाह कर्म किया गया। तत्पश्चात् गुरु जी ने राज दरबार की घोषणा की। उस दरबार में राज्य सभा ने मुझे आज्ञा दी कि पिता जी की आज्ञानुसार राज्य सिंहासन ग्रहण करूँ। पर सिंह का आसन मेरे सरीखे कुत्तों के लिए नहीं। राज्यसिंहासन आपका है और आप का ही रहेगा। इस कारण मैंने आग्रह किया कि आपकी सेवा में उपस्थित होकर यह प्रार्थना करूँ कि देश में चलकर अनाथ अयोध्या को सनाथ बनाएँ। गुरु वशिष्ठ और मंत्रीमण्डल मेरे साथ हैं सारी माताएं मेरी जन्म दाता कैकेयी के साथ इस स्थान पर चल

कर आई हैं। प्रजा का बड़ा भाग भी कई कष्ट सहन करके यहाँ पहुँचा है।

मार्ग में गङ्गा तट पर निषादराज गुह से वार्तालाप हुआ। उन्होंने पहले तो यह समझा कि मैं भारी सेना साथ लेकर आप से युद्ध करने जा रहा हूं (आप ही आप) हाय! मैं कितना अभागा हूं कि मार्ग में चलता पथिक भी मुझ पर विश्वास नहीं करता! (नेत्र ऊपर उठा कर) प्रभु! भगवन्! हृदय के भावों के ज्ञाता अन्तरयामी पिता! यदि स्वप्न में भी मेरे हृदय में यह विचार आया है कि ज्येष्ठ भ्राता के विरुद्ध कोई कार्य करके राज्य को संभालूं तो अत्यन्त घोर पाप करने वाले को उस पाप का जो दण्ड मिलता है वह मुझे मिले! भगवन्! आप सब के हृदयों के भीतर रहकर उनके अन्तरीय विचारों को जानते हैं यदि भूल से भी मेरे हृदय में कोई ऐसा विचार उत्पन्न हुआ है तो मुझे घोर नरक में डालिये।

यह कहते हुए भरत जी का हृदय उमड आया और रोते हुये उनकी घिग्घियां बंध गईं। वह भ्राता के चरणों में गिर कर बोल उठे "भ्राता! मुझे बचाओ। मैं दुख-समुद्र में बहा जा रहा हूं। मुझे आश्रय दो।"

राम—(उसे हृदय से लगाकर प्यार करते हुए) भरत! तुम क्यों अपने को दुखित कर रहे हो। महाराज दशरथ का कोई पुत्र ऐसा कपुत्र नहीं हो सकता। वह धर्मात्मा थे। महात्मा थे। जगत् में देवात्मा थे। उनके गृह में जन्म लेकर कोई पुत्र ऐसा विचार

अपने हृदय में नहीं ला सकता। और तुम ने तो माता कैकेयी की कोख से जन्म लिया है। उनके समान धर्मात्मा, पतिभक्त और देशभक्त देवी आज दूसरी कौन है ? उनकी कोख से जन्म लेकर, उनके रज से पल कर, तुम्हारे भीतर बुरे विचार उत्पन्न ही नहीं हो सकते। यह मुझ से अधिक कौन जानता है ?

भरत - हाय ! माता कैकेयी ने यह क्या सोचा ? उसने मुझे अनाथ बना दिया ! आप विधवा हो गईं !! भ्राता चतुर्दश वर्ष के लिये वन को चले आए !!! रेशमी गालीचों पर चरण रखने वाली भाभी जी नङ्गे पाओं पत्थरों पर फिरती हैं।

यह सब कुछ मेरे और केवल मेरे कारण ! भ्राता ! मैं अपने जाने लाख यत्न करूँ, अपनी सफ़ाई में कितना कुछ कह जाऊँ, जगत् उसपर विश्वास नहीं करेगा। महात्मा गुह ने भी जहाँ तक मेरा विश्वास है उस पर पूर्ण रीति से विश्वास नहीं किया यद्यपि वह मुझे मार्ग दर्शाते हुए इस स्थान तक मेरे साथ आये हैं। गङ्गा तट से चलकर हम भागीरथी और यमुना के सङ्गम पर पहुंचे, तो महर्षि भरद्वाज ने भी वह सन्देह किया जो गुह ने किया था। मैं उनके सन्देह को कैसे दूर करता ? केवल यही कह पाया कि "भगवन् ! आप सरीखे योगीराज, जो दूसरों के हृदय के भावों को भी पढ़ने में समर्थ हैं, यदि मेरे आत्मा को काला समझते और मुझे घृणित कार्य करने वाला जानते हैं तो मुझे अपने पत्त

में कुछ नहीं कहना। वाणी जो कहेगी उस पर कैसे विश्वास हो सकता है जब हृदय पर ही विश्वास न हो।

महर्षि दयावान हैं। उन्होंने मुझ पर दया करके मुझे विश्वास दिला कर कहा "भरत! दुखी न हो! न ही माता कैकेयी को दोष दो। राम का वनवास ऋषियों और देवताओं की इच्छा पूर्ति का कारण होगा, और उसका परिणाम अत्यन्त सुन्दर होगा। मुझे ज्ञात है कि यह शब्द केवल मेरे दुखित और पीड़ित हृदय पर फाहा रखने के लिए कहे गए थे। इस लिए अब मेरी श्री चरणों में यह प्रार्थना है कि यदि मेरे और माता कैकेयी के पाप का प्रायश्चित्त हो चुका है तो उठिये अयोध्या जो महाराज के बिना वैधव्य काट रही है उसे सनाथ बनाइए। मैं अपने साथ राज्याभिषेक की सारी सामग्री लेता आया हूं। पिता जी का गजराज आप का मार्ग देख रहा है।

राम—भरत! शोक है कि मैं तुम्हारी इच्छा को पूर्ण नहीं कर सकता। पिता जी की आज्ञा मेरे लिये कुछ कम आदरणीय न थी, उसके साथ माता जी का आदेश भी सम्मिलित हो गया। यदि मैं किसी न किसी बहाने से उसे पूर्ण करने से इन्कार कर दूं तो मुझसे अधिक अधम पापी कोई न होगा। भ्राता तुम माता जी को दोष दे रहे हो, परन्तु मुझे ज्ञात है कि यदि उनके वश में होता तो जो हुआ है वह कभी न हो सकता। इसलिये उन्हें दोष देने से कार्य न चलेगा। आप को अभी तक यह पता नहीं कि जब हम और तुम उत्पन्न नहीं हुए थे तो श्री पिता जी ने आपके

नाना जी को यह वचन दिया था कि राज्य गद्दी का स्वामी महाराज अश्वपति जी का नवासा होगा। इस कारण राज्य पर अधिकार तुम्हारा उसी समय से हो चुका था। उसके पश्चात् यह किस के वश में था कि महाराज की प्रतिज्ञा को टाल सकता। स्वयं महाराज ने इस बात का यत्न किया, परन्तु ऐसा न हो सका। मुझे हर्ष है कि माता कैकेयी ने सारा दोष अपने सिर पर लेकर रघुकुल की लाज रख ली, क्योंकि यही कुल है जिस को यह गौरव है कि—

प्राण जायं पर वचन न जाई।

तुम्हें स्यात यह भी ज्ञात नहीं कि माता कैकेयी ने अनेक अवसरों पर अपने प्राणों की परवाह न करते हुए पिता जी के प्राणों की रक्षा की थी। इसलिये यदि इस समय उन्होंने उनके प्राणों से भी अधिक मूल्यवान् वस्तु की रक्षा की है तो उन्होंने हम सबको कृतज्ञ किया है। हम उनके इस ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकते। इसलिये उठो, हिम्मत करो। तुम्हारे अन्दर धर्म है, शक्ति है, बुद्धि है और यही बातें राजा को सफल मनोरथ कर सकती हैं। अयोध्या को लौटो और राज्यसिंहासन पर बैठकर पिता जी की आज्ञा का उसी भांति पालन करो जैसे यहां वन में हम लोग कर रहे हैं। अपने चित्त से इस विचार को निकाल दो कि मैं, जानकी या लक्ष्मण यहां दुःख भोग रहे हैं। यह विचार ठीक नहीं। क्योंकि साधारण प्राकृतिक सुखों के अतिरिक्त इस स्थान में आकर हमने जो आत्मिक शान्ति तथा आनन्द लाभ

किया है उसे तुम्हारे सन्मुख कथन करना सुगम नहीं।"

इस समय तक वशिष्ठ, जाबालि, वामदेव तथा अन्य आमात्य और राजमाताएं भी आ चुकी थीं और इस वार्तालाप को दत्तचित्त से श्रवण कर रही थीं। राम मौन हुए तो वशिष्ठ जी ने कहा—

वशिष्ठ—राम ! तुम्हें ज्ञात है कि मैं तुम्हारा आचार्य हूँ। तुम्हारे पिता का भी आचार्य था। आचार्य ही नहीं कुल-पुरोहित भी हूँ। इस कारण मुझे जो कथन करना है वह तुम्हारे कुल के हित को सन्मुख रख कर होगा। उसमें मुझे न तो तुम्हारा पक्ष लेना है न भरत का।

इसमें सन्देह नहीं तुम्हारे पिता ने तुम्हें चतुर्दश वर्ष वन में वास करने का आदेश दिया। परन्तु स्यात तुम नहीं जानते कि विवस्वान कुल के आदि से जितने राजा हुए हैं उनमें ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य का स्वामी होता रहा है। इस प्रकार यह कुलधर्म बन गया है और कुलधर्म साधारण अवस्था में शास्त्रोक्त धर्म के समान माननीय होता है। इसलिये यदि तुम राज्यसिंहासन को ग्रहण करोगे तो उसमें धर्म विरुद्ध कोई बात नहीं होगी। महाराज दशरथ ने यदि भरत को राज्य दिया तो वह कुल धर्म के विरुद्ध था......................

भरत—(बात काटकर) यदि पिता जी ने मुझे राज्य दिया तो मैं उसी राज्य को भ्राता जी के चरणों में रखता हूँ। अब तो उसके ग्रहण करने में इन्हें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। और यदि अब भी यह इसे ग्रहण नहीं करेंगे तो मैं इसी कुटी के

द्वार पर धरना देकर बैठ जाऊंगा और चतुर्दश वर्ष का वनवास समाप्त करके उठूंगा। इस सारी कलह की मूल मैं हूं। अपराध मेरा है दण्ड मुझे मिलना चाहिये।

राम—भ्राता ! तुम धरना क्यों दोगे ? मैंने कोई ऐसा पाप नहीं किया जिसके लिये तुम मुझ पर यह बल प्रयोग करोगे।

भरत—आप राज्य को संभालिये। माताओं की, विशेषकर माता कैकेयी की भी, अब यही इच्छा है। यदि आप ऐसा न करेंगे तो अयोध्या बिना राजा के हो जाएगी और यह आपको ज्ञात ही है कि राजा के बिना जगत् में कैसे २ अत्याचार होने लगते हैं।

राम—गुरुदेव ! माताओ ! और भरत जी ! आप साधारण अवस्था में मुझे जो भी आज्ञा देते मेरे लिए शिरोधार्य होती। परन्तु इस समय अवस्था साधारण नहीं। पिताजी आज्ञा दे चुके। उनकी मृत्यु ने उस आज्ञा पर छाप लगा दी। इसलिये यदि राज्य के प्रलोभन से मैं उसे पूर्ण नहीं करता तो पापी हूँ। आपकी दृष्टि में न सही, अपनी दृष्टि में मैं अपने आपको ऐसा ही समझूंगा। आप से भूला नहीं कि गिरे हुए आत्मा से बढ़कर अपना कोई शत्रु नहीं। इसलिये चाहे चन्द्र अपनी प्रभा को त्याग दे, हिमालय हिम से शून्य हो जाये, समुद्र अपनी सीमा को लांघ जाए, राम अपनी प्रतिज्ञा को नहीं छोड़ सकता। सो चतुर्दश वर्ष तो वनों में कटेंगे ही। तत्पश्चात् यदि आपकी, भरत जी की, प्रजा की तथा माताओं की इच्छा हुई तो मैं उस आज्ञा का पालन करूंगा।"

भरत के हृदय पर से एक बोझ सा उठ गया। उसे घटाटोप अँधियारे में प्रकाश की रेखा दीख पड़ी। उसने आगे बढ़कर भ्राता की खड़ाओं को शिरोधार्य करते हुए कहा:—

भरत—यदि आपका आग्रह है और आप चतुर्दश वर्ष की अवधि को पूर्ण करके ही कोशल देश में आना चाहते हैं, तो आप अपनी पादुका मुझे दे दें। यह सिंहासन पर रहेंगी। अयोध्या का शासन हम लोग, ये मन्त्री और प्रजा के प्रतिनिधि, करेंगे। परन्तु राज्य का सिक्का आपके नाम का होगा जिस पर इस पादुका का चिह्न रहेगा। इस प्रकार राज्य का भार आपकी पादुका पर होगा। मैं भी यह चतुर्दश वर्ष वनवासी के रूप में विताऊँगा। यदि आपने चतुर्दश वर्ष से एक दिवस भी ऊपर वन में बिताया, यदि आप उस समय के अन्त पर अयोध्या को न लौटे, तो फिर आप भरत को जीवित न देखेंगे। यह मेरी प्रतिज्ञा है।"

राम—प्रतिज्ञा अति कठिन है, पर तुम्हारे कारण इसे स्वीकार करता हूं। परन्तु देखना, माता कैकेयी जी को आज से उसी आदर की दृष्टि से देखना, जिससे इस घटना से पहले देखते रहे हो। उनके धर्मभाव को, पिताजी के लिये उनके प्रेम को, तथा हम सब के लिये उनकी ममता को, मैं भली प्रकार जानता हूं। उन्होंने जो कुछ किया है उसमें लेशमात्र भी उनका स्वार्थ नहीं था। तुम इस रहस्य को अभी समझ नहीं सकते पर समय आने वाला है जब परमपिता परमात्मा इस पर से पर्दा उठाएंगे—तब तुम जान लोगे। तुमने उनके सम्बन्ध में जो कुछ कहा है उसमें न्याय से काम

नहीं लिया। मैं इससे अधिक नहीं कह सकता। (शत्रुघ्न से) भाई ! प्रार्थना है कि मेरी अनुपस्थिति में सारी माताओं, विशेषकर माता कैकेयी जी को, कोई कष्ट न मिले। उनके मान तथा आदर में किसी प्रकार की त्रुटि न हो। भरत क्रोध में हैं, वह वास्तविकता को नहीं समझते, इस कारण तुम से प्रार्थना कर रहा हूं। बन में भी मेरे हृदय में यह कण्टक रहेगा कि मेरे कारण माता कैकेयी जी को कष्ट पहुंचेगा, और संसार उन्हें ग़लत समझेगा।

भरत तथा शत्रुघ्न—(चरणों में गिरकर) महाराज की आज्ञा का पूर्ण रूप से पालन होगा।

❀ ❀ ❀

पादुका को गजराज पर आसन दिया गया। राम ने माताओं के चरण छूकर उनसे आशीष मांगी कि चतुर्दश वर्ष की अवधि सुखपूर्वक कट जाए और फिर उनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हो। माता कौशल्या की उस समय की अवस्था का वर्णन हमारी शक्ति में नहीं। केवल यही कहेंगे कि वह पालकी में बैठी, पर हृदय प्रिय पुत्र और उससे भी प्रिय पुत्रवधू के पास छोड़ गई। माता कैकेयी ने चलते समय राम से कहा:—

कैकेयी—राम ! मुझ हत्यारी ने रघुकुल का विध्वंस कर दिया। न जाने उस समय मुझ पर कौनसा शनिश्चर सवार था………

राम—(बात काटकर) माता ! आप ऐसा न कहें। आपने यह कार्य किया है, और महर्षि भरद्वाज जी से वार्तालाप के पश्चात् मुझे भली प्रकार ज्ञात हो गया है, कि आप जिस कार्य के करने में

सहायक हुई हैं, वह रघुकुल के नाम को अमर बना देगा। परमात्मा शक्ति दें कि हम उसे पूर्ण करने में सफल हों। आशीष दीजिए, कि सफल-मनोरथ होकर पुनः आपके दर्शन करूं।

कैकेयी—राम! रघुकुल उसी घड़ी से अमर हो गया जिस घड़ी उसने तुम्हारे जैसे पुत्र को जन्म दिया। तुम मनुष्य नहीं देवता हो............।" आगे बोलना कठिन हो गया, कण्ठ रुंध गया। माता सुमित्रा सबसे थोड़ा बोलने वाली थीं, विदा के समय उनके मुख से केवल यह निकला—

सुमित्रा—राम! लक्ष्मण तुम्हारा सेवक है। उससे कोई अनुचित बात हो जाए तो क्षमा कर देना.........

राम (चरणों में झुक कर) माता जी! बहन उर्मिला को मेरी ओर से धैर्य देना। उसने मेरे लिये जो कुछ किया है उसे जगत् भूल सकता है, मैं नहीं भूल सकता।

❀ ❀ ❀

माताएं पालकियों में बैठ गईं, तो गुरुजी और अन्य आमात्यों को विदा करते हुए राम ने कहा—

राम—गुरुदेव! पिताजी के देहान्त के कारण जो भार आप के कन्धों पर आ पड़ा है वह बहुत भारी है। भरत जी अभी युवा हैं। आशा है आपकी छत्रछाया में उन्हें थोड़े समय में राज्य-कार्यों का पता लग जाएगा, तब वह आपका हाथ बटाने लग जायेंगे।

वशिष्ठ—(राम के सिर पर हाथ रख कर) राम के नाम की

शक्ति से आशा है कि कोई शत्रु कोशल देश की ओर नेत्र उठाकर नहीं निहार सकेगा। आप इस ओर से निश्चिन्त होकर अपना कार्य कीजिये। चतुर्दश वर्ष की अवधि जो भारत के इतिहास में अद्वितीय होने वाली है, सुख से बीत जायगी, और आप अधिक से अधिक तेजस्वी होकर अयोध्या को लौटेंगे, यह हमारा आशीष है।

❋ ❋ ❋

राजकुमार भरत, आमात्य और राज-माताएं दल बल सहित वापिस चले गये, पर राम, लक्ष्मण और सीता के लिये सोच का सामान हो गया। जङ्गल का वायुमण्डल, जो इस समय तक अत्यन्त शुद्ध रहा था, इतने सारे मनुष्यों और पशुओं के कई दिनों तक वन में रह जाने के कारण स्थूल हो गया। मनुष्यों के, तथा हस्ति, घोड़े, बैलों के मलमूत्र ने वन को मलिन बना दिया। इसके अतिरिक्त यह प्रश्न भी शोचनीय हो गया कि अब जो चित्रकूट तथा पर्ण-कुटी का मार्ग सब को ज्ञात हो गया है, तो यह पर्वत अयोध्या के स्थान में कोशल देश की राजधानी न बन जाए, क्योंकि इसमें सन्देह नहीं रहा था कि राजमन्त्रि और स्यात भरत जी भी आवश्यक कार्यों में पूछताछ के लिए राम जी के पास आने लग जायें। यदि ऐसा हुआ, तो बनवास का असली प्रयोजन तो जाता ही रहेगा। नीति की दृष्टि से भी राजवंश के राजकुमारों का विख्यात होकर शत्रुओं का लक्ष्य बन जाने की सम्भावना थी। इस कारण सावधानी की आवश्यकता अधिक हो गई।

इन सब बातों पर विचार करके पर्ण कुटी को छोड़ देने का निश्चय करके वनवासी चित्रकूट से उत्तर को चले। पर्वत को लांघ कर दण्डकारण्य के सिरे पर अत्रि ऋषि जी का आश्रम था, वहां के वासियों ने हृदय से उनका स्वागत किया। महर्षि अत्रि स्वयं उन्हें लेने को आश्रम के द्वार तक आये। राम, लक्ष्मण और सीता ने बारी २ से उनके चरणों पर शीश रखे, तो सीता को सम्बोधित करके महर्षि ने कहा—

अत्रि—जनकनन्दिनी ! भीतर चली जाओ । अनुसूया जी भीतर विराजमान हैं, वह वृद्धा अधिक हो गई हैं इस कारण तुम्हारे स्वागत के लिये नहीं आ सकती। हमने ऐसा करने से उन्हें रोक दिया था। (राम और लक्ष्मण से) आपको ज्ञात नहीं, हमारी सहधर्मिणी श्रीमती अनुसूयाजी ने एक समय जब दस वर्ष पर्यन्त वर्षा नहीं हुई थी और इस देश के पशु, पक्षी तथा मनुष्य अकाल से पीड़ित होकर मर रहे थे, मन्दाकिनी नदी को इस ओर लाने का यत्न किया था। इसी भाँति उन्होंने आयु भर और बहुत से ऐसे कार्य किये हैं, जो जगत् के हितार्थ थे। पर अब वह वृद्धा हो गईं हैं। मनुष्य शरीर जिससे इतने काल में बहुत से कार्य लिये गये हैं, पुराना हो गया है। इस कारण अब अधिक चल फिर नहीं सकतीं। जनकदुलारी उनसे मिलकर प्रसन्न होंगी।

सीताजी भीतर चली गईं तो ऋषि ने राम और लक्ष्मण को आसन देते हुए कहा—

अत्रि—आपने चित्रकूट को त्यागने का निश्चय कर लिया ?

राम—विचार तो ऐसा ही है । आगे जो भगवान् सम्मति दें।

अत्रि—विचार ठीक है। अब इस देश में सबको ज्ञात हो गया है कि आप कोशलाधिपति हैं, इसलिये शत्रु सावधान हो जायेंगे और सम्भव है किसी समय तुम्हें कष्ट दें।

राम—(धीमे स्वर में) भगवान् को ऋषि मण्डल की आज्ञा का ज्ञान हो चुका होगा। हम लोगों ने चित्रकूट के आस पास के ग्रामीण लोगों को संगठित करना आरम्भ कर दिया था। उन्हें अस्त्र-शस्त्र बनाने तथा उपयोग करने का कार्य सिखाना भी आरम्भ हो चुका है। आशा है थोड़े समय में ही यह लोग अपनी रक्षा स्वयं करने लग जाएँगे।

अत्रि—तुम ने जो कार्य्य आरम्भ किया है हमें उसका ज्ञान है। तुम्हारे आगे जाने के पश्चात् हम उसे अपने हाथ में ले लेंगे और यदि तुम्हें कदाचित् किसी समय आवश्यकता पड़ी, तो इस ओर से सहायता मिल सकेगी। परन्तु अब विचार क्या है ?

राम—दण्डकारण्य में प्रवेश करूँगा। सुनता हूँ उसके भीतर राक्षस लोगों ने अनेक स्थानों पर अपने अड्डे जमा लिये हैं। कई स्थानों पर उन्होंने अस्त्र-शस्त्र भी एकत्रित कर लिये हैं। इस अरण्य में प्रवेश करके शत्रु की शक्ति को जानने, और सम्भव हुआ तो उसे नष्ट-भ्रष्ट करने का यत्न करूँगा।

अत्रि—परमात्मा तुम्हारे सहायक हों। सावधानी की आवश्यकता है।

राम—हमें उतावलि की आवश्यकता नहीं। अभी हमारे सम्मुख चतुर्दश वर्ष पड़े हैं। हम इस समय में चित्रकूट से लेकर समुद्र पर्यन्त देश को राक्षस-हीन करना चाहते हैं। यदि कोई घटना विरुद्ध न हुई तो इस समय में सुगमता से ऐसा कर सकेंगे, इसकी मुझे आशा है।

अत्रि—भगवान् उसकी अवश्य सहायता करते हैं जो अपनी सहायता आप करता है!

❀ ❀ ❀

राजकुमारी सीता ने अनुसूयाजी के चरणों में प्रणाम कर के अपना परिचय दिया, तो अनुसूयाजी उससे मिलकर अति प्रसन्न हुईं। जब उसने राम से विवाह और इस ओर वन को आने की कथा सुनाई, तो दीर्घ समय तक उसे पतिव्रत धर्म का उपदेश देती रहीं, जिसे राजकुमारी ने शिरोधार्य करके कहा—

सीता—माताजी! विवाह के समय माताजी ने भी मुझे ऐसा ही उपदेश दिया था, जिसे मैंने विस्मरण नहीं किया है। वन को आते समय माता कौशल्याजी ने जो कुछ कहा था उसका भी एक २ अक्षर मेरी दृष्टि के सम्मुख रहता है।

अनुसूया—पुत्री! मुझे तुम्हारी बातों से प्रसन्नता हुई। तुम राजपाट के सुखों को त्याग कर पति सेवा के लिये वन में चली

आई हो। इससे तुम्हारे हृदय के भावों का भली प्रकार पता चलता है। परन्तु अब तुम निर्जन वन में प्रवेश कर रही हो, जहाँ नगरों से अधिक प्रलोभन होंगे। उन वनों में राक्षस लोग ऊधम मचा रहे हैं। उन्हें किसी की बहू बेटी के सतीत्व का ध्यान नहीं। इस कारण तुम्हें अपनी रक्षा के लिये बहुत सावधान रहना पड़ेगा। सुन्दरता तथा युवावस्था स्त्री का भूषण हैं, पर यही ऐसे समय पर उस के शत्रु हो जाते हैं। यदि तुम पति भक्ति में इसी भाँति तल्लीन रहीं, जैसा कि आज पर्यन्त रही हो, तो बड़े से बड़े प्रलोभन से भी सुरक्षित रहोगी। सती के शिर पर भगवान् का हाथ रहता है।

सीता—आप सरीखी तपस्विनी का आशीर्वाद मेरा सहायक रहेगा।

अनुसूया—पुत्री! तुम वन में रहोगी। मैंने अपनी सारी आयु वनों में व्यतीत कर दी है। इसलिये अब मैं दो चार वस्तु तुम्हें देती हूँ। यह अनुसूया की स्मृति तुम्हारे सम्मुख रखेंगी।

यह कहकर ऋषि पत्नी ने कुछ आभूषण, शरीर को लगाने वाला उबटन और कुछ वस्त्र जनक-दुलारी को देते हुए कहा—

अनुसूया—स्त्री छोटी हो वा बड़ी, राज पुत्री हो या वन में विचरने वाली तपस्विनी, उसे अपने शरीर को पवित्र और विमल रखने की आवश्यकता रहती है। ऐसा किये बिना वह पति के मन को वश में नहीं रख सकती। यह उबटन तुम्हारे अङ्गों को कोमल रखने में सहायक होगा। इसके बनाने में वन की जड़ी बूटियों से

सहायता ली गई है। तुम्हारी इच्छा होगी तो मैं तुम्हें उनको बता दूँगी। यह वस्त्र मेरी आयु भर की तपस्या का फल हैं। इन में मल नहीं जा सकती। एक बार मेरे सम्मुख इन आभूषणों को पहनो तो।

सीता ने तपस्विनी की आज्ञा-पूर्ती में उन्हें पहना, तो ज्ञात हुआ मानो उनके शरीर का नाप लेकर ही बने हैं।

उन्हें पहना कर अनुसूयाजी ने कहा—

अनुसूया—पुत्री! यह आभूषण और वस्त्र तुम्हें बहुत भले लगते हैं। अब समय बहुत अधिक हो गया, तुम्हारे पति तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। जाओ उनकी सेवा करो। परमात्मा तुम्हें पतिव्रताओं में ऊँचा पद देगा।

दण्डकारण्य में प्रवेश

"तुम कौन धूर्त हो जो इस वन में एक सुन्दर स्त्री को लिये फिर रहे हो ? क्या भ्रष्टाचारों के लिये विराध का वन ही रह गया है ?"

राम, लक्ष्मण, और सीता ने लौट कर देखा तो सामने एक व्यक्ति दृष्टिगोचर हुआ जिसका आकार भीषण, शरीर लम्बा, रंग काला, दाढ़ी लम्बी, लम्बी जटायें और हाथ में त्रिशूल था। उसे देख कर राम ने उच्चस्वर से कहा :—

राम—हम क्षत्रिय हैं। तुम कौन हो जो जीवन से हाथ धोकर क्षत्रियों को ललकार रहे हो ?

व्यक्ति—तुम्हारे क्षत्रित्व की ऐसी तैसी ! तुम तो बदमाश हो जो स्त्री को साथ लेकर लम्पटता के लिये जंगल में घुसे आ रहे हो। क्या तुम्हें ज्ञात नहीं यह वन विराध राक्षस का है ? जिसकी तपस्या के परिणाम में उसके शरीर पर कोई शस्त्र प्रभाव नहीं डाल सकता। जो क्षत्रियों का रक्त पिया करता है, और जो आज तुम दोनों छोकरों की चटनी बना कर इस स्त्री के साथ आनन्द भोग करेगा।

यह कह कर एक झपट से सीता को गोदी में उठा कर—

अरी इधर आ, अपना रक्तवर्ण गाल विराध के अधरों से लगा........................"

राम के धनुष से एक बाण निकल कर विराध की कोहनी में बैठा और साथ ही उसकी जिह्वा से निकला, "दुष्ट ! निर्लज्ज !! जानता नहीं किस पर हाथ उठा रहा है ?"

विराध ने सीता को पृथ्वी पर टिका दिया, और बाण कोहनी से निकाल कर राम की ओर फेंकते हुये कहा—

"यही है न तेरा बाण, जिस पर इतना इतराता है ! तुझे कहा नहीं था विराध के शरीर पर शस्त्र असर नहीं करते ? ले अब तू मरने के लिये तैयार होजा, मेरे सन्मुख कोई नहीं ठहर सकता।

यह कह, और त्रिशूल थाम कर, वह पवन वेग से राम पर झपटा, पर अभी उन तक पहुँच न सका था कि राम की चुटकी से निकले हुये दो बाणों ने त्रिशूल को काट कर दो टुकड़े कर दिया। त्रिशूल के हाथ से छूट जाने से विराध झल्ला गया। वह घर से सिंह के शिकार के लिये निकला था और उसी त्रिशूल से दो सिंहों का कलेजा फाड़ और दो व्याघ्रों को लक्ष्य बना कर चला आ रहा था। उसे इस जंगल में इसके अतिरिक्त अन्य शस्त्र की कभी आवश्यकता नहीं पड़ी थी, क्योंकि उस की शक्ति चहुं ओर विख्यात थी। मनुष्य तो मनुष्य वन्य पशु भी उसकी आवाज सुन कर पलायमान हो जाते थे। इसलिये त्रिशूल का हाथ से छूटना उसके लिये विस्मय जनक था, ठीक जिस प्रकार राम के बाण का

खाली जाना राम के लिये विस्मयप्रद था। अपने आप को निःशस्त्र पाकर विराध मुक्का तान कर राम पर झपटा, पर प्रतिपक्षी ने पैंतरा बदल कर उसके वार को खाली दे दिया। विराध उस समय इतने प्रबल वेग से झपटा आ रहा था कि राम के पैंतरा बदलने से वह अपनी शक्ति के कारण मुंह के बल गिर पड़ा। राम यही तो चाहता था, उसने शत्रु को कटि से पकड़ कर इतनी शक्ति से वायु मण्डल में चारों ओर घुमाया कि सीता और लक्ष्मण तो एक ओर, स्वयं विराध भी विस्मित था। उसके यह विचार में भी नहीं आ सकता था कि इस साधारण से शरीर में इतनी शक्ति हो सकती है। विराध को वायु में घुमाते हुये राम ने उसका सिर एक वृक्ष पर दे मारा, साथ ही कहा :—

राम—दुष्ट, तुम पर शस्त्र का प्रभाव नहीं होता तो तेरी मृत्यु के लिये अन्य अनेक साधन हो सकते हैं।

वृक्ष पर जोर से लगने के कारण विराध का सिर फट गया। उसका भेजा बाहर निकल आया और वह बड़े जोर से कराहा। राम ने आस पास देखा तो सामने एक गहरा गढ्ढा दीख पड़ा, जिसे देख कर उसका चेहरा आवेश से तमतमा उठा और विराध को पुनः उठा कर वायु में घुमाते हुये गढ्ढे में फैंक कर उसने कहा—

"जानकी के शरीर को छूने वाला जीवित ही पृथ्वी में गाड़ा जाएगा।" लक्ष्मण को पुकार कर—"लक्ष्मण! इस लम्पट को

जीवित इस गड्ढे में गाड़ना होगा, आसपास की मिट्टी खोद कर गड्ढे को पूर्ण कर दो।"

राम के नेत्र रक्त-वर्षा कर रहे थे, जानकी के शरीर पर हाथ पड़ने से उसके रक्त में इतना भयानक उबाल आ चुका था कि सीता और लक्ष्मण कांप उठे। इसीलिये उनकी आज्ञा-उल्लंघन का साहस नहीं हुआ।

बाणों से आसपास की पृथ्वी खोदी गई और मूर्च्छित विराध को जीवित गाड़ दिया गया, कि उसका शरीर मनों मिट्टी के नीचे दब गया। विराध को उसके कर्मों का फल दे कर राम ने कहा—

राम—विराध का तो अन्त हो गया, वह अब इस जन्म में फिर किसी स्त्री को हाथ नहीं लगा सकेगा। परन्तु सन्देह है कि उसके साथी कहीं दूर नहीं होंगे। उसकी गर्ज और उसका चीत्कार बहुत दूर तक गया है। इसलिये उन लोगों ने उन्हें अवश्य सुना होगा (कान के पीछे हाथ देकर) मैं उनके इधर आने का शब्द सुन रहा हूं, इसलिये हम इन सघन वृक्षों पर चढ़ जायें; जहां से उन्हें बाणों का लक्ष्य बना कर इस झगड़े का सदैव के लिए अन्त कर दें। कहो लक्ष्मण क्या कहते हो ?

लक्ष्मण—आपका विचार ठीक है। घने वृक्षों में छिपे होने के कारण वह यह नहीं जान सकेंगे कि हमारी संख्या क्या है ?

राम—अच्छा ! तो तुम परले सिरे वाले वृक्ष को सम्भाल लो। प्रिये ! इधर आओ मैं तुम्हें इस वृक्ष पर चढ़ना सिखलाऊं।

धीरे २ कोमल हाथों से राम का आश्रय लेते हुए जानकी

टहनियों को पकड़ कर वृक्ष पर चढ़ी। उसके जीवन में यह नया कौतुक था, जो इससे पूर्व कभी न देखा था। जनक के उद्यानों में वह वृक्षों पर कूदी थी, पर जीवन रक्षा के लिये घने पत्तों में छिपना इस क्रीड़ा से भिन्न था। उसे पत्तों में आराम से बिठा कर राम साथ वाले वृक्ष पर चढ़ कर बोले—"कहो प्रिये! किस भवन में विश्राम कर रही हो?"

सीता—(हँसते हुए) उद्यान भवन में। वनराज के भवन वृक्षों में ही तो हैं।

राम—कहो किसी वस्तु की आवश्यकता तो नहीं? कोई वस्त्र तो नहीं चाहिये? जी में तो आता था कि तुम्हें किसी कण्टक वृक्ष पर चढ़ाता.........

सीता अभी इस मजाक का उत्तर नहीं दे सकी थी कि लक्ष्मण के धनुष से बाणों की एक बौछार निकली जिसने निकट आते हुए राक्षसों में से बीसियों को धराशायी कर दिया। वह लोग चारों ओर देखने लगे, परन्तु बाण कहां से आ रहे हैं? यह ज्ञात न हुआ। साथियों को पृथ्वी पर गिरा देख कर वह अपने गुप्त शत्रु पर दांत पीसते हुए त्रिशूल ताने आगे बढ़े, पर अब के राम के बाणों ने और बीसियों को यमलोक का मार्ग दिखाया। उन्होंने फिर चारों ओर नेत्र फाड़ कर देखा, पर कुछ समझ में न आया कि बाण वर्षा जंगल के किस भाग से आ रही है? इसलिये समझे कि कोई राक्षसी माया है। इस कारण सिर पर पांव रख कर भागे, पर जंगल सघन था, उसमें से निकल जाना सुगम नहीं था,

उधर दोनों भाइयों के बाण चारों ओर तबाही मचा रहे थे। परिणाम यह हुआ कि दो-चार ही जीवन लेकर वन से भाग सके।

क्षेत्र खाली देख कर राम और लक्ष्मण वृक्षों से उतरे और राम ने लक्ष्मण से कहा—"भाई अपने अमूल्य बाणों को इस वन में गँवाना अच्छा नहीं, इसलिये जितने मिल सकें उन्हें सम्भाल लेना ही ठीक है। परन्तु ध्यान रखना मरता हुआ कोई राक्षस वार न कर दे।

आज्ञा पालन में लक्ष्मण मृत शरीरों से बाण निकालने लग गया, तो राम ने सीता से, जो अभी वृक्ष से नहीं उतरी थीं, कहा-"वनदेवी अब उद्यान भवन से नीचे आ जाओ। वन का अन्य भाग भी देखना है।"

सीता—आप उतारेंगे तो उतरूंगी।

राम—न उतरोगी तो इसी स्थान पर बैठी छोड़ कर हम आगे चले जायेंगे।

सीता—मैं यहीं से ही छलांग लगा दूंगी।

यह कह कर मुस्कराते हुये वह वृक्ष के टहने पर खड़ी हो गई। राम ने हँसते २ हाथ ऊँचे कर दिये। दूसरे क्षण में सीता एक छलांग में राम के गले में बाहें डाल कर उसकी छाती से लिपट गई।

———

शरभंग आश्रम

राम, लक्ष्मण और सीता ने दण्डकारण्य के भीतर प्रवेश किया, तो चारों ओर अद्भुत दृश्य दृष्टिगोचर हुये। कहीं पर भारी अजगर पृथ्वी पर सिर रखे धूप सेंक रहे थे। कहीं छोटे बड़े सांप सरसराते हुए शिकार की खोज में पाओं में से निकले जा रहे थे। एक ओर बियाबान, मीलों तक सूखा चटियल मैदान, दूसरी ओर झरनों के जल के झरझराने का शब्द, सामने दूर विन्ध्या, सतपुड़ा और अन्य पर्वत शिखर गगन को छू रहे थे। इस मनमोहक और भयानक दृश्य को एक साथ देख कर राम ने कहा—"इतना भयानक वन आज पर्यन्त नहीं देखा था !"

सीता—यह भयानक ही नहीं, उस ओर देखिये कैसा लुभावना दृश्य सामने है।

लक्ष्मण—वह सामने धूम्र कैसा है ?

राम ने उधर देखा जिधर लक्ष्मण ने संकेत किया था तो सचमुच वृक्षों के झुण्ड में से धूयें के मेघ निकल कर आकाश को आच्छादित कर रहे थे। उन्हें भली प्रकार देखकर उसने कहा :—

राम—ऐसा प्रतीत होता है, हम शरभंग आश्रम के, जिस का चित्रकूट वासियों ने पता दिया था, निकट पहुँच गये हैं।

यह अच्छा ही हुआ । इस भयानक वन में रात्रि व्यतीत करने को आश्रय मिल जायेगा।

अब इन लोगों की चाल तेज़ हो गई। कुछ दूर जाकर जानकी ने कहा—"आर्य पुत्र ! वह देखिये आश्रम के ऊपर क्या दीख रहा है ?"

राम ने नेत्र उठाये, तो आश्रम के ऊपर प्रकाश का एक चक्कर सा घूमता दिखाई दिया। विस्मित होकर आगे बढ़े, तो पता लगा, कि एक गोलाकार वायुयान है जिसमें से प्रकाश की रश्मियां निकल-निकल कर चकाचौंध उत्पन्न कर रही हैं।

यह दृश्य देखकर उनका विस्मय और भी बढ़ गया । कुछ काल तक वह चुपचाप इस दृश्य को निहारते हुए चले, तत्पश्चात राम ने कहा—"ऐसा दीख पड़ता है। यह महाराज इन्द्र का वायुयान है। हमने इसके विषय में श्रवण तो बहुत कुछ किया था, परन्तु इसे देखा आज ही है। वह देखो इसके दोनों ओर दो स्त्रियों की मूर्तियां बनी हैं जो चंवर हाथ में लिये बैठने वालों पर छाया कर रही हैं। उनसे कुछ फासले पर एक ही कद के पचीस नवयुवक हाथों में शस्त्र संभाले इसकी रक्षा कर रहे हैं। वायुयान गोल रथ के आकार का बना है और ऐसा प्रबन्ध किया गया है कि जब यह चले तो इसमें से स्वयमेव प्रकाश निकलता रहे, जिससे मार्ग प्रकाशमान हो जाए। इस के भीतर नाना प्रकार के शस्त्र रखने का स्थान भी बना है। जब पृथ्वी पर आने की आवश्यकता न हो तो यह वायु मण्डल में स्वयमेव स्थिर रह सकता

है। आकाशगामी जितने वाहन इस समय तक बन चुके हैं उनमें यह सबसे बढ़िया है। अच्छा अब तुम दोनों यहां ठहरो, हम आगे चल कर महर्षि शरभंग जी को सूचना देते हैं।"

अभी कुछ दूर ही चले थे कि वायुयान पृथ्वी पर उतरता हुआ दीख पड़ा। फिर कुछ क्षण में ऊपर उठ कर वायु में तैरता हुआ दृष्टि से ओझल हो गया। राम आगे बढ़े तो ऋषि का एक शिष्य दीख पड़ा। उसे लक्ष्य करके राम ने कहा—

राम—भैय्या ! महाराज को सूचित कर दो कि दशरथ-पुत्र राम अपने कनिष्ठ भ्राता लक्ष्मण तथा स्त्री सीता के साथ आपके दर्शन की आज्ञा चाहता है।

"ओ३म्" कह कर ऋषि-शिष्य शीघ्रता से भागा, और कुछ ही क्षण में लौट कर तीनों अतिथियों को भीतर ले गया।

राम, लक्ष्मण और सीता ने भीतर जा कर ऋषि के चरणों में शीश झुकाया। ऋषि उस समय अस्वस्थ थे, परन्तु उन्हें आता देख कर उठ कर बैठ गये, और राम से बोले—

ऋषि—समय पर आ गये। कई दिन से आपकी प्रतीक्षा हो रही थी। बल्कि सच पूछो तो यह प्राण तुम्हारी प्रतीक्षा में ही इस शरीर में अटके हुए थे। कई आवश्यक बातों की सूचना तुम्हें देनी थी। (चारों ओर देख कर) धर्म ध्वज ! देवी सीता थक गई होगी, इनके विश्राम का प्रबन्ध कर दो। लक्ष्मण ! तुम भी थकित प्रतीत होते हो, थोड़ा सुस्ता लो। हम राम से कुछ

आवश्यक बातें करेंगे। धर्मध्वज! बेटा! इनके भोजन और विश्राम का प्रबन्ध भली प्रकार करके फिर हमारे समीप आना। इस समय हम एकान्त चाहते हैं।"

"ओ३म्" कह कर शिष्य सीता और लक्ष्मण को साथ लिये बाहर चला गया। उसे फासले पर देख कर ऋषि ने राम से कहा—

ऋषि—राम! ऋषि मण्डल ने जो कार्य तुम्हें सौंपा है वह इतना महान् है, कि यदि तुम उसमें सफल हो गये, तो आने वाली सन्तान तुम्हारे नाम की पूजा किया करेगी। हम देख रहे हैं कि तुम्हें इसमें बहुत कष्ट झेलने पड़ेंगे। सम्भव है कि तुम्हें प्रिय पत्नि से भी अलग होना पड़े। परन्तु यदि तुम उन दुखों की परवाह न करके दत्तचित्त से उसमें लगे रहोगे तो सफलता में लेशमात्र भी सन्देह नहीं। यह हम योग दृष्टि से देख चुके हैं।....

राम कुछ कहना चाहते थे परन्तु ऋषि ने हाथ के संकेत से रोक दिया।

ऋषि (बात को जारी रखते हुए) हम इस कार्य में तुम्हारा हाथ बटाना चाहते थे, परन्तु शरीर साथ नहीं देता। इसलिये इसे त्याग देने का विचार हो रहा है। तो भी हम इस अल्प समय में दण्डकारण्य में रहने वाले सारे ऋषि महर्षि ही नहीं, इर्द गिर्द के लोगों में जागृति उत्पन्न करने में सफल हो गये हैं। हमारी उस तपस्या का फल तुम भोगोगे। (ज़रा ठहर कर) यहाँ

से थोड़ी दूर महर्षि अगस्त्य के शिष्य सुतीक्ष्णजी का आश्रम, है वह अभी युवक हैं, और आर्यवर्त को राक्षसवर्त बनने से बचाने के लिये अधिक यत्न कर रहे हैं। वह तुम्हारे कार्य में सहायक होंगे। यहाँ हमारे शरीर का दाह कर्म करने के पश्चात् तुम उन्हीं के आश्रम में जाना। (उच्च स्वर से) कोई है ?

ऋषि के पुकारने के उत्तर में एक शिष्य भीतर आया। उसे शरभंग जी ने कहा—"जो महात्मा सज्जन आये हुए हैं, उन्हें तथा लक्ष्मण और सीता को भी बुला लो।"

अल्पकाल में ही बहुत से ऋषि महर्षि, जिन्होंने तपश्चर्य्या में जीवन बिता दिये थे, भीतर आ गये। उनके सामने शरभंग जी ने कहा:—

शरभंग—महात्मा सज्जनो! राम और लक्ष्मण आ गये हैं। यह महाराज दशरथ के पुत्र हैं। ऋषि मण्डल ने महारानी कैकेयी को कारण बना कर इन्हें अयोध्या के राज्य से चतुर्दश वर्ष के लिये उधार मांगा है। उसमें से कुछ काल तो व्यतीत हो चुका, शेष जो है, उसमें यह आप लोगों के साथ दण्डकारण्य में घूमेंगे।

एक ऋषि—भगवान् हमारी ओर से आप इनसे यह प्रार्थना करें, कि यह हमें राक्षस लोगों से सुरक्षित कर दें। उन लोगों ने इस समय तक हमें जो दुःख दिये हैं, वह आपसे भूले नहीं। यदि रामजी के यहां रहते हमारी उन पापियों से रक्षा हो सके, तो हम लोग अधिक तपस्या करते हुए न केवल अपना जीवन ही सफल कर सकेंगे, बल्कि देश उन्नति के भी कई कार्य कर सकेंगे।

राक्षसों के अत्याचार के कारण इस समय विद्यार्थियों के विद्या-उपार्जन का कार्य भी भली प्रकार नहीं हो सकता। कला कौशल का तो क्या कहें साधारण अक्षर बोध भी कठिनता से होता है।

शरभंग—आप लोगों के सन्मुख तथा आपकी सहानुभूति से हम इन्हें दण्डकारण्य का राज्य प्रदान करते हैं। तिलक की सामग्री मंगाओ।

राम—भगवन् ! इसकी आवश्यकता नहीं। यह दास जीवन रहते ऋषि महर्षियों की सेवा को अपना लक्ष्य समझता है·····

शरभंग (बात काट कर) राम ! घबराओ नहीं, राज्य तुम्हें वन का दिया जा रहा है, ग्रामों और नगरों का नहीं (राम के मस्तिष्क पर तिलक लगाकर) इस तिलक के लगने से तुम इन ऋषि महर्षियों से जो सेवा चाहोगे, ले सकोगे। आवश्यकता हो तो इन से कर भी प्राप्त कर सकोगे।

राम—कर ! ऋषियों से कर !

शरभंग—(हंस कर) बेटा ! राजा जिस प्रकार अन्य प्रजा की आय से $\frac{1}{6}$ भाग का भागी है, इसीप्रकार ऋषि महर्षियों के पुण्य कार्य के फल का $\frac{1}{6}$ भाग उसे मिलता है। क्यों महात्मा सज्जनों ! आपको रामजी को दण्डक का राज्य देने और उन्हें अपना रक्षक स्वीकार करने में कोई बाधा है ?

ऋषि—नहीं, कदापि नहीं।

शरभंग—राम ! इस तिलक की, जो हमने अपने अन्तिम समय में तुम्हारे मस्तिष्क पर लगाया है, लाज रखना तुम्हारा काम है।

राम ने ऋषि के चरणों में शीश झुका दिया।

शरभंगजी ने ऋषियों की ओर देख कर कहा—"कहो दण्डक पति राम की जय।"

ऋषियों के मुख से यह शब्द निकलते ही "वनराज की जय" "दण्डक पति राम की जय" के नारों से वायु मण्डल गूंज उठा।

ऋषि मुनियों को विदा करके शरभंग ने राम से कहा।

शरभंग—राम ! मैंने जो कुछ किया है, यह तुम्हारे लिये अचम्भा नहीं होना चाहिये। यह सब कुछ उसी कार्यवाही का भाग है जो तुम कर रहे हो। शरभंग अब अल्प काल के लिये ही तुम्हारे सन्मुख है। इसका भौतिक शरीर क्षण प्रतिक्षण अन्त की ओर जा रहा है। इसलिये आवश्यकता थी कि इसके जाने के पश्चात् यह एकत्रित ऋषि महात्मा तुम्हारी आज्ञा का पालन करते हुए तुम्हारे कार्य में सहायक हों। इसलिये मैंने यह तिलक का आडम्बर रचा है। तुम्हारे वनवास में इससे कोई अन्तर नहीं पड़ेगा, तुम्हारे पिता की आज्ञा का विरोध भी नहीं होगा। परन्तु इधर के लोगों को संगठित करने के लिये, उन्हें एक माला में पिरोने के लिये, तुम्हारे पास कोई साधन होना चाहिये था। वह इस तिलक ने तुम्हें दे दिया। (मुस्काकर) अभी-अभी तुम्हारे आने से कुछ काल पहिले महाराज इन्द्र अपने वायुयान में बैठ कर यहाँ पधारे थे। उनके साथ उनके अन्य मित्र भी थे। मेरा विचार है तुमने वह रथ देखा होगा।

राम—मैंने रथ के दर्शन किये हैं। उसके प्रकाश से वन जगमगा रहा था।

शरभंग—वह रथ भारतीय कलाकौशल का एक नमूना है। हम लोग यत्न कर रहे हैं कि हमारे अनुयायी वायु में उड़ना सीखें, और कुछ-कुछ उसमें सफल भी हो चुके हैं। इसीलिये वायु मार्ग, से जाने के लिये अनेक प्रकार के वाहन बनाये जा रहे हैं। इन ऋषियों के आश्रमों में, जो अन्त समय में मुझे मिलने आये हुए हैं, आपको सब कुछ मिलेगा, और सुतीक्ष्णजी आपको अन्य बातें भी बतायेंगे। इस समय मैं तुमसे यह कह रहा था कि हम लोगों ने भारत के राज्यों को भी आगन्तुक भय का परिचय देने का यत्न किया है, परन्तु राजा लोग राक्षस राज्य के भय से कुछ अधिक भयभीत हो रहे हैं। उन्हें हमारे साथ सहानुभूति है, तो भी वह स्पष्टतया हमें कोई सहायता देने में असमर्थ हैं। यही कारण है कि इन्द्रादि राजा, जो यहाँ पधारे थे, तुम्हें आता देखकर शीघ्र ही प्रस्थान कर गये। वह कह रहे थे कि अभी हम लोगों का राम से मिलना ठीक नहीं, क्योंकि यह समाचार राक्षस राज तक पहुँचे बिना नहीं रह सकते, फिर ईश्वर जाने इसका परिणाम क्या हो? हम राम से मिलेंगे; परन्तु उस समय जब वह राक्षस-राज्य को भारत से बाहर निकाल देंगे।

राम—जब मिलना कोई अर्थ नहीं रखेगा।

शरभंग—मेरे कथन का तात्पर्य्य यह है, कि तुम्हें जो कुछ करना है अपने बाहुबल और बुद्धिबल से करना है। किसी पर

आश्रित रहकर तुम्हें कोई कार्य नही करना। यह दण्डक वन आज तक किसी राज्य का भाग नहीं है, तुम्हें इसका राज्य देकर मैंने तुम्हें दण्डक वासियों की सेवा का अधिकारी बना दिया है। यह वन ऐसा भयंकर है कि अभी तक किसी मुकटधारी को इस पर अपना अधिकार जमाने का साहस नहीं हुआ। इसलिये इस पर तपस्वी लोगों का ही राज्य रहा है, वह इसमें निर्भय होकर विचरते रहे हैं। परन्तु अब राक्षस लोगों ने इसके एक सिरे पर जन-स्थान नामक बस्ती बसा कर इसमें घुसना आरम्भ कर दिया है। वह चाहते हैं कि ऋषि मुनि इसे छोड़ जायें। इसलिये हम लोगों पर अत्याचार कर रहे हैं। इस अत्याचार का अन्त करना है..................."

ऋषि यहीं तक पहुँचे थे कि दम उखड़ गया, और अल्प काल में वह वाणी जो अभी-अभी राम को उपदेश दे रही थी, सदैव के लिये मूक हो गई।

सुतीक्ष्ण आश्रम

शरभंग जी का दाहकर्म करने तथा एकत्रित हुए तपस्वियों को धैर्य देने के पश्चात् राम जी शरभंग आश्रम से चल कर सुतीक्ष्ण आश्रम को चले, और कई नदी नालों को पार करते हुए वहाँ पहुँचे। उनके पहुँचने के समय ऋषि हवन यज्ञ में लग रहे थे। उससे निपटकर बाहर निकले, तो राम, लक्ष्मण तथा सीता ने चरणों में शीश नवा दिया। पर सुतीक्ष्णजी ने यह कह कर रोक दिया—

सुतीक्ष्ण—वनराज! आप हमारे पूज्य हैं। आपको हमारे चरणों को स्पर्श नहीं करना चाहिए।

राम—मैं ऋषि मुनियों के चरणों का दास और देश का एक साधारण सेवक हूँ।

सुतीक्ष्ण—इसीलिए आप हमारे भ्राता हैं। हम अपनी रीति से वही काम कर रहे हैं जो आप करना चाहते हैं, इसलिए चरणों को स्पर्श करने के स्थान में तुम हमारे गले मिलो।

यह कह कर उन्होंने आगे बढ़कर राम को गले से लगा लिया और बड़े आदर से आश्रम में ले जाकर वह स्थान दिखाया जो उनके विश्राम के लिए नियत किया गया था। फिर कुछ समय

तक इधर उधर की बातें होती रहीं, जिनमें से अधिकतर शरभंग आश्रम के सम्बन्ध में थीं। फिर ऋषि यह कहकर चले गये, "भैय्या लम्बी यात्रा करके आये हो, विश्राम कर लो, कल संध्या हवन के पश्चात् बातें होगी।"

❀ ❀ ❀

दिन निकला। राम लक्ष्मण और सीता शौच स्नान आदि से निवृत हो कर हवन यज्ञ के पश्चात् संध्या के लिए बैठे, तो आश्रम के शान्त वायुमण्डल में अपने आपको भूल गये। संध्या उपासना करके बाहर निकले, तो चहुं ओर प्रकृति माता के सौन्दर्य्य को देख कर विस्मित रह गये। अभी इस दृश्य को देख ही रहे थे कि ऋषि के पाँव की चाप सुनाई दी। राम आगे बढ़े तो दूर से ही हंसते हुए सुतीक्ष्णजी ने कहा कहो राम जी! रात को कोई कष्ट तो नहीं हुआ? यह स्थान कुछ ऐसा ही है।

राम—(नमस्कार करते हुए) ऐ तो ऐ। सोए जैसे व्यापारी घोड़े बेचकर सोते हैं। थके हुए थे ही, तिस पर आपके आश्रम का जलवायु सोने पर सुहागा हो गया। ऐसी स्वप्नहीन रात कभी-कभी मिलती है।

सुतीक्ष्ण—अब क्या विचार है?

राम—आप क्या आज्ञा देते हैं? शरभंग जी ने अन्तिम समय में आपकी ओर ही संकेत किया था।

सुतीक्ष्ण—शरभंग जी बड़े उदार हृदय महापुरुष थे। वह जितने महापुरुष थे, उतने ही देशभक्त भी थे। उनसे हमें बहुत

अच्छी-अच्छी शिक्षा मिलती रही हैं, और यह उन्हीं की कृपा का फल है कि इधर के ऋषि आश्रमों में रहने वाले विद्यार्थी और ऋषि-मुनि ही नहीं निकटवर्ती ग्रामों के लोग भी देशभक्ति के रंग में रंगे गये हैं। उन सर्व आश्रमों में विद्यार्थियों और अन्य ऐसे लोगों को नित्यप्रति अस्त्र-शस्त्र को काम में लाना सिखाया जा रहा है। यही नहीं, उन अस्त्र-शस्त्रों को बनाने की विधि भी सिखाई जाती है। इस प्रकार वे इक्के-दुक्के राक्षसों से सुगमता से निपट सकते हैं।

राम—बहुत अच्छा हुआ, किन्तु आपको ज्ञात है कि राक्षस लोग साधारण अस्त्र चलाने में कितने प्रवीण हैं। यदि उन्हें देश से निकालना है तो हमें न केवल देश भर की सेना को धनुर्विद्या में प्रवीण बनाना होगा, बल्कि ऐसे अस्त्र-शस्त्र भी बनाने होंगे जिनका राक्षसों को अभी तक ज्ञान नहीं। यह कार्य सुगम नहीं। इसके लिये हमें ऐसे विद्यार्थी और विद्वान् चुनने होंगे जिन्हें कला-कौशल का शौक हो। वे लोग नवीन अस्त्र-शस्त्र बल्कि यंत्र बनाने में अपने मस्तिष्क लड़ाएँ, जो भविष्य में काम आ सकें।

सुतीक्ष्ण—आपका विचार अति उत्तम है। हम अपने आश्रम में अनुसन्धान विभाग के सम्बन्ध में आज ही चर्चा चला देंगे और अल्प समय में ही आशा है, ऐसे नवयुवक विद्वान् आगे आ जायेंगे जो आपके बताये हुए मार्ग पर चल कर इस कार्य को कर सकेंगे। अन्य ऋषि-आश्रमों के सम्बन्ध में भी अच्छा होगा कि आप उनकी यात्रा करें, और एक दिन नहीं, कई मास, और

कई वर्ष पर्यन्त, जैसी कि आवश्यकता हो, एक स्थान में रहकर इस कार्य को सीधे मार्ग पर डाल दें। इधर ऋषि-आश्रम बहुत हैं और सब ही अपने-अपने स्थान पर देश में हर प्रकार की विद्या का प्रचार करना अपना लक्ष्य बनाये हुए कार्य कर रहे हैं। यदि आप उनके आचार्यों से वार्तालाप करेंगे तो सफलता अवश्य होगी।

राम—इसके लिए बहुत समय की आवश्यकता है।

सुतीक्ष्ण—अभी चतुर्दश वर्ष का अधिक भाग तो व्यतीत नहीं हो गया। अयोध्या का राज्य प्राप्त करने से प्रथम यह दीर्घ काल आपको हमारे आचार्य बनने में व्यतीत करना होगा। इस समय में आपको ज्ञात हो जायगा कि बनवासी तपस्वी नगर-वासियों की अपेक्षा अधिक स्वार्थी हैं।

राम—उत्तर भारत में भगवान् विश्वमित्र कुछ इन्हीं नियमों पर कार्य कर रहे हैं। वह स्वयं अस्त्र-शस्त्र विद्या ही नहीं, अन्य अनेक विद्याओं के ज्ञाता हैं। इस कारण वह ऐसे बहुत से विद्वान् शिक्षित करने में सफल हो गये हैं, जो उनके चरण-चिन्हों पर चलते हुए उनके कार्य को भली प्रकार कर रहे हैं।

सुतीक्ष्ण—और दक्षिण देशों में गुरुदेव महर्षि अगस्त्यजी अपने ही ढंग पर ऐसा करने में सफल हुए हैं। आपको जब इधर के आश्रमों की देख-रेख से अवकाश मिलेगा तो मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि आप गुरुदेव के आश्रम को भी देख लें। उस स्थान में आपको ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गरुड़, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, कुबेर, भग, धाता, विधाता, पवन, वरुण, कार्तिकेय, धर्म इत्यादि के

नाम पर अनेक विभाग ऐसे दीख पड़ेंगे जहाँ पर कहीं जल की खोज हो रही हैं, कहीं पवन की। कहीं पर अग्नि के सम्बन्ध में अनुसन्धान से हो रहे हैं और कहीं पर आकाश की गुत्थियाँ सुलझाई जा रही हैं। एक स्थान में वायु नौका बन रही है तो दूसरे स्थान में जल-नौका तैयार हो रही हैं। कहीं जड़ी-बूटी की खोज की जा रही है, कहीं धातु और पत्थर पर मस्तिष्क लड़ाए जा रहे हैं। इस प्रकार जगत् की कोई विद्या नहीं जिसके विद्वान् और विद्यार्थी उस आश्रम में उपस्थित न हों।

राम—मेरा विचार भी वही है जिसका चित्र महर्षिजी के आश्रम के सम्बन्ध में आपने दर्शाया है।

सुतीक्ष्ण—वनराज को अधिकार है कि दण्डकारण्य के सारे आश्रमों को गुरुदेव के आश्रम के नमूने पर ले आएँ। आशा है कि किसी भी आश्रम का आचार्य ऐसा नहीं होगा जो दण्डकराज की आज्ञा को नत मस्तक होकर न सुने।

राम—यह तो आपको ज्ञात हो ही गया होगा कि विराध राक्षस अब इस जगत् में नहीं रहा और उसके बचे खुचे साथी उसे ढूंढ़ने में सफल नहीं होंगे।

सुतीक्ष्ण—कैसे ?

राम—वह मनों मिट्टी के भार के नीचे मीठी नींद सो रहा है।

सुतीक्ष्ण—दण्डकवासियों के सिर से एक बला टल गई !

राम—आपकी कृपा से अन्य बलाएँ भी इसी भाँति टल जाएँगी।

सुतीक्ष्ण—बोलो "वनराज राम की जय।"

अगस्त्य आश्रम

दस वर्ष बीत गये। वह दस वर्ष जिनमें कोई विशेष घटना घटित नहीं हुई। जिनमें किसी बलवान शत्रु से सामना नहीं हुआ, परन्तु जिन में सारे दण्डकारण्य को एक विस्तृत राज्य के रूप में एक ऐसे सूत्र में पिरोया गया जिसकी तारें किसी को दृष्टिगोचर नहीं हो सकती थीं, परन्तु जिसके अंश समय पड़ने पर इस ब्रह्माण्ड में चलते हुए सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रों की भाँति एक दूसरे से संयुक्त थे। हाँ! दस वर्ष व्यतीत हो गये और आज हम राम, लक्ष्मण और सीता को भारत के महान् इञ्जीनियर और आचार्य अगस्त्यजी के आश्रम में उनसे वार्तालाप करते हुए पाते हैं।

अगस्त्य— कहो रामजी! आपके वन के आश्रमों में क्या कुछ हो रहा है?

राम—भगवान की कृपा से दण्डकवन के सब आश्रम देश में से अविद्या नाश के लिये ग्रह और नक्षत्रों के समान कार्य कर रहे हैं। अविद्या के नाश के साथ ही वह आश्रमवासियों के हृदयों से भय को निर्वासित करने में सफल हुए हैं, और लोग अब राक्षसों से नहीं डरते; जैसे किसी समय भयभीत हुआ करते

थे । इससे पूर्व उन्हें यह भय रहता था कि राक्षस लोग भारतवासियों को खा जाते हैं, वह मनुष्यभक्षी हैं । यह सत्य हो या नहीं, परन्तु स्वयं राक्षस लोगों ने ऐसा प्रचार कर रखा था। पर अब भगवान् की कृपा से राक्षस लोगों को स्वयं ही यह भय हो रहा है कि यदि वह भारतवासियों के निकट जायेंगे तो उनका जीवित बच निकलना असम्भव हो जायेगा । दण्डक के आश्रमों में अनेक प्रकार की विद्याओं की शिक्षा दी जाती है । पुरातन शिक्षा प्रणाली परिवर्तित कर दी गई है, और अब यह यत्न नहीं किया जाता कि एक ही आश्रम सब प्रकार की विद्यायें सिखाए । बल्कि प्रत्येक आश्रम ने अपना लक्ष्य निश्चित कर लिया है । इसके अतिरिक्त सभी आश्रमों में उन उन विद्याओं के सम्बन्ध में, जो वहाँ सिखाई जाती हैं, स्नातकों के लिये अनुसन्धान विभाग खोल दिये गये हैं।परिणाम यह है कि आज हम लोगों ने पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, आदि के सम्बन्ध में अनेक गुप्त रहस्य जान लिये हैं । आज उन आश्रमों में विद्यार्थियों को निडर होकर जल में मछलियों की भाँति तैरने, वायु में पक्षियों की भाँति उड़ने और पृथ्वी में वन्य पशुओं की भाँति घुसने के गुप्त रहस्य समझ में आगये हैं । हम आशा करते हैं कि अल्पकाल में ही हम जल, आकाश और पृथ्वी तीनों लोकों में सुगमता से विचरने के योग्य हो जायेंगे। हमारी इन बातों का कुछ ज्ञान राक्षस लोगों को हो गया है और उन्होंने हमारे इस यज्ञ को विध्वंस करने का यत्न किया है, परन्तु हमारे आश्रम उनके इन यत्नों को निरर्थक करने में

सफल होगये हैं। हमने प्रत्येक आश्रम का अपना-अपना चक्र स्थापन कर दिया है। उस चक्र के भीतर यदि कोई शत्रु आश्रमवासियों को किसी प्रकार का दुःख दे, तो वे स्वयं उससे निपट लेते हैं। परन्तु यदि सहायता की आवश्यकता पड़े तो आकाश में एक शुभ शब्द फेंक देने से निकटवर्ती आश्रम उनकी सहायता के लिये पहुँच जाते हैं। इस भाँति शत्रु को इस बात का पता भी नहीं लगता और उनका विनाशकाल उनके निकट पहुँच जाता है। प्रत्येक आश्रम में अपने बनाये हुये अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र रखे जाते हैं। जहाँ वे आवश्यकता से अधिक हों वहाँ से दूसरे आश्रम को भेज दिये जाते हैं। इस प्रकार कार्य करने से शत्रु को किसी भी आश्रम की ओर दृष्टि करने का साहस नहीं होता। अब हम लोग भगवान् की सेवा में आये हैं क्योंकि अगस्त्य आश्रम को छोटे-छोटे आश्रमों से वही तुलना है जो सूर्य को चन्द्र और तारों से।

अगस्त्य—(राम और लक्ष्मण की पीठ ठोंकते हुए) चिरंजीव रहो बेटा ! तुमसे यही आशा थी। कार्य तो पहले भी हो रहा था, परन्तु तुम दोनों के अथक परिश्रमों का परिणाम अति सुन्दर हुआ है। हमारे आश्रम में भी आप देखेंगे कि एक भाग को "ब्रह्म विभाग" कहा जाता है उस भाग में हम "ब्रह्म" की उपासना करते हैं। "उपासना" का अर्थ आपको बताने की आवश्यकता नहीं, "समीप बैठना है।" उस विभाग में जब हम जाते हैं तो स्वयं को ब्रह्म के समीप बैठा समझ कर यह जानने का यत्न करते हैं

कि ब्रह्मा ने जगत् की रचना किस प्रकार की ? आपको ज्ञात है कि यह समझना सुगम नहीं, परन्तु रात दिन के यत्न के पश्चात्, वर्षों ब्रह्माजी के निकट बैठने के कारण, हमें इसका कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ है। (हँस कर) शायद हम अल्प काल में छोटे ब्रह्मा बन जायेंगे। इसी प्रकार "विष्णु विभाग" में यह अनुसन्धान किया जा रहा है कि जगत् की पालना किस प्रकार हो रही है और किस प्रकार की जाये ? "शिव" विभाग में मृत्यु के गुप्त रहस्यों को समझने और उनसे लाभ उठाने का यत्न किया जा रहा है, और यह उसीका फल है कि एक ओर तो हमारे आचार्य आयुर्वेद के बड़े २ ग्रंथ रचकर प्रजा की आयु को बढ़ाने में सफल हुए हैं, दूसरी ओर नये २ अस्त्र और शस्त्रों की रचना से मृत्यु को निकट लाने के कारण भी हो गये हैं। "गरुड़ विभाग" में वायु में पक्षियों की भाँति उड़ने का यत्न किया जाता है। हमने ऐसे उड़ने वालों के लिये कई उपाधियाँ स्थापित कर दी हैं। यदि कोई बिना किसी बड़े भारी यत्न के आकाश में बहुत ऊँचा उड़ सके तो उसे "गरुड़" की उपाधि दी जाती है। उससे छोटे दरजे वालों को "गृध्र" कहा जाता है इत्यादि इत्यादि।

"सूर्य विभाग" में अग्नि के गुण जानने का यत्न किया जाता है। तुम्हें ज्ञान है वेद के अग्नि सूक्त में स्वयं भगवान् ने अग्नि में कितने गुण बताये हैं। हमने उन्हें साक्षात् करने का यत्न किया है, और आज हम लोग इस वस्तु को गृह कार्यों के

अतिरिक्त देश और जगत् की रक्षा के कार्यों में लगाने के योग्य हो गये हैं। आश्रम में नाना प्रकार के अग्नि अस्त्र बन चुके हैं, जो क्षण भर में शत्रु की भारी सेना को राख का ढेर बना सकते हैं। इसी प्रकार कई प्रकार के यंत्र बनकर तैयार हो गये हैं जो प्रजा के सुख को बढ़ा सकते हैं। मानो जीवन के एक २ विभाग और प्रकृति के एक २ परमाणु के सम्बन्ध में अनुसन्धान की प्रथा डाल दी गई है। इस भाँति प्रकृति माता को विवश किया जा रहा है कि वह अपनी गुप्त कार्यवाही का हमें पता दे। राक्षस लोगों ने इसमें भी बाधा डालने का प्रयत्न किया था, पर उन्हें थोड़े समय में ही ज्ञात हो गया कि उनकी चालें सफल नहीं हो सकतीं। इस कारण वह हमारे निकट आने में कतराने लगे हैं। इसलिए दक्षिण दिशा जिसे किसी समय में "प्रेतों और पितरों" की दिशा कहा जाता था, जिसकी ओर आते हुए लोग समझते थे कि मृत्यु के मुख में जारहे हैं, अब जीवित लोगों की दिशा बन गई है। आज आर्यवर्त से लोग बिना किसी भय के इस ओर आने लग गये हैं।

इस समय हमारा आश्रम, जहाँ तक अपना विचार है, भारत में सबसे बड़ा आश्रम है। इसमें विद्यार्थियों और उन विद्याओं की गणना जो सिखाई जाती हैं, सब आश्रमों से अधिक हैं। देश २ के राजा लोग इसकी आवश्यकताओं को अपने सम्मुख रखते हैं और हमारी अपनी शिक्षा प्रणाली भी कुछ ऐसी है कि शिक्षा का व्यय पूरा हो ही जाता है। इस प्रकार हमें किसी से

माँगने की आवश्यकता नहीं होती।

राम—यदि भगवान् आज्ञा देंगे तो मैं आश्रम के प्रत्येक भाग को देखूंगा।

अगस्त्य—(सीता से) पुत्री ! यदि तुम ऋषि-पत्नी से वार्तालाप करना चाहो तो लोपामुद्राजी तुम्हें बता सकेंगी कि वन और जङ्गलों में बड़े २ नगरों से दूर रहकर, हम लोग जगत के उपकार के लिये क्या कुछ कर सकते हैं।

सीता—भगवान् की कृपा से मैं माताजी के दर्शन करके अपने आपको कृत्य कृत्य समझूंगी............

❀ ❀ ❀

कई दिन बीत गये। राम, लक्ष्मण और सीता ने अगस्त्य-आश्रम की जी भर कर सैर कर ली, उसके एक २ भाग को भली प्रकार देखा, और उन्हें उन्हें ज्ञात हो गया कि किस प्रकार एक अकेला ऋषि उस महान् कार्य को चला रहा है, जिसमें एक ओर जगत के विनाश का सामान तैयार हो रहा है, दूसरी ओर उसकी उपजाऊ शक्तियों के बढ़ाने के उपाय सोचे जा रहे हैं। एक ओर मनुष्यों को मृत्यु के घाट उतारने के लिये नये २ अस्त्र तैयार हो रहे हैं, दूसरी ओर उनकी आयु को बढ़ाने और पृथ्वी को रोगों से सुरक्षित रखने के साधन हो रहे हैं। उन्हें पता लग गया कि एक ही समय और एक ही संस्था में आय और व्यय को बराबर रखने का सामान कैसे रखा जा सकता है ?

यह देख चुकने के पश्चात् यह अनुभव करके कि उनका

अधिक समय तक यहाँ रहना आश्रम पर बोझ होगा, राम ने महर्षि अगस्त्य से कहा।

राम—भगवन्! आपका आश्रम उस बड़े आश्रम की, जो परमात्मा ने रच रखा है, छोटी सी नक़ल है। इसे देखकर यह ज्ञात होता है कि मनुष्य यदि चाहे और उद्योग करे, तो वह कुछ कर सकता है जिसे समझना सुगम नहीं। चित्त नहीं चाहता कि यहाँ से चल कर किसी और स्थान पर जाएँ, परन्तु जीवन का लक्ष्य कुछ और ही है।

अगस्त्य—(हँस कर) तुमने भारत को राक्षस हीन करने की प्रतिज्ञा की है, और राक्षस अगस्त्य आश्रम की ओर दृष्टि नहीं करते। इसलिये अच्छा होगा कि तुम गोदावरी तीर पर पंचवटी नामक स्थान में अपना आश्रम बना लो। भारत में राक्षसों की सबसे बड़ी बस्ती जनस्थान है जो समुद्र तट से लेकर गोदावरी के किनारे २ देश के अन्दर घुसती चली गई है। राक्षस लोगों की इच्छा है कि शनैः शनैः इस बस्ती को बढ़ाते २ सारे देश पर अधिकार जमा लें। इसलिये उनके राज्य की सीमा पर तुम्हें अपनी कुटी या आश्रम बनाना होगा, ताकि तुम्हें पता रहे कि वे क्या कुछ कर रहे हैं? जनस्थान में इस समय लंकापति दशग्रीव रावण की भगिनी राज्य कर रही है। उसके दो भाई खर और दूषण उसके सेनापति और मंत्री हैं। उसी खर के डर से चित्र-कूट पर रहने वाले ऋषि-मुनि वहां से भाग गये हैं। परन्तु उस स्थान में तुम्हें सावधानी से रहना होगा, क्योंकि राक्षस लोग

अपने मार्ग में किसी बाधा को पसन्द नहीं करते, और यदि कोई बाधा आ जाये तो उसे दूर करने में धर्म अधर्म की कोई परवाह नहीं करते।

राम—मैं भगवान् की कृपा का बहुत कृतज्ञ हूँ और आशा करता हूं कि समय पड़ने पर आप हम लोगों की सहायता करते रहेंगे।

अगस्त्य—निश्चय निश्चय, यदि कोई समय ऐसा आ पड़े कि हमारी आवश्यकता हो तो निस्संकोच हमें संदेश भेज देना। हम पहुंच जायेंगे।

चलने का समय आया, तो अगस्त्य जी स्वयं राम, सीता और लक्ष्मण को विदा करने आये। उस समय उन्होंने कहा।

अगस्त्य—राम जी! आप परोपकार के लिये अपने आपको जोखिम में डाले हुए हैं। हम भी अपने तरीके पर उसी कार्य को कर रहे हैं, इसलिये हम एक ही मार्ग के पथिक हैं। इस आश्रम में आने की स्मृति में यह थोड़े से नये अस्त्र-शस्त्र लेते जायें जिन्हें आश्रमवासियों ने अभी तक प्रकट नहीं किया। समय पड़ने पर तुम्हारे काम आयेंगे।

आश्रम से बाहर निकले तो एक दीर्घकाय बूढ़ा आदमी लाठी टेके खड़ा था। राम को आता देखकर उसने नमस्कार की तो उन्होंने समझा कि कोई भयानक राक्षस मार्ग रोक रहा है। पर उसने कहा—

बूढ़ा—मुझ पर सन्देह मत करो। मैं तुम्हारे पिता दशरथजी का मित्र हूं। तुम्हें देख कर उनकी मूर्ति आँखों के सामने फिर

गई। युवावस्था की बातें स्मरण हो आईं। इसलिये तुम्हें देखने को आ गया।

राम—यदि ऐसा है तो राम चरणों में नमस्कार करता है। क्या भगवान् अपना परिचय देंगे?

बूढ़ा—मेरा नाम जटायू है। मैं कश्यप ऋषि का वंशज हूं। मेरे बड़े भ्राता का नाम सम्पाति है। हम दोनों गरुड़जी के बड़े भाई अरुणजी के पुत्र हैं। आपको ज्ञात ही है कि गरुड़ जी उड़ने में सबसे बढ़े हुए हैं। हमारे पिताजी को भी यह शौक था; परन्तु जन्म से कुछ शरीर में नुक्स था इसलिये वह इस शौक को पूरा न कर सके। हम दोनों भाइयों ने चाचाजी के चरणों में बैठकर वायु में उड़ने का गुण सीखा। उसमें इतने प्रवीण हो गये कि हमें गृध्र की उपाधि मिल गई। एक बेर हम दोनों ऊँचे आकाश में इतनी दूर चढ़े कि सूर्यदेव के ताप से हमारे वायुयान तपायमान हो गये और वायु के सूक्ष्म होने से हमारे दम घुटने लगे। उस समय भ्राता सम्पाति ने मेरी रक्षा में अपनी जान लड़ानी चाही। अन्त में हम दोनों भिन्न २ स्थानों पर गिरे। तब से वायु में जाना बन्द हो गया।

राम—आपने हम लोगों पर जो प्रेम दिखाया है उसके लिये हम श्रीमान् जी के बहुत कृतज्ञ हैं।

जटायु—मुझे ज्ञात हुआ है कि आप देशसेवा की प्रतिज्ञा करके पंचवटी जा रहे हैं। यदि आप मुझे अपने निकट कोई स्थान

दे देंगे तो मैं यथा शक्ति सेवा करता रहूंगा। यदि आप या आपके निकट आने वाले लोग वायु में उड़ने की विद्या सीखना चाहेंगे तो यथाशक्ति उसे सिखाने का भी यत्न करूँगा, और नहीं तो आपके वन में अन्य कार्यों के लिये जाने के समय जानकीजी की रक्षा करता रहूंगा। मैं आप पर बोझा नहीं हूंगा।

राम—आपके प्रेम ने पिता जी की स्मृति करा दी (आँखों में आँसू डबडबाकर) हम आपको उन्हीं के स्थान पर समझेंगे।

शूर्पणखा

"तपस्वी ! महारानी जी तुम्हें स्मरण करती हैं।"

तपस्वी ने मुड़कर देखा तो एक सुन्दर युवती उसे संकेत से बुला रही थी।

तपस्वी—महारानी ! कौन महारानी ? हमें स्मरण करती हैं, क्यों ?

युवती—जनस्थान की महारानी श्रीमती शूर्पणखा जी आप को देखना चाहती हैं।

तपस्वी—हम वनवासियों को राजा महाराजाओं से क्या ?

युवती—राजस्थान की सीमा का उल्लंघन करके तुम ने इस देश में मृग का शिकार किया है। महारानी जी इसके सम्बन्ध में तुमसे कुछ पूछना चाहती हैं।

तपस्वी—यहाँ पर राजस्थान की सीमा का कोई चिन्ह नहीं। इसलिए किसी विदेशी को यह कैसे ज्ञान हो सकता है कि वह जनस्थान की सीमा को पार कर गया है ?

युवती—यह स्वयं महारानी जी से पूछ लेना। मैं इसका उत्तर क्या दे सकती हूं ?

तपस्वी के मन में भी उस स्त्री को जिसे "जन स्थान की महारानी" का नाम दिया गया था। देखने की इच्छा उत्पन्न हो

गई, इसलिये वह चुपचाप उस युवती के पीछे २ चल दिया, जो थोड़ा मार्ग चलकर फिर देख लेती थी, मानो इस बात का निश्चय कर रही है कि तपस्वी भाग तो नहीं गया। तपस्वी के कंधे पर धनुष था, पीठ के पीछे तुणीर लटक रहा था, एक ओर छोटी सी तलवार लटक रही थी, पाँव नंगे थे, शरीर पर वृक्षों की छाल के वल्कल थे। थोड़ी दूर चलकर युवती ने कहा—"क्या तुमने कभी महारानी जी को नहीं देखा ?

तपस्वी—हमने सुना ही आज है कि इस जंगल में किसी महारानी का राज्य है।

युवती—प्रतीत होता है तुम पहले इधर नहीं आए।

तपस्वी—नहीं, हमने अपनी कुटिया अभी बनाई है।

युवती—(मुस्करा कर) जभी कंधे पर धनुष उठाये फिरते हो।

तपस्वी—क्या यहाँ धनुष उठाना अपराध है ?

युवती ने कोई उत्तर न दिया और आगे को चल दी। तपस्वी उसके पीछे २ आ रहा था। थोड़ी दूर चल कर सामने सघन वृक्षों की एक पंक्ति दृष्टिगोचर हुई, जिसे देख कर युवती ने कहा—" इस उपवन में महारानी जी के सम्मुख जाना होगा। जानते हो उन्हें नमस्कार किस भाँति करना होगा ?"

तपस्वी—(मुस्करा कर) मैं कभी किसी महारानी के सम्मुख नहीं गया इसलिए कुछ नहीं जानता। आप सिखा दें।

युवती—देखो महारानी जी के सामने जाकर, दोनों हाथ बांध कर और शिर झुकाकर प्रणाम करना होगा।

तपस्वी—बहुत अच्छा गुरू जी (दोनों हाथ जोड़कर और शीश झुकाकर) क्या ऐसे ?

युवती—हाँ ऐसे ही। तुम बहुत अच्छे शिष्य हो।

वह उपवन के भीतर प्रवेश कर चुके थे, जहाँ पर महारानी शूर्पणखा अपनी सखी सहेलियों के साथ प्रकृति के दृश्य देख रही थीं। सामने पर्वत था, जिस पर से कई स्थानों से झरनों का जल कल कल करता हुआ नीचे बहने वाली गोदावरी में चला जा रहा था। दूसरी ओर दण्डक का विस्तृत आरण्य मीलों तक चला गया था। तीसरी ओर जनस्थान की नई बस्ती थी, जिसमें राक्षस लोगों ने नाना प्रकार के सुन्दर महल, अटारियाँ खड़ी की थीं, राजमार्ग बनाए थे, उद्यान लगाए थे, नालियाँ खोदी थीं। इस प्रकार उसे सभ्यता की समस्त वस्तुओं से सजाया था।

महारानी इस दृश्य को देख कर अपने आपको भूल गई थी, जब युवती ने आगे बढ़कर नमस्कार करते हुए कहा—

युवती—महारानी जी ! अपराधी उपस्थित है।

महारानी ने फिर कर देखा तो एक नवयुवक कंधे पर धनुष डाले उसे नमस्कार कर रहा था।

महारानी ने उसे शिर से पाँव तक घूर कर देखा, और उसके शरीर में कपकपी सी पैदा हो गई, जिसे सम्भाल कर उसने कहा—

महारानी—क्या तुम तपस्वी हो ?

तपस्वी—हाँ महारानी ! संसार हमें ऐसा ही कहता है।

महारानी—तपस्वी होकर यह धनुष कंधे पर और तलवार कमर में बाँधने का अभिप्राय क्या है ?

तपस्वी—आत्मरक्षा पाप नहीं।

महारानी—ठीक कहा। पर हिंसा पाप है यह भी मानते हो या नहीं ?

तपस्वी—मानता भी हूं, नहीं भी मानता।

महारानी—यह खूब कही, हिंसा पाप भी है और पुण्य भी है।

तपस्वी—धर्म की गति बहुत गूढ़ है। एक ही बात एक समय में पाप होती है, दूसरे में पुण्य हो जाती है। पर क्या मैं प्रश्न कर सकता हूं कि मुझे महारानी जी ने यहाँ क्यों बुलाया है ?

महारानी—तुमने हमारे राज्य में आकर हमारे मृग पर बाण छोड़ा है।

तपस्वी—इस वन में मुझे कोई ऐसा चिन्ह दीख नहीं पड़ता जो यह बताए कि दण्डक की सीमा यहाँ पर अन्त होती है और जनस्थान की सीमा इस स्थान से आरम्भ होती है। इसलिये यदि अनजाने से भूल हुई हो तो क्षमा चाहता हूं।

महारानी—प्रतीत होता है तुम इस देश में नवआगुन्तक हो ?

तपस्वी—महारानी जी का विचार ठीक है।

महारानी—तुम्हारा आश्रम किस स्थान पर है ?

तपस्वी—इसी नदी के तट पर थोड़ी ही दूर पर्वत के नीचे

वृक्षों का एक कुञ्ज है जिसमें हम लोगों ने अपनी कुटिया बनाई है।

महारानी—तो तुम अकेले नहीं, तुम्हारे साथी और भी हैं ?

तपस्वी—मेरे साथ एक मेरा कनिष्ठ भ्राता और दूसरी मेरी धर्मपत्नी है। हम तीन हैं।

महारानी—तुम्हारा नाम ?

तपस्वी—मुझे लोग राम कहकर पुकारते हैं, मेरे छोटे भ्राता को लक्ष्मण कह कर, मेरी धर्मपत्नी का नाम सीता है।

महारानी—तो तुम गृहस्थी तपस्वी हो ? दण्डक वन में गृहस्थी तपस्वी ! यह एक नई बात है ! हम किसी समय तुम्हारी कुटिया को देखेंगे और तुम्हारी पत्नी को भी मिलेंगे। इस समय हम तुम्हारा अपराध क्षमा करते हैं, जो अनजाने में हुआ। परन्तु तुम्हें याद रहना चाहिये कि राक्षस लोग तपस्वियों को हथियार पहने देखना पसन्द नहीं करते। अच्छा अब तुम जा सकते हो।

❀ ❀ ❀

तपस्वी चला गया, पर महारानी के लिए सोचने की सामग्री छोड़ गया। "गृहस्थी तपस्वी" यह दो शब्द बार २ उसके सामने आते थे। तपस्वी का रूप साधारण तपस्वियों का नहीं था। उसका सुन्दर मुख, विशाल मस्तक, दीर्घ बाहू, साधारण साधुओं के नहीं थे। तो वह कौन था ? उसके कन्धे पर धनुष था, कमर के पीछे तुणीर लटक रहा था, वह भिखमंगा प्रतीत नहीं होता था, महारानी से उसकी जो वार्तालाप हुई थी उसमें उसने यह स्पष्ट नहीं होने

दिया था कि वह महारानी को देखकर विस्मित या डर गया है। उसके मुख से अपने किए पर पश्चात्ताप भी मालूम नहीं होता था। तो फिर, हाँ तो फिर, वह कौन था ?

यह सोचते २ महारानी जनस्थान को वापिस लौटी, तो सखी सहेलियों ने अनुभव किया कि उसका मुख कमल अत्यन्त गम्भीर हो रहा है। राजधानी में जाते ही पुलिस के उच्च अधिकारी को बुलाया गया, वह भागा २ आया तो छूटते ही महारानी ने कहा:—

महारानी—क्या आपको ज्ञात है कि जनस्थान की सीमा के निकट एक नई कुटिया बनी है ?

पुलिस अधिकारी—महारानीजी की जय हो, अभी २ मालूम हुआ है कि दो नए तपस्वी एक स्त्री के साथ इस जंगल में आए हैं।

महारानी—वह कौन हैं ?

अधिकारी—यह ठीक २ तो ज्ञात नहीं हो सका, पर विचार है कि वो उत्तर भारत के राजकुमार हैं जो सौतेली माता के अत्याचार के कारण इधर आए हैं।

महारानी—राजकुमार ?

अधिकारी—गुप्तचर कहते हैं कि वे उत्तर कौशल के राजा दशरथ के पुत्र हैं और कई वर्षों से दण्डक वन को अपना गृह बनाए हैं। कई वर्ष तक इधर उधर घूम कर अब पञ्चवटी में पहुँचे हैं।

महारानी—यदि तुम्हारे गुप्तचर ठीक कहते हैं तो तुम्हें उन पर कड़ी दृष्टि रखने की आवश्यकता है । राजकुमार जंगलों में अकारण ही नहीं रहा करते । ऐसा न हो कि वह हमारे राज्य के लिए भय का कारण हों ।

अधिकारी—महारानी की जय हो ! सेवक मामले को भली प्रकार समझता है ।

महारानी—उनके साथ एक स्त्री भी है । हम स्वयं उससे मिलकर यह जानने का यत्न करेंगी कि उनका मनोभाव क्या है ?

अधिकारी—महारानी जी का विचार बहुत ठीक है । स्त्रियों से जो बातें मालूम हो सकती हैं वह पुरुषों से नहीं हो सकतीं ।

दूसरे दिन महारानी सवेरे निन्द्रा से जागी । वह निन्द्रा जिसमें नेत्रों के पलक परस्पर न मिल सके थे । वह रात्रि भर सोचती रही थी और उसका केन्द्र तपस्वी की मूर्ति थी, जो एक क्षण के लिए भी उसकी आँखों से ओझल न हुई थी । "वह तपस्वी साधारण तपस्वी नहीं, एक राजकुमार है ।" इस विचार ने उस मूर्ति में एक नया रंग भर दिया था । जब २ वह उसकी बाबत सोचती थी, नये विचार सामने आते थे । अन्त में वह पलंग से उठी इस विचार के साथ कि आज उस तपस्वी के सम्बन्ध में अधिक बातें ज्ञात करूँगी । शयनागार से बाहर निकली तो उसकी सहेली प्रेमलता सामने से आ रही थी जो उसे देख कर मुस्कराती हुई बोली—

प्रेमलता—आज क्या बात है, महारानी जी का चेहरा उतरा हुआ है ?

महारानी—नहीं तो अभी २ जागी हूँ पर सच्ची बात तो यह है कि रात निन्द्रा कम ही आई है।

प्रेमलता—किसके ध्यान ने निद्रा उड़ा दी?

महारानी—(मुस्कराते हुए) तुम बहुत नटखट हो!

प्रेमलता—पर बूझती तो दिल की हू। हाँ तो फिर?

महारानी—कल एक तपस्वी पकड़ा हुआ आया था, तुमने देखा था न?

प्रेमलता—(हँसते हुए) जिसकी सूरत ने मुझे सोने नही दिया।

महारानी—(सहेली के गले में बाहें डाल कर) तो क्या मेरी सौत बनने की सूझी है?

प्रेमलता—(हँसते हुए पीछे हट कर और महारानी के नेत्रों से नेत्र मिला कर) सौत! मैं महारानी की सौत कैसे बनूँगी? क्या महारानी के महाराज फिर से जीवित हो गये?

महारानी—(धीमे स्वर से) मृत भी कभी पुनर्जीवित हुए हैं पर·········

प्रेमलता—तो कुछ और विचार किया है?

महारानी—वह तपस्वी············उसकी मूर्ति आँखों से ओझल नहीं होती·········

प्रेमलता—तो क्या उसे इष्ट देव बना रही हो?

महारानी—कह नहीं सकती, पर कल से वह मुझ पर कुछ जादू कर गया है।

प्रेमलता महारानी किस विचार में हो अपने कुल का ध्यान करो। हम राक्षस लोगों का इन आर्य लोगों से क्या वास्ता ?

महारानी—यही तो सोच रही हूँ।

प्रेमलता—आपको यह तो मालूम ही है कि उसकी पत्नी साथ है।

महारानी—क्या वह मार्ग से हटाई नहीं जा सकती ?

प्रेमलता—यह दूसरा पाप होगा।

महारानी—पाप ?.........हाँ शायद......परन्तु...... खैर देखा जायगा........ मेरी इच्छा है कि उस स्त्री को देखूँ ....(बात का विषय और बात चीत का रुख बदल कर) हमारे राज्य में यह लोग नये आये हैं। हमें उनके सम्बन्ध में पूरी २ जानकारी चाहिए और यथा शक्ति हम उसे स्वयं प्राप्त करेंगे। चलोगी हमारे साथ ?

प्रेमलता—जो आज्ञा।

महारानी—अच्छा ! तो आज दोपहर को हमारी सवारी उस ओर को जायगी जिधर तपस्वियों की कुटिया है। तुम हमारे साथ होगी। प्रबन्ध करो।

❀ ❀ ❀

"महाराज जी ! आज एक अद्‌भुत घटना हुई।"

राम—क्या ?

सीता—आपके जाने के पश्चात् अपनी कुटिया के द्वार पर एक सवारी आकर ठहरी। उसमें सब की सब स्त्रियाँ थी। उनमें से एक ने भीतर आकर कहा, "तपस्विनी! महारानी शूर्पणखा आप के दर्शन करना चाहती हैं। आज्ञा हो तो भीतर आ जाँय।" मैं कैसे मना कर सकती थी। इस पर एक अति सुन्दर युवती भीतर आई। उसके साथवाली स्त्री ने उस समय मुझ से कहा, "यह महारानी जी हैं" मैंने उन्हें कुशासन बैठने के लिये दिया। वह कुछ काल तक वार्त्तालाप करती रहीं, फिर कहने लगीं, "तुम्हारे पति कल आखेट से लौट रहे थे उनसे भेंट हुई थी और उन्हीं से ज्ञात हुआ था कि तुम भी उनके साथ हो। चाहिए तो यह था कि तुम यहाँ आने पर हमसे भेंट करने आतीं, परन्तु ऐसा नहीं हुआ तो हमने कहा चलो हम ही दर्शन कर आयें।"

राम—आपने क्या उत्तर दिया?

सीता—मैं क्या कह सकती थी। केवल यही कहा कि हम वनवासी हैं, हमें इस देश के आचार व्यवहार का ज्ञान नही, इसलिये अनजाने में यदि भूल हो गई तो क्षमा चाहती हूँ।

राम—क्यों पिताजी! आपका इसमें क्या विचार है?

जटायु की ओर फिर कर राम जी ने कहा।

जटायु—जहां तक मैं समझ सका हूँ शूर्पणखा लंकापति राक्षस-राज महाराज दशग्रीव रावण की भगिनी है।

राम—तो उसके यहां आने का प्रयोजन क्या था?

जटायु—इसमें कोई रहस्य नहीं। आप उसके राज्य की सीमा

पर आकर रहे हैं, इसलिये वह आप लोगों को देखने के लिये आ गई परन्तु............

राम—क्या ?

जटायु—आपको अधिक सावधान रहना होगा।

राम—आपका कथन सत्य है पर इस वन में हम कहां तक सावधान रह सकते हैं ?

सीता—एक बात स्मरण आ गई। वह जाते समय कह गई थी, "मुझे घूमने और आखेट का बहुत शौक है, किसी दिन विशेष प्रबन्ध करके आप लोगों को उसके लिये निमन्त्रण दूंगी।"

जटायु—राक्षस स्त्रियों में आजकल आखेट का शौक बढ़ रहा है।

राम—यदि ऐसा निमन्त्रण आये तो क्या करना चाहिये ?

जटायु—निमन्त्रण का निरादर करना ठीक नहीं, पर सावधानी की आवश्यकता है और वह तभी हो सकती है कि आखेट में यथाशक्ति एक दूसरे से दूर न हों। यदि ऐसा समय आये तो आपको मुझे साथ ले चलने में आपत्ति तो न होगी ?

राम—यदि आप यह कष्ट सहन कर सकें तो मुझे इसमें आपत्ति क्या ?

लक्ष्मण—कई दिन से एक ही स्थान में बैठे २ जी उकता गया है, आखेट में दौड़ धूप भी हो जायेगी, महारानी का जी भी बहल जायेगा और हमें राक्षस लोगों के आचार व्यवहार देखने का अवसर भी मिल जायेगा।

❀ ❀ ❀

तपस्वियों की कुटी का भ्रमण अब महारानी शूर्पणखा का दैनिक क्रम था। वह जब तक एक बार उधर न हो आती उसे चैन न पड़ता था। सीता को भी उससे प्रेम हो गया था और वह भी महारानी की प्रतीक्षा में उसका मार्ग निहारा करतीं। दोनों स्त्रियां जब इकट्ठी होतीं तो घण्टों बैठी अपनी २ रामकहानी कहती रहतीं। इसी वार्त्तालाप में सीता को शूर्पणखा के विवाह और उसके विधवा होने के विषय में और शूर्पणखा को राम सीता के विवाह और उनके जीवन सम्बन्धी अन्य रहस्यों का ज्ञान होगया। सीता शूर्पणखा को अपने पतिदेव के जीवन की घटनाएं सुनाती हुई आपे में नहीं रहती थीं, जिन्हें सुनती हुई शूर्पणखा कभी उकताती न थीं। इसी बीच में एक दिन अवसर पाकर शूर्पणखा ने कहा :—

शूर्पणखा—देखो तपस्विनी! हम इतने दिनों से तुम्हारे यहां आ रही हैं; पर तुमने एक बार भी हमारे यहां आने की इच्छा प्रकट नहीं की।

सीता—महारानी! आपको ज्ञात ही है हम वनवासी हैं। हमारा नगर में जाना वर्जित है।

शूर्पणखा—(ठण्डा श्वास लेकर) ठीक है, पर मैं जब यहां होती हूं तो यहां से जाने को जी नहीं चाहता। तुम लोगों ने मुझे कुछ ऐसा मोहित कर लिया है कि यही जी चाहता है कि मैं भी वनवासिनी बन जाऊं।

सीता—परमात्मा न करें आपको ऐसी आवश्यकता पड़े।

शूर्पणखा—बहिन ! तुम वन में रहती हो, पतिदेव साथ हैं, जो तुम्हारे लिये सर्वस्व न्योछावर करने को प्रस्तुत हैं। तुम क्या जानों दूसरों पर क्या बीतती है ?

सीता—(ठण्डी श्वास भर कर) आपकी बातों से बहिन उर्मिला की स्मृति हो आती है। ईश्वर जाने उसने इतने वर्ष लक्ष्मण जी के बिना कैसे व्यतीत किये होंगे ? हम लोगों के लिये बहिन और लक्ष्मण जी ने अपनी आयु ही गँवा दी है। हम किस प्रकार उनके ऋण से उऋण होंगे ?

शूर्पणखा—सत्य कहती हो बहिन ! देखो, मुझे दशग्रीव ने यह राजपाट, धन-धान्य, दिया परन्तु जीवन साथी देना उसके वश की बात न थी। जब तक सखी-सहेलियों में बैठी रहती हूँ, इधर उधर की गप्प शप्प चलती रहती है तो सब कुछ भूली रहती है, पर जब एकान्त होता है जीवन बोझ बन जाता है, और सच पूछो तो जबसे तुम लोगों को देखा है, जीवन का मूल्य ज्ञात होने लगा है······(कंठ रुंध गया)

सीता—हम आपके लिये जो कुछ कर सकते हैं करने को प्रस्तुत हैं।

शूर्पणखा—आपकी कृपा ! परन्तु बहिन, अब यह जीवन तो इसी भांति कटेगा (बात बदलकर) मैंने कल के लिये आखेट का प्रबन्ध किया है ! वाहन भेज दूंगी आप सब आइये।

सीता—वाहन ! न बहिन जी, वाहन हमें न चाहिये। हम पांव २ आप के साथ चलेंगे।

शूर्पणखा— आप वाहन नहीं चाहते तो मैं भी बिना वाहन ही चलूंगी। आप तैयार रहिये।

* * *

"तपस्वी जी क्या थक गये ?"

आखेट में एक वृक्ष के नीचे रामजी के सामने बैठते हुए महारानी शूर्पणखा ने कहा। आज वह स्त्रियों की भांति स्त्रियों के वेश में नहीं थी, बल्कि आखेट की वर्दी पहिने सैनिक वेश में थी।

"नहीं महारानी ! आखेट की दौड़ धूप में जरा आगे निकल आया, इसलिये बैठ गया कि आप लोगों की प्रतीक्षा करलूं।"

महारानी—(कुछ सोचते हुए) मैं तो आप के अंग-संग ही रही हूँ। आप से पीछे तो नहीं रही।

राम—स्वीकार करता हूँ। आप की चाल दूसरों की अपेक्षा तीव्र रही है।

महारानी—रहती क्यों न। जिसका लक्ष्य राम हो, उसकी चाल तेज हुए बिना नहीं रह सकती। राम की आकर्षण उसके पांव में तीव्रता उत्पन्न कर देती है।

राम उसका आशय न समझ सके, और वह महारानी के मुख की ओर निहारने लगे। उस समय एकाएक तीर की तेजी से उठकर महारानी ने अपनी भुजायें राम के ग्रीवा में डाल और उसके दोनों गालों पर चुम्बन देते हुए कहा "राम ! तुम्हें ज्ञात है मैंने तुम्हारे लिये कितना दुख सहा है ? तुम्हारी छवि को सामने

रखते हुए कितनी रात और दिन तुम्हारे ध्यान में बिता दिये हैं ? क्या तुम्हारे हृदय पर तनिक भी प्रभाव नहीं हुआ ?"

राम—(अपने आप को कठिनता से उसके बाहु पाश से मुक्त करके) महारानी ! यह आपने क्या कह दिया ?

शूर्पणखा—यही कि मैं तुम पर प्राण देती हूँ, और यदि तुम मुझे दुतकार दोगे तो मैं यहीं तुम्हारे चरणों में (खड्ग निकाल कर) अपने को बलि कर दूंगी।

राम—(खड्ग छीन कर) तुम्हें पर-पुरुष से ऐसा भाषण नहीं करना चाहिये।

शूर्पणखा—मैं आपको पर-पुरुष नहीं समझती। आप मेरे लिये पराये नहीं हैं।

राम—तुम्हें ज्ञात है मैं विवाहित हूँ, और विवाह की वेदी पर बैठकर ऋषि, मुनि और देवताओं के सन्मुख मैंने यह व्रत किया है कि जानकी सीता के अतिरिक्त और किसी स्त्री से प्रेम नहीं करूंगा।

शूर्पणखा—(नेत्रों में अश्रु भर कर) यह ठीक है, पर प्रेम किस के वश की बात है ?

राम—महारानी ! मैं आपको प्रेम से नहीं रोक सकता; परन्तु प्रेम को पाप की सीमा तक नहीं पहुँचना चाहिये।

शूर्पणखा—मनुष्य शरीर धारण करके यदि प्रेम दो शरीरों को मिलाने में सफल न हो तो प्रेम, प्रेम नहीं, प्रेम का स्वांग है।

राम—मन जब पाप की ओर भागने लगे तो शूरवीरों का कर्त्तव्य है कि मन की बाग कसदें।

शूर्पणखा—मैं स्त्री हूँ शूरवीर नहीं हूँ, (दौड़कर राम के चरणों में गिरते हुए) राम! महारानी होकर तुम्हारे चरणों में गिरती हूँ, मेरा अपमान न करो।

राम—(उसे धीरे से चरणों से अलग कर के) महारानी! भगवान् वह दिन न लाये जब राम किसी स्त्री का अपमान करे। परन्तु मैं प्रार्थना करता हुँ मुझे पाप की ओर न ले जाओ।

शूर्पणखा—किसी के मन को प्रसन्न करना सबसे बड़ा पुण्य है। किसी के हृदय को तोड़ना सब से बड़ा पाप।

राम—(शोक से) मैं आपके कथन को स्वीकार न कर सकूंगा।

शूर्पणखा—(हाथ जोड़ कर) राम! तपस्वी! मेरी नाक न काटो! मैंने सखीसहेलियों के सन्मुख डींग मारी है, कि मेरा प्रेम अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहेगा। मेरे प्रेम का निरादर न करो।

राम—महारानी! मैं कह चुका हूँ मैं प्रेम का निरादर नहीं करता। परन्तु फिर कहता हूं इस प्रेम को ऊपर उठने का साधन बनाओ, नीचे गिरने का नहीं। यदि यह प्रेम शारीरिक भोग में फँस गया तो तुम्हें और मुझे दोनों को नरक में ले जायेगा और मैं नरक में जाना नहीं चाहता।

शूर्पणखा—राम! तुम्हें ज्ञात है मैं लंकापति रावण की भगिनी

हूं, जिसके भय से मनुष्य तो मनुष्य देवता भी कांपते हैं ? मैं जनस्थान की महारानी हूं, चौदह सहस्र सेना मेरी सेवक है, मैंने कभी किसी के सन्मुख शीश नहीं झुकाया, पर आज मेरा सिर तुम्हारे सन्मुख झुक रहा है।

राम—मैं कृतज्ञ हूं परन्तु............

शूर्पणखा—कहो तुम्हारे पास मेरे प्रेम का क्या उत्तर है, हाँ या नहीं ?

राम—शोक है मेरे पास तुम्हारे लिये "हां" नहीं है।

शूर्पणखा—तो तुम्हारा यही निर्णय है ?

राम—यह मेरा निर्णय नहीं, धर्म का निर्णय है, और राम का शीश धर्म के सन्मुख सदैव से झुकता आया है।

शूर्पणखा—(तन कर) फिर एक बार सोच लो ! धर्म कभी-कभी जान का लागू हो जाता है।

राम—धर्म कभी जान का लागू नहीं होता।

शूर्पणखा—तुम एक स्त्री के प्रेम को दुतकार कर उसके प्रतिकार को ललकार रहे हो।

राम—मैंने धर्म की रक्षा की है, धर्म मेरी रक्षा करेगा। धर्मो रक्षति रक्षितः

शूर्पणखा—राम ! तुमने सखी-सहेलियों में मेरी नाक काट दी ! तुमने मुझे कुरूपा कर दिया !! तुमने मेरे प्रेम को पाओं में मसल डाला !!! अब मैं देखूंगी धर्म तुम्हें किस प्रकार मेरे प्रतिशोध से बचाता है ? जिस भांति तुमने मेरी नाक काटी है यदि

मैंने भी उसी भांति तुम्हारी नाक न काटी तो मुझे शूर्पणखा न कहना ।

राम—भगवान् तुम्हारा भला करे ।

शूर्पणखा—मैं इसी समय तुम्हारे समस्त परिवार को नष्ट कर सकती हूं, पर ऐसा नहीं करूंगी, क्योंकि मैंने स्वयं तुम्हें निमन्त्रित किया है । पर स्मरण रक्खो आज के पश्चात् हमारा तुम्हारा सम्बन्ध मित्रों और सखीसहेलियों का नहीं होगा बल्कि.........

❀ ❀ ❀

दिन भर आखेट की दौड़ धूप में सीता बहुत थक गई थी, इसलिये भोजन के कुछ काल उपरान्त सो गई । पर राम को आज निद्रा नहीं थी । वह दिन भर की घटनाओं को दृष्टिगोचर करके उन पर विचार कर रहे थे । सीता के सो जाने पर वह अपने स्थान से उठे और लक्ष्मण को शैय्या से उठा कर दूर ले जाते हुए बोले—

राम—सीताजी सो गई हैं यह अच्छा हुआ । वे बहुत थक गई थीं इसलिये उन्हें विश्राम की आवश्यकता थी; परन्तु इस समय मुझे तुमसे एक बात कहनी है ।

लक्ष्मण—आज्ञा !

राम—प्रतीत होता है कि वह समय आ गया है जिसकी हमें इतने काल से प्रतीक्षा थी । हमें शीघ्रातिशीघ्र जनस्थानवासियों की ओर से आक्रमण के लिये तैयार होना होगा ।

लक्ष्मण—कैसे ज्ञात हुआ ?

राम—आखेट में महारानी शूर्पणखा के मुख से कुछ ऐसी बातें निकल गईं, जिनसे यह विश्वास हो रहा है कि हमें अपनी रक्षा का प्रबन्ध करना होगा।

लक्ष्मण—क्या बात थी ?

राम—तुम्हें ज्ञात है शूर्पणखा विधवा है। उसका पति युद्ध में उसके भ्राता दशग्रीव रावण के हाथों मारा गया था। वह अभी युवा है, और राक्षस स्त्रियां कामवासना में आर्य स्त्रियों से बढ़कर हैं। शूर्पणखा ने मुझे अपनी कामवासनापूर्ति का साधन बनाना चाहा, मैंने उसे दुतकार दिया और उसने बदले की धमकी दी। तुम जानते हो स्त्री के प्यार से उसका प्रतिकार सदैव शक्तिशाली हुआ करता है। इसलिये हमें उसके लिए कटिबद्ध होना आवश्यक है।

लक्ष्मण—आप निश्चिन्त रहें, मेरे जीवित रहते किसी राक्षस का साहस नहीं कि आपकी ओर नेत्र उठाकर देख सके।

राम—इसी आशय से मैं तुम्हें इधर लाया हूं। हमें आज रात सो कर व्यतीत करना नहीं; बल्कि अपने को सुरक्षित करने के लिये कार्य करना है।

❀ ❀ ❀

दिन निकला तो सीता यह देखकर विस्मित हो गई कि कुटी एक अच्छे खासे किले,के रूप में परिवर्तित होगई है और द्वार से कुछ दूरी पर नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र किसी अज्ञात शत्रु को

यमलोक भेजने के लिये तैयार खड़े हैं। यह देख कर वह विस्मय से आँखें मल रही थी कि राम ने कहाः—

राम— प्रिये! विश्राम कर चुकीं! अब उठो और लक्ष्मणजी के साथ उस सामने वाले पर्वत की कन्दरा में चली जाओ।

सीता —पर्वत कन्दरा में? बात क्या हुई है?

राम—बात कोई नहीं। पर आज तुम्हारा कुटी में रहना ठीक नहीं।

सीता—तो भी? कुछ कहिये तो।

राम—(मुस्करा कर) तुम्हारे जागने से पहले चौदह शत्रु यमलोक पहुंच चुके हैं, और शायद चौदह सहस्र और जाने वाले हैं।

सीता—कैसे?

राम—जनस्थानवासियों ने हम लोगों को इस संसार से उठा देने का निश्चय कर लिया है!

सीता—जनस्थानवासियों ने? क्या महारानी शूर्पणखा ने उन्हें नहीं रोका?

राम—जनस्थानवासी तो शायद ऐसा करते कुछ विचारते, पर महारानी शूर्पणखा ही इस विपद् का कारण हो तो उसे कौन रोक सकता है?

सीता—महारानी शूर्पणखा इसका कारण है! मैं नहीं समझी।

राम—इस समय मेरा कथन मान कर पर्वत-कन्दरा में चली

जाओ। लक्ष्मण वहाँ पर सब कुछ बता देंगे। समय अमूल्य है। (दूसरी ओर मुड़कर) हाँ पिताजी क्या समाचार है ?

यह शब्द वृद्ध महापुरुष जटायू को कहे गये थे जिसने उन्हें सुनकर कहा:—

जटायु—शत्रु की एक बड़ी सेना आ रही है, जनस्थान के कई सेनापति उसका नेतृत्व कर रहे हैं।

राम—आने दो, वे हमें जागृति पायेंगे।

जटायु—दण्डक के ऋषि आश्रमों में यह समाचार पहुँचा दिया गया है और उधर से अपने आदमी आ रहे होंगे।

राम—अच्छा किया, परन्तु मेरी इच्छा है कि यह युद्ध अकेला ही लड़ूं, क्योंकि अभी वह समय नहीं आया कि जनस्थान वासियों को दण्डकवासियों का स्पष्टतया शत्रु बनाया जा सके।

जटायु—आप अकेले युद्ध लड़ेंगे ?

राम—(हँस कर) आप लोग और अन्य सब योद्धा पर्वत की ओर रहें, जहाँ पर शत्रु की दृष्टि न पड़ सके; परन्तु यदि यह प्रतीत करें कि मुझे युद्ध में हार हो रही है या मैं स्वयं आपको सहायता के लिए पुकारूँ तो आगे आ जायँ। तो भी यथाशक्ति वहीं से ही तमाशा देखें। परमात्मा की कृपा हुई तो यह युद्ध एक नाटक से बढ़कर नहीं होगा।

जटायु—"जो आज्ञा" कहकर पर्वत की ओट में चले गये। उस शून्य जंगल में अब अकेले राम शत्रु की प्रतीक्षा करते हुए खड़े थे। उनके पिछली ओर पर्वत की ऊँची दीवार थी, दूसरी

ओर गोदावरी का जल ठाठें मारता हुआ समुद्र की ओर बढ़ा चला जा रहा था इसलिये दो दिशायें सुरक्षित थीं। बाकी दो दिशाओं में अगस्त्य आश्रम से आये हुए अस्त्र यमराज की भान्ति मुँह खोले शत्रु की प्रतीक्षा कर रहे थे, कि एकाएक वायुमण्डल में कोलाहल का शब्द हुआ जो इस निर्जन वन में एक भयानक सिंह की दहाड़ से अधिक भीषण था। राम ने दत्तचित्त होकर उसे सुना और फिर धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ा कर उसे चक्कर दिया। कोलाहल और निकट आ गया और साथ ही उन्होंने पैंतरा बदला। अब वह शान्ति से शत्रु की राह ताक रहे थे।

"तपस्वी! यदि मरना नहीं चाहता, तो हाथयार छोड़ दे" शत्रु की सेना से आवाज़ आई।

"आगे न बढ़ो—आगे तुम्हारी मृत्यु खड़ी है" राम ने उत्तर दिया।

सहस्रों धनुषों से बाणों की बोछाड़ आई, जिन्हें राम ने स्फुर्ति से काट दिया। दूसरी बाढ़ फिर आई, पर अब राम के धनुष के साथ सामने वाली पंक्ति में एक अस्त्र चल रहा था और उसमें से निकले हुए सहस्रों बाण, तलवार और बर्छे शत्रु की सेना पर गिर कर उसे काट रहे थे।

रणक्षेत्र साफ हो गया। शत्रु की सेना के बचे खुचे सेनानी सिर पर पांव रख कर भागे तो ऐसा प्रतीत होता था कि सहस्त्रों अस्त्र उनका पीछा कर रहे हैं।

क्षेत्र खाली देख कर लक्ष्मण, जटायु, और सीता पर्वत-

कन्दरा से बाहर आए। परन्तु राम ने संकेत से उन्हें रोक दिया। उनका विचार था कि शत्रु का अन्त नहीं हुआ और नीतिमान कहते हैं कि घाव खाकर सिंह अधिक भयानक हो जाता है।

उनका विचार ठीक था, क्योंकि अल्पकाल में ही सेनापति दूषण पहले से अधिक सेना लेकर आ पहुंचा। पर नायक सेना अभी पहुँची ही थी कि उसका भी वही हाल हुआ जो पहली सेना का हुआ था। चारों ओर से शस्त्रों की वर्षा ने मार्ग में ही उसे समाप्त कर दिया। यह देखकर सेनापति ने अपनी सेना से कहा :—

दूषण— शूरवीरो देखते क्या हो ? शत्रु अकेला निस्सहाय है, उसका भाई पहले युद्ध में मर चुका है। इतने शूरवीरों के लिये अकेले शत्रु की बोटी २ नोच लेना क्या कठिन है ?

ये शब्द अभी उसके मुख से निकले ही थे कि बाण, भाले, बर्छे और अन्य शस्त्रों की भारी बोछाड़ सामने से आती हुई दीख पड़ी। उससे बचने को राक्षस सेना के सेनानी पीछे हटे, परन्तु शस्त्र इतनी तेजी और इतनी भारी गणना में चारों ओर गिर रहे थे कि उनसे बचना असम्भव था। उस समय दूषण की आवाज फिर गूंजी—"एक मनुष्य से अनेक राक्षस भयभीत हो जायं, यह क्या तमाशा है ?"

उत्तर में किसी अज्ञात मुख से निकला, "जादू ! तलिस्म !! करामात !!!"

"जादू हो या करामात, इसे तोड़ दिया जाना चाहिए" यह कह कर दूषण ने घोड़े को ऐड़ी लगाई और साथ ही सहस्रों अश्वारोही घोड़ों की टापों से पृथ्वी को गुंजाते हुए आगे बढ़े। पर शत्रु यद्यपि अकेला था तो भी उस समय सहस्रों मनुष्यों के रूप में दिखाई दे रहा था। एक ही समय में वह यहाँ वहाँ इधर उधर सब ओर उपस्थित हो कर सैंकड़ों मैशीनों अस्त्रों को एक समय में चक्कर देता हुआ प्रतीत होता था। इसलिये घोड़े अभी थोड़े ही आगे बढ़े थे कि घायल होकर गिरे। साथ ही अश्वारोहियों के शरीर टुकड़े २ होकर चारों ओर बिखर गये।

राक्षस सेना के लिये यह युद्ध बिलकुल नये प्रकार का था। वे धनुष, बाण, तलवार आदि साधारण शस्त्रों से युद्ध करने के अभ्यस्त थे, पर आज उनमें से कोई भी शस्त्र काम नहीं देता था। शत्रु के अस्त्र विद्युत गति से मशीनों से निकल कर क्षेत्र साफ कर रहे थे।

उस समय दूषण ने फिर पुकार कर कहा "एक दम हल्ला करके शत्रु को पकड़ लो।" पर यह कह लेना सुगम था, इसे कार्य रूपमें परिवर्तित करना असम्भव। अभी उसके शब्द आकाशमण्डल में पहुँचे भी न थे कि वह स्वयं घायल होकर गिरा। उसके गिरते ही अन्य सेनापतियों ने उसका स्थान लेने का यत्न किया, पर सेना का उत्साह भंग हो चुका था। उसे भागने से रोकना उतना ही कठिन था जितना बन्ध टूटी हुई नदी के प्रवाह को रोकना।

हर एक सेनानी का मन "जादू" और "करामात" के डर से

भयभीत हो रहा था। वह भय पग २ पर उसका मार्ग रोक रहा था। इसलिए राक्षस-आक्रमण अल्पकाल में ही पराजय के रूपमें परिवर्तित हो गया।

❀ ❀ ❀

रण से भागे हुए राक्षस सेनापतियों ने बची खुची सेना को फिर से एकत्रित किया। पर शत्रु का भय ऐसी बुरी तरह सेना के हृदय पर आच्छादित हो रहा था कि उसने तपस्वी के सामने जाने से साफ इन्कार कर दिया। यह समाचार सेनापति खर को मिला तो नई सेना लेकर रण में पहुँच गया। उस समय तक दण्डकवासियों की सेना भी कील कांटे से लैस होकर आ पहुँची थी। परन्तु राम ने उसकी सहायता से लाभ उठाने से साफ इन्कार कर दिया।

शत्रु आगे बढ़ा तो वह अस्त्र, जिसने दूषण की सेना का नाश किया था, फिर चक्कर में आया। उधर अगस्त्य आश्रम से आए हुए अस्त्रों ने इस नवीन सेना में सहस्रों स्थान खाली कर दिए। तब खर ने जो अपनी शूरवीरता के लिये सारे देश में विख्यात था अपने सेनापति त्रिशरा से कहा :—

खर—त्रिशरा! सेना को दो भागों में बाँट दो। शत्रु अकेला है और वह किसी जादू से हम लोगों का नाश कर रहा है, उसका यह जादू तोड़ना है और अभी तोड़ना है। एक ओर से तुम बोद दूसरी ओर से मैं आक्रमण करता हूँ।

नया आदेश राक्षस सेना में सब ओर घोषित हो गया और राम ने देखा कि एक नहीं, दो सेना दो दिशाओं से उस पर चढ़ी

आ रही हैं। यह देख कर उसके मुख पर मन्द मुस्कान दीख पड़ी और उसके मुख से निकला—"राक्षस लोगो! तुमने बहुत अच्छा किया।"

दूसरे ही क्षण में उसके चारों ओर के अस्त्र चक्कर में आकर चारों ओर अग्नि और हथियार फेंकने लगे। शत्रु इस बाण वर्षा को सहन न करके पीछे हटा। पर पीठ पर बाढ़ उससे भी प्रबल थी। इसलिये उसने आगे की ओर आक्रमण करके केवल जन-संख्या के आधार पर राम को विजय करने का यत्न किया। पर सफलता न हुई। क्योंकि आगे-पीछे, इधर-उधर लोहा बरस रहा था, अग्नि बरस रही थी, मृत्यु बरस रही थी। खर और त्रिशरा ने अपने रथों को चक्कर देकर आगे बढ़ाया; परन्तु सेना उत्साह-हीन हो चुकी थी वह सेनापतियों का साथ देने को उद्यत नहीं थी।

उस समय त्रिशरा ने सेनापति खर से कहा—

त्रिशरा—सेनापति! आप ठहरें, सेना का उत्साह टूट गया है पर त्रिशरा अभी जीवित है और उसके लिये अकेले शत्रु को विजय करना असम्भव नहीं है, आप ठहर कर तमाशा देखें। मैं शत्रु को द्वन्द्व युद्ध के लिये ललकारता हूं।" यह कह कर उसने सारथी को आगे बढ़ने की आज्ञा दी। घोड़ों की पीठ पर चाबुक की मार पड़ी, और वह रथ को लेकर लोहे और आग के समुद्र को पार करने के लिये आगे बढ़े। राम यह देख रहे थे और प्रथम इसके कि शत्रु उनके निकट पहुँचे उनके बाणों ने त्रिशरा के सारथी और घोड़ों को निश्वास कर दिया। तब त्रिशरा रथ से कूद कर उस पर

झपटा, पर शीघ्र ही घायल होकर पृथ्वी पर गिर गया। उसे गिरता देख कर खर का रथ आगे बढ़ा, पर उसकी भी वही दशा हुई जो त्रिशरा के रथ की हुई थी। राम के बाणों ने उसके सारथी की जान लेकर घोड़ों को बेकाबू कर दिया। परन्तु खर शूरवीर सिपाही था, वह घोड़ों को पलायमान देखकर हाथ में गदा लिए रथ से कूद पड़ा।

उसे अपने निकट आता देख कर राम ने कहा—"राक्षस! अपने पापों का प्रायश्चित्त करने के लिये तैयार होजा। आज पर्यन्त जितने ऋषि और मुनि तेरे हाथों मर चुके हैं, उनकी आत्माएं आज तुझे इस क्षेत्र में मरता हुआ देखेंगी।"

खर--कुछ सेनानियों को किसी गुप्त अस्त्र से मार कर तुम समझने लग गये हो कि तुम जगत् विजयी हो पर तुम देखोगे कि इन मृत राक्षसों की आत्माएँ तुम्हारी आत्मा को शरीर से अलग करने के लिये किस भान्ति आगे बढ़ती हैं।"

यह कह कर उसने गदा घुमा कर जोर से राम पर फेंकी जिसे यदि राम पैंतरा बदल कर खाली न दे देते तो मालूम नहीं क्या हो जाता, क्योंकि जिस स्थान में वह गिरी पृथ्वी में एक गढ़ा पैदा हो गया।

वार खाली देते हुए राम ने कहा—

राम—बस यही शक्ति थी? अब मरने के लिए तैयार हो जा।

यह कह कर उसने धनुष को चक्कर दिया और थोड़े ही समय में उससे निकले हुए बाणों ने उस शूरवीर राक्षस के शरीर

से रक्त की नदियां बहा दीं जिसकी शूरवीरता के साखे निकट दूर सब जगह फैले हुए थे।

परन्तु खर का उत्साह टूटा नहीं था वह निःशस्त्र था, बुरी तरह घायल हुआ था पर दम वही था। उसने अपने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई और एक भारी वृक्ष को जड़ से उखाड़ कर राम की ओर लपका।

परन्तु यह शस्त्र इस प्रकार का नहीं था, कि राम के हृदय-बेधक बाणों का सामना कर सकता। परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही समय में वह रणभूमि में गिर गया। खर को रण में गिरते देख कर राम ने शंख को मुख से लगाया। उसके शब्द से पृथ्वी आकाश गूँज उठे। यह सुन कर दण्डकवासी ऋषि और मुनि पर्वत की ओट से बाहर निकले। उस समय उन सबकी ओर से वक्ता बन कर अगस्त्यजी ने कहा—

अगस्त्य—आज ऋषियों और मुनियों का हार्दिक मनोरथ पूर्ण हुआ गया। आज भारत राक्षसहीन हो गया। जनस्थान की बस्ती को विजय करके आपने भारत को शत्रुरहित कर दिया। इसी प्रयोजन के लिये आपको इस स्थान में लाया गया था। इसी प्रयोजन की पूर्ति के लिये महारानी कैकेयी ने आपको पिता के राज्य से निर्वासित किया था। इसी प्रयोजन के लिए महर्षि शरभंग ने आपको दंडक का राज्य दिया था। और इसी प्रयोजन के लिए इन्द्र आदि राजा शरभंग जी के आश्रम में आने पर भी आप से मिलने का साहस नहीं कर सके थे; क्योंकि वे राक्षस

लोगों की शक्ति से भयभीत थे। परन्तु आपने अकेले इतनी बड़ी राक्षस सेना को मार कर जगत् को दिखा दिया कि शूरवीरों के लिये कोई बात भी असम्भव नहीं है।

राम—(चरणों में सिर झुका कर) यह सब आपके ही विद्या बल का चमत्कार है।

अगस्त्य—राम! राक्षस जानते हैं कि तपस्या ही एक शस्त्र है जिसने उन्हें परास्त किया है, और जो उन्हें परास्त कर सकता है। इसलिये उन्होंने तपस्वियों को इस जगत् से उठा देने का यत्न किया। परन्तु आज तुमने जनस्थान की सेना को विजय करके तपस्वी लोगों को सदा के लिए भयरहित कर दिया है। परमात्मा तुम्हें इसका फल देंगे, यह हम लोगों का आशीर्वाद है।

वाली और मायावी का युद्ध

"निर्लज्ज ! धूर्त्त ! उठ अपने पापों का प्रायश्चित्त कर !" इन शब्दों के साथ सोने वाले की छाती में जोर की ठोकर लगी। उसने पीड़ा से कराहते हुए नेत्र खोले, तो सम्मुख एक भयानक मूर्ति सिर से पांव तक हथियार पहने हाथ में खड्ग लिये कह रही थी —

"बहुतेरी सती साध्वियों का सतीत्व भ्रष्ट कर लिया ! बहुतेरी पतिव्रताओं को घर से बेघर कर दिया !! अब तेरे पाप मनुष्य रूप धारण करके अपना प्रायश्चित्त ढूंढने आये हैं। मृत्यु के लिए तैयार हो जा !"

सोने वाले की दृष्टि के सामने मृत्यु की मूर्ति फिर गई। परन्तु वह उन लोगों में से नहीं था जो बिना हाथ पांव हिलाये सिर कटा लेते हैं। वह एक छलांग में शैय्या से बाहर हो गया, और दूसरे क्षणमें भयंकर नाद करते हुए प्रतिपक्षी की खड्ग छीन रहा था।

दोनों में हाथापाई होने लगी। एक ओर एक जाग्रत शूरवीर हर प्रकार से लैस। दूसरी ओर निद्रा से आधा जगा हुआ पर जो प्रिय जीवन के लिये युद्ध कर रहा था। वह शत्रु के साथ गुत्थम-

गुत्था होते हुए जोर २ से नारे लगा रहा था, कि हो सके तो सहायता पहुंच जाय। और उसका यह यत्न सफल हुआ, क्योंकि कुछ काल में ही एक ओर से यह शब्द सुनाई दिये "भाई क्या बात है ? मैं आ रहा हूं।"

सुग्रीव ! शीघ्र आओ। मैंने शत्रु को वश में कर रक्खा है।

'सावधान जाने न पाये' यह कहते हुए सुग्रीव ने डंके पर चोट लगाई और बड़ी २ छलांगे लगाता हुआ भीतर पहुँच गया।

प्रतिद्वन्दी यह देख कर कि शत्रु की शक्ति बढ़ गई है, एक झटके से अपने आप को छुड़ा कर बाहर कूद गया और बोला "बाली ! आज तुम बच नहीं सकते। इस गृह के भीतर, जो पतिव्रताओं के सतीत्व भ्रष्ट के पापों से दुर्गन्धित हो रहा है, तुम्हारा रक्त नहीं बहाया जायेगा। बल्कि विस्तृत क्षेत्र में, विशाल आकाश के नीचे, तारों भरी रात में, देवताओं की दृष्टि के सामने तुम्हारे पापों का प्रायश्चित्त होगा।" यह कहकर वह बाहर निकला और रात्रि के अन्धकार में लुप्त हो गया।

वानरराज बाली ने उस समय सुग्रीव से कहा ! "सुग्रीव ! ज्ञात है यह कौन था ?"

सुग्रीव—नहीं तो ! कौन था ?

बाली—मायावी था। दुन्दुभी राक्षस का पुत्र ! हमने इससे इसकी स्त्री को छीना था, और आज यह उसके प्रतिकार के लिये रात्रि के अन्धकार का लाभ उठा कर हमें मृत्यु के घाट पहुंचाने के लिये आया था। हम चाहते हैं कि इसको करनी का फल

चलायें। फिर यह खोज करनी होगी कि यह कैसे और किसकी सहायता से हमारे महलों तक पहुंचा ? समय अमूल्य है जिसे व्यर्थ गँवाना ठीक नहीं। (शीघ्रता से शस्त्र धारण करते हुए) जिस प्रकार हो सके नगर की चारों दिशाओं में ऐसा प्रबन्ध कर दो कि पक्षी भी बाहर न जा सके। हम शत्रु का पीछा करते हैं।

यह कह कर वह महल से बाहर निकला, तो ज्ञात हुआ कि सामने वाटिका में कोई मनुष्य-आकार है। उसे देख कर बाली के मुख से निकला :—

बाली—पुरुष होकर भागते हो, तनिक सामने आओ तो! हम तुम्हें ढूंढ रहे हैं।

मायावी—आओ, और आगे आओ, आज तुम्हें ज्ञात हो जायेगा कि स्त्रियों के साथ रंगरलियां मनाना और वीरों के साथ युद्ध करना एक समान नहीं।

इन शब्दों ने वालि को विश्वास दिला दिया कि वह गल्ती पर नहीं, इस कारण उसने धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ा कर जिधर से शब्द सुनाई दिये थे बाण छोड़ दिया। साथ ही स्वयं उधर चला। परन्तु कुछ क्षणों में अट्टहास का शब्द सुनाई दिया, और उसने श्रवण किया—"अभी नहीं, नगर से बाहर, सहायकों से दूर तुम्हारा अपवित्र रुधिर तृषित वसुन्धरा की तृषा बुझाने का कारण बनेगा।"

इन शब्दों को सुनकर वालि के शरीर में आग लग गई और वह परिणाम का ध्यान न करके अग्रसर हुआ।

मायावी गुप्त मार्ग से महलों से बाहर निकल चुका था, वाली उसके पीछे २ था, उसकी चुटकी से बाण निकल २ कर शत्रु का पीछा कर रहे थे। परन्तु प्रतीत होता था कि मायावी किसी जादू के प्रभाव से बिल्कुल सुरक्षित अपने नियत स्थान की ओर आगे बढ़ा जा रहा है। वानरराज की सेना के सेनापति भी सुग्रीव की अध्यक्षता में चारों ओर से घेरा डाले आ रहे थे, मायावी और उसके साथी जो कदाचित् ऐसे युद्ध के लिये तैयार नहीं थे, अब इस यत्न में थे कि अन्धकार से लाभ उठा कर शत्रु का विनाश करदें। इसलिये वह छोटे २ भुण्डों में बटकर वानर-राज पर चहुं ओर से वाण फेंक रहे थे। रात्रि अन्धकारमय थी। कोई नहीं जानता था कि उसके प्रतिपक्षी की शक्ति क्या है ? शस्त्र हर ओर गिर रहे थे और कोई नहीं कह सकता था कि उसके साथ उसका मित्र चल रहा है या शत्रु ! परन्तु वानरराज वाली का हुंकार जोर से गूंज रहा था और शत्रु उसे पहचान कर उसके चारों ओर घेरा डाल रहा था। अन्धकार में उस स्थान पर जहाँ उसका शब्द गूंजता था, कटारों के चकाचौंध से विद्युत् प्रकाश हो रहा था। राजधानी के बाहर विस्तृत वसुधा पर तुँगभद्रा नदी के उस ओर ऋष्यमूक पर्वत की खुरदरी शिलायें भयंकर दैत्य की भाँति खड़ी थीं और तलहटी में यह विचित्र युद्ध हो रहा था। एकाएक पर्वत की गुफा में से शत्रु की सेना निकल कर वानरराज पर झपटी। यह देख कर वानरराज ने उधर हल्ला बोल दिया। पर अँधेरे में समस्त सेना को एकत्रित करना सुगम

न था। प्रतीत होता था शत्रु इसी आकांक्षा से उसे इस ओर ले आया था कि पर्वत की ओट लेकर उसका विनाश कर दे। वानरराज की दृष्टि इस अन्धकार में उसकी भावना को भांप गई। अब एक ओर मायावी जैसा भीमकाय मनुष्य था जो इस अन्धकार में एक भयंकर दैत्य प्रतीत होता था, दूसरी ओर वानरराज बाली था जिसकी वीरता के साखे गाथाओं में कहे जाते थे और जिसका नाम सुन कर शूरवीर घरों में सहमे जाते थे। दीर्घकाल तक खड्ग युद्ध हुआ, फिर गदाओं के शब्द से पर्वत गुंजायमान हो गये और फिर ....एकाएक मायावी पर्वतीय गुफा में इस प्रकार गिरता हुआ दीख पड़ा मानो वानरराज के धक्के को सहन न कर सका हो। वानरराज ने उसे दृष्टि से ओझल होते देखकर उसके पीछे छलांग लगा दी। अब वह दोनों अन्य योद्धाओं की दृष्टि से ओझल हो गये।

सुग्रीव बाली के निकट उसके गुप्त रक्षक का कार्य कर रहा था। ज्येष्ठ भ्राता को गुफा में उतरते देख कर वह गुफा के मुख पर पहुंचा, तो भीतर से आवाज आई:—

बालि—सुग्रीव ! शत्रु हमारे वश में है, किसी अन्य को गुफा में घुसने मत दो। हम इस झगड़े को सदैव के लिये निपटा कर आते हैं।

❀ ❀ ❀

रात्रि का अन्धकार उषा के प्रकाश में परिवर्तित हो गया। सुग्रीव ने चारों ओर देखा तो शत्रु का कोई पता न था। वह

अन्धकार में ही घायल और मृतकों के शव भी उठा ले जाने में सफल हो गया था। परन्तु वानरराज कहां थे? खोज हुई, पर्वत के चहुं ओर भूमि में, पर वहाँ कोई होता तो पता मिलता। अन्त में युक्ति निकाली गई कि पर्वत-कन्दरा में गुफा के नीचे खोज की जाय।

वानर सेना पर्वत-कन्दरा में घुसी। वह पर्वत उनकी राजधानी किष्किन्धा से दूर नहीं था, पर उस गुफा में घुसकर वानर सेनापतियों को ज्ञात हुआ कि अभी तक इस पर्वत के कितने रहस्य उनसे छिपे हुए हैं।

गुफा के भीतर मार्ग नीचे को उतरता हुआ प्रतीत होता था और वानर-सेना का एक भाग सुग्रीव के नेतृत्व में उस मार्ग से नीचे उतर गया। नीचे कुछ दूरी पर दो मार्ग फटते प्रतीत हुए, जो भिन्न २ दिशाओं को जा रहे थे। दोनों मार्गों पर रक्त के छींटे इस बात का प्रमाण थे कि घायल मनुष्य इधर से गये हैं। पर वानरराज बाली किधर को गये हैं? यह जानना सुगम न था। इसलिये अनुभवी सेनापति ने अपने कुछ साथियों को अधिक सहायक सेना ले आने के लिये भेज कर उस मोड़ पर कुछ देर सुस्ताते हुए चहुं ओर दृष्टि दौड़ाई। ऊपर आकाश पर वानर सेना वृक्षों की ओट में छिपी सी दृष्टिगोचर होती थी। पर दूसरी ओर यह भी सन्देह था कि शत्रु का कोई जत्था झाड़ियों की ओट में छिपा न हो! इसलिये आगे बढ़ने से प्रथम आसपास का भय निवारण करना आवश्यक हो गया, इस आशय के

लिये वानर सेना का एक भाग राष्ट्रीय नारे लगाता हुआ इर्द गिर्द के पत्थरों का अन्वेषण करने लगा। इस सेना को एक सेनापति की अध्यक्षता में इस कार्य पर लगाकर और एक अन्य सेनापति को दूसरे मार्ग पर जाने की आज्ञा देकर सुग्रीव अपनी सेना के साथ और नीचे उतरा, तो मार्ग एक पहाड़ी नाले के साथ २ जा रहा था, जिसका जल नवीन रक्त से लाल होकर बह रहा था। यह इस बात का प्रमाण था कि कोई भयंकर युद्ध अभी २ समाप्त हुआ है। क्योंकि सम्मुख मनुष्यों के पदचिन्ह थे, जो पत्थरों पर लग रहे थे। यह देख कर सुग्रीव की सेना का उत्साह बढ़ गया, और वह शीघ्रता से आगे बढ़े। परन्तु उसी समय तीरों की बाढ़ ने वानर-सेना के चलते हुए पाँव रोक दिये, क्योंकि शस्त्र चारों ओर से गिर रहे थे, और शत्रु का कोई चिन्ह दिखाई न देता था।

वानर सेनापति ने तनिक सुस्ताकर कुछ सोचा, और अपने साथियों से कहा:—

सुग्रीव—प्रतीत होता है वानरराज इसी मार्ग से आगे गये हैं, क्योंकि पहाड़ी नाले का यह रक्तमिश्रित जल इस बात की साक्षी देता है कि यह शत्रु की सेना के रक्त से लाल हुआ है, जो अत्याधिक बहा है। परन्तु यह चारों ओर से आती हुई तीरों की बोछाड़ बता रही है कि हम शत्रु को पीछे छोड़ आये हैं। इसलिये हमें इस स्थान पर कुछ काल ठहर कर अपने साथियों को आने का अवसर देना चाहिये।

इस विषय पर वार्त्तालाप हो रहा था कि एक दूत ने सूचना दी कि "सेना का दूसरा भाग शत्रु से भिड़ गया और एक भयानक युद्ध हो रहा है।" इस कारण सुग्रीव ने आगे बढ़ने के स्थान पर पीछे हट कर दूसरी सेना की सहायता करने का निश्चय किया। पर नीचे उतरने की अपेक्षा ऊपर चढ़ना सुगम नहीं था। क्योंकि पग २ पर मार्ग रुक रहा था। इन कठिनाइयों का सामना करके बड़ी शूरवीरता से शत्रु को पीछे हटा कर जिस समय सुग्रीव की सेना उस स्थान पर पहुंची जहाँ दोनों मार्ग अलग २ हुए थे, तो शत्रु उसकी सेना को भारी हानि पहुंचा कर पीछे हट रहा था। दोनों सेनाओं के परस्पर मिलने और बन्दियों से पूछताछ पर यह ज्ञात हुआ कि वानरराज बाली शत्रु की भारी सेना का सामना करते हुए चारों ओर से घिर कर बड़ी शूरवीरता से संग्राम करते हुए वीर गति को प्राप्त हुए हैं और शत्रु उनके शरीर को किसी गुप्त स्थान पर ले गया है। वानर सेना पर यह सुन कर वज्रपात हुआ, और सारे सेनापतियों ने उचित समझा कि एकत्रित होकर परस्पर विचार विनिमय करें। उनके सम्मुख सुग्रीव ने कहा:—

सुग्रीव—मेरा मन यह मानने से इन्कार करता है कि वानर-राज अब इस संसार में नहीं रहे, और वह मायावी-जैसे पाजी के हाथों मारे गये हैं। मेरा विचार है कि हमें धोखा दिया जा रहा है। आपका क्या विचार है?

"ज—हम शत्रु के कथन पर विश्वास नहीं कर सकते। पर

विचारणीय यह है कि क्या हमारी सेना इस समय उसका सामना कर सकती है ?

गवाक्ष—हम रात्रि के अन्धकार में सुप्तावस्था से उठकर चले आये हैं। विस्मय नहीं कि शत्रु ने हमारी अनुपस्थिति में राजधानी को हानि पहुँचाने का साहस किया हो। इस समय हमने जो युद्ध किया है वह हमारी अल्प सेना और अल्पकाल की तैयारी को सम्मुख रखते हुए अति प्रशंसनीय है। पर शायद हम इसे अधिक समय तक नहीं चला सकेंगे। इसलिये हमें राजधानी में चलकर पूरी तैयारी के साथ शत्रु पर आक्रमण करना चाहिये।

सुग्रीव—जो कुछ आपने कथन किया वह सत्य ही है। इस समय तक जो समाचार प्राप्त हुआ है, उससे ज्ञात होता है कि दोनों सेनाओं के सरदारों—वानरराज बाली और मायावी—का कोई पता नहीं। सम्भव है दोनों एक दूसरे से युद्ध करते हुये मारे गये हों। यह भी सम्भव है दोनों जीवित हों। वानरराज अल्प सेना के साथ शत्रु के पीछे गये थे, यदि हम राजधानी में लौट गये तो उनकी सहायता कैसे हो सकेगी ?

गन्धमादन—इस समय भी तो हम उनकी कोई सहायता नहीं कर रहे। यदि महाराज जीवित हैं, और भगवान् करे वह जीवित हों, तो भी वह अकेले ही शत्रु का सामना कर रहे होंगे।

शरभ—तो आपका क्या विचार है ?

गन्धमादन—यह सत्य है कि हमारी अल्प सेना चिरकाल

पर्यन्त युद्ध नहीं कर सकेगी। इसलिये हमें पूर्ण तैयारी के साथ शत्रु पर आक्रमण करना चाहिये।

इसी प्रकार कई और भाषण हुए। उनके पश्चात् यही निश्चित हुआ कि इस समय पीछे हटकर राजधानी की दशा का पता करना और फिर पूरी तैयारी के साथ शत्रु का विनाश करना चाहिए। इसलिए वानरसेना पूर्ण अनुशासन के साथ पर्वत से उतरी।

एक वर्ष तक वानर और राक्षस सेना में मुठभेड़ होती रही। सहस्रों नवयुवक उस झगड़े में, जो एक स्त्री के कारण दो सरदारों में हुआ था, मृत्यु की भेंट हो गये। परन्तु विस्म था कि न तो यह ज्ञात हो सका कि मायावी और वाली पर क्या बीती? और न यह ही पता चला कि उनमें से कोई जीवित है या नहीं। उन्हें पृथ्वी निगल गई या आकाश ने भक्षण कर लिया। तो भी युद्ध होता रहा। वह युद्ध, जिसे अधिक से अधिक दो मनुष्यों का परस्पर झगड़ा कहा जा सकता था, दो जातियों का रक्त शोषण करता चला गया। एक वर्ष व्यतीत हो जाने पर वानर आमात्य और सेनापति एकत्रित हुए, और इस विषय पर विचार किया गया कि भविष्य में क्या होना चाहिये? इस सभा में चण्ड नामी एक सरदार ने कहा:—

चण्ड—एक वर्ष व्यतीत हो गया। महाराज की कोई सूचना नहीं मिली। यदि वह जीवित होते तो इस समय तक उनका समाचार मिलना चाहिये था। अब एक ओर हम शत्रु के साथ युद्ध कर रहे हैं, दूसरी ओर देश में राजा की अनुपस्थिति में गड़-

बढ़ हो रही है। और अब तो सेना के लिये नवयुवक भी नहीं मिल रहे। इस दशा में हमें यह विचार करना है कि हमें क्या करना चाहिये। किसी महापुरुष ने कहा है "जिस देश में राजा न हो उसमें धर्म की स्थिति नहीं रहती, वहाँ के लोग एक दूसरे को भक्षण करने लगते हैं, वहाँ के लोग लक्ष्मी या श्री का सुख नहीं भोग सकते, वहाँ पर बलवान बलहीन का सर्वस्व हरण कर लेते हैं, वहाँ पर बिना दासता के दासता आ जाती है !" इसलिये हमें कोई न कोई राजा चुनना होगा।

रम्भ—मेरे विचार में तो समय आ गया है कि राजा का चुनाव किया जाय। क्योंकि कोई भी राज्य बिना राजा के अधिक समय तक नहीं रह सकता।

शभ—रम्भ जी ने सत्य कहा है। निःसन्देह महाराज बाली जीवित नहीं हैं। इसलिये दुःख और शोक होते हुए भी यदि हमें जाति को जीवित रखना है, तो नये राजा का चुनाव करना होगा, क्योंकि राजकुमार अंगद अभी इस योग्य नहीं कि इसभार को अपने शीश पर उठा सकें।

इसी प्रकार कई भाषण हुए और कई उपाय सोचे गये, जिनके पश्चात् यह निर्णय हुआ कि देश में इस बात की घोषणा की जाय और नियत समय पर नये महाराज का चुनाव हो। ऐसा ही किया गया और वानर लोगों के बहुमत से सुग्रीव उस देश के राजा चुने गये।

* * *

"अहा ! हनुमान इतने दिन कहाँ रहे ?"

हनुमान—श्री महाराज की सेवा में ही राजधानी से अनुपस्थित था। एक कठिन कार्य को पूर्ण करने के पश्चात् उपस्थित हुआ हूं।

सुग्रीव—हमारी सेवा के लिये गए थे और हमें इसका ज्ञान नहीं था ?

हनुमान—श्री महाराज ऐसा ही था।

सुग्रीव—वह क्या कार्य था जिसे हमारे ज्ञान के बिना पूर्ण करने में सफल हुए हो।

हनुमान—महाराज! गत वर्ष जो युद्ध हुआ है उसमें हम लोग यह ज्ञात नहीं कर सके थे कि शत्रु किधर से आता है और किधर को लुप्त हो जाता है। मैं चिरकाल से इसी खोज में था और अब इस प्रश्न को सुलझाने में सफल हुआ हूं।

सुग्रीव—कैसे ?

हनुमान—जब दोनों ओर की सेनायें युद्ध में मग्न थीं, मैं शत्रु की सेना के भीतर शत्रु के सैनिकों के वेश में ही कार्य कर रहा था, इसी कारण जब कई स्थानों पर वह सेना पीछे हटी तो मुझे भी उसके साथ पीछे हटना पड़ा। मेरा सौभाग्य था या वेश धारण की निपुणता कि किसी ने पहचाना नहीं। उस समय शत्रु सेना के मृतक सैनिकों की वर्दियाँ मेरे काम आईं। परन्तु शोक है कि मुझे उतने काल के लिये अपने जातीय चिन्ह लांगूल* को अलग रखना पड़ा।

---

*साधारण लेखकों ने जो वानर लोगों को बन्दर बनाने में आनन्द अनुभव करते हैं "लांगूल" को बन्दरों की दुम कहा है यद्यपि सत्य यह

परन्तु आपत्तिकाल और राज्य सेवा में सब कुछ ठीक है इस विचार ने धैर्य दिया। हां, तो मैं कह रहा था कि मुझे शत्रु-सेना के साथ साथ रहना पड़ा। उस समय ज्ञात हुआ कि जब भी शत्रु की कोई नवीन सेना आती है या प्राचीन को लौटना पड़ता है तो पर्वत की वही कन्दरा जिसके भीतर वानरराज ने प्रवेश किया था, उसके मार्ग का काम देती है। मैं उस गुफा में, उस स्थान से जहाँ पर श्री महाराज ने दो मार्ग फटते देखे थे, बहुत दूर आगे उतर गया। उस पर्वतीय नाले के साथ २ चलता हुआ नीचे पहुँचा तो बहुत नीचा उतरने के पश्चात् ज्ञात हुआ कि वह पहाड़ी नाला एक महानद में मिल जाता है, जो आगे चलकर सागर में समा जाता है। शत्रु सागर के मार्ग से अपनी नाव में आता और जाता है, और उस पहाड़ी नाले में से होकर गुफा के मार्ग से हम पर आक्रमण करता है। यद्यपि यह सन्देहजनक है कि महाराज

है कि यह वानर जाति का वैसा ही जातीय चिन्ह था जैसे आज से कई वर्ष प्रथम चीनी राजाओं की आज्ञानुसार चीनी पुरुष स्त्रियों की भांति अपने केश पीठ पर गूंदा करते थे। वानर जाति के लोग इस लांगूल का बड़ा आदर करते थे। और उसके निरादर को सहन नहीं कर सकते थे। यद्यपि यह अभी तक ज्ञात नहीं हो सका कि इस जातीय चिन्ह का वास्तविक आकार क्या था और यह कैसे धारण किया जाता था। दशरथ जातक ने लांगूल का अर्थ 'हाथों के कंगन' किया है विस्मय नहीं यदि यह प्रमाणित हो जाय कि यह लांगूल लंगोटे या जांघिये के साथ धारण किया जाता था, और इस भांति कटि का आभूषण होता था।

वाली भी इसी समुद्र के मार्ग से लुप्त हुए हैं। मेरी यह भी सम्मति है कि यदि हमें शत्रु के प्रतिदिन के आक्रमणों से सुरक्षित होना है तो हमें पर्वत-कन्दरा का यह मार्ग बन्द करना होगा। इसके पश्चात् यदि शत्रु किष्किन्धा पर आक्रमण करेगा तो उसे दूरवर्ती मार्ग से आना होगा, जिसमें अन्य और राज्य भी पड़ते हैं। इसलिये वह ऐसा करने का साहस करने से पहले बहुत सोच विचार करेगा।

सुग्रीव—(हनुमान को हृदय से लगा कर) निःसन्देह तुमने वानर जाति की एक भारी सेवा की है, जिसके लिये हम कृतज्ञ हैं। हम आज ही इस विषय को सभा के सम्मुख रखकर इस मार्ग को बन्द करने का निर्णय करेंगे।

बाली का प्रत्यागमन

वानरराज सुग्रीव का दरबार लगा था। महाराज को सिंहासनासीन हुए दीर्घकाल व्यतीत हो गया था, प्रजा उनके राज्य प्रबन्ध से प्रसन्न थी, इसलिये चहुँ ओर सुख शान्ति का साम्राज्य था। महाराज बाली शूरवीर थे, देश देशान्तर के योद्धा उनके भय से भयभीत होकर किष्कन्धा की ओर दृष्टि पात नहीं कर सकते थे, पर इन गुणों के साथ ही उनमें एक अवगुण था जिसने उनके समस्त गुणों को ग्रास रखा था और वह था स्त्री के प्रति आसक्ति। सुन्दर स्त्री पर दृष्टि पड़ते ही वह अपने वश में नहीं रहते थे। यद्यपि उनके अन्तःपुर में रानियों का अभाव न था, तो भी जब भी प्रजा में से या प्रजा के बाहर किसी रूपवती स्त्री को देख पाते थे तो, चाहे वह विवाहिता हो या अविवाहिता, उसकी प्राप्ति के लिये राज्य की सम्पूर्ण शक्तियां वर्तने में उन्हें संकोच न था। महाराज सुग्रीव इस बात में अपने ज्येष्ठ भ्राता से भिन्न थे। यही कारण था कि प्रजा उनको चाहती थी, और उनसे प्रसन्न थी।

जिस दिन की वार्ता हम लिख रहे हैं उस दिन महाराज सभा में विराजमान थे, और किसी गम्भीर विषय पर मन्त्रिमण्डल से परामर्श हो रहा था कि एक मुद्राअंकित लिफाफा उनके हाथों में दिया गया, जो उनके नाम पर लिखा था। महाराज ने उसे खोला तो पत्र का विषय देखकर विस्मित हो गये। लिखा था:—

"वानरराज वाली की ओर से देशद्रोही सुग्रीव के नाम !"

"राजधानी से हमारी अनुपस्थिति का लाभ उठाकर तुमने हमारे राज्य पर अधिकार जमा रक्खा है, पर तुम्हें चेतावनी दी जाती है कि हम कुछ काल में किष्कन्धा पहुंचने वाले हैं। यदि तुम हमारी कामना पूर्ति में बाधक बनोगे तो अवश्यमेव हमें तुम्हारे विरुद्ध शस्त्र धारण करना पड़ेगा। इसलिये इस चेतावनी को दृष्टि के सन्मुख रखते हुए अपना कर्त्तव्य निर्धारित कर लें। हम तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता हैं। हमारा नाम वाली है और हमारा शौर्य्य जगत् विख्यात है।"

शब्द थोड़े से थे पर उनके अर्थ गम्भीर थे। महाराज सुग्रीव ने उन्हें पढ़ा, फिर पढ़ा, हस्ताक्षर परिचित थे, इसलिये निश्चय था कि वानरराज वाली जीवित है, पर उन्हें इतने कठोर शब्द वर्तने की आवश्यकता क्यों पड़ी? यह प्रश्न था जिसे वह समझ न सके। दूत जो पत्र लेकर आया था, उसे बुलाया गया तो ज्ञात हुआ कि सचमुच वानरराज ने ही किष्कन्धा के किसी स्थान से उसे लिखा था और वह किष्कन्धा पहुंचने से प्रथम उसका उत्तर चाहते थे।

महाराज सुग्रीव को भ्राता से प्रेम था और उन्होंने बड़े दुःख से उनके वियोग को सहन किया था। इसलिये उन्होंने उसी समय पत्र का उत्तर इन शब्दों में लिखवाया:—

"पूज्यनीय भ्राता

चरणों में प्रणाम!

आज आपका पत्र देखकर मृतक आशायें जीवित हो गईं। शुष्क वृक्षको जल मिल गया। प्रभु का धन्यवाद है कि आप जीवित हैं, क्योंकि किष्कन्धा में जो समाचार मिले थे वह इसके विरुद्ध थे। पर भगवान् की शक्ति अपार है, वह कुछ कर देते और कर सकते हैं जिसकी मनुष्य को स्वप्न में भी आशा नहीं होती। प्रिय भ्राता! राज्य आपका है, आपकी अनुपस्थिति में किष्किन्धा निवासियों ने मुझे आपके रिक्त स्थान को पूर्ण करने की आज्ञा दी थी, और उस आज्ञा का पालन किया गया। पर राज्य आपकी धरोहर है, आप जिस समय आयेंगे वह आपको अर्पण कर दिया जायेगा। कृपया अपने आने का पूरा ब्योरा लिखिये। मैं आपका दास हूँ।"

पत्र पहुंचने के कुछ दिन पश्चात् वानरराज वाली किष्कन्धा के राज्यसिंहासन की शोभा बढ़ाने लगे।

सुग्रीव निर्वासन

किष्कन्धा के सभा भवन में समिति की बैठक थी। किष्कन्धा निवासी जिन्हें दीर्घकाल के पश्चात् अपने राजा के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, इस बैठक में सम्मिलित होने के लिये आ रहे थे। उनमें सर्वसाधारण भी थे धनाढ्य व्यौपारी थे, और बड़े २ अमात्य और कर्मचारी भी थे। नियत समय पर बैठक का आरम्भ हुआ। जब सब अपने अपने स्थान पर बैठ गये, तो महाराज ने कहाः—

"सभाजनो! आज चिरकाल के पश्चात् हमें आपके दर्शन का अवसर मिला है। इस काल में हमें किन किन कष्टों को सहन करना पड़ा है यदि इसका सम्पूर्ण वृत्तान्त आपके सन्मुख रखें तो आपको हार्दिक कष्ट होगा। इसलिये हम केवल कुछ शब्दों में उनका वर्णन करेंगे। आपको स्मरण होगा, कई वर्ष हुए एक दिन मायावी राक्षस ने किसी देशद्रोही के साथ मिल कर, अर्धरात्रि के समय, हमें हमारे महल में वध करने का यत्न किया था। उस आसुरी लीला में वह सफल न हो सका, और उसे अपने कार्य को अपूर्ण छोड़ कर भागना पड़ा। हमने उसका पीछा किया, और आप लोगों ने उसमें हमारी सहायता की। मायावी यहाँ से भाग कर ऋष्यमूक की कन्दराओं में जा घुसा। उस समय सब ओर अन्धकार था, फिर भी हमने उसे बाहर निकाल लिया। तत्पश्चात् वह पर्वत

की एक गुफा में नीचे उतरा। वह आगे आगे था और हम पीछे। पीछे वह पर्वत के भीतर उतरता चला गया। बीच में कई स्थानों पर हमारा उसकी सेना और उसके साथ युद्ध भी हुआ। पर उसने एक स्थान पर जम कर ठहरना उचित न समझा। फिर एक स्थान ऐसा आया, जहाँ हमें प्रतीत हुआ कि आगे जाने का कोई मार्ग नहीं। परन्तु मायावी हमारे देखते देखते उसी स्थान में लुप्त हुआ था। इसलिये जिधर वह गया है उधर का कोई मार्ग होना चाहिये। इस विचार ने हमें भली प्रकार देख-भाल करने पर विवश किया। तो एक स्थान में पर्वत की शिला तनिक उठी हुई प्रतीत हुई। हमने उसे उठाने का यत्न किया, परन्तु वह उठ न सकी। इसी खेंचातानी में हमें यह ज्ञात हो गया कि कोई शक्ति उस शिला के दूसरी ओर से उसे ऊपर उठने से रोक रही है। इस पर हमने पुनः ज़ोर लगाया। और अन्ततः उसे उठा ही लिया। अब सामने फिर अन्धकार था, जिसमें किसी जीव के श्वास का शब्द सुनाई दिया। हम आगे बढ़े, पर ठोकर खाकर गिर पड़े। तो भी साहस न छोड़ा, और अन्त में अन्धकार में और नीचे उतरने में सफल हो गये। कथा लम्बी है, अल्प शब्दों में यह; कि मार्ग जिस पर हम जा रहे थे हमें एक पहाड़ी नाले, फिर महानद और फिर सागर में ले गया। यहां पर एक नाव तट से बँधी खड़ी थी। मायावी एक छलांग के साथ उस नाव में पहुँच गया। हम भी उसका पीछा करते हुए उसी स्थान पर पहुँच गये। फिर सागर में हमारा द्वन्द्व युद्ध आरम्भ हुआ। यह युद्ध कितने समय तक रहा, बताने

की आवश्यकता नहीं। केवल यही बताना है कि अन्त में हम शत्रु का नाश करने में सफल हो गये। अब प्रश्न तट पर पहुंचने का था। उसमें कितनी बाधायें और कितने कष्ट हुए यह हम ही जानते हैं। अन्त में नाव को तट पर लाने में भी सफलता हुई और हम उसे एक वृक्ष से बाँध कर लौटे। पर जब सहस्रों प्रकार के कष्टों को झेलने और लाखों बाधाओं को हटाने के पश्चात् गुफा के शिर पर पहुंचे तो उसका मुँह बंद था। हमने उसे खोलने का कई बार यत्न किया, पर सफलता न हुई। परिणाम यह हुआ कि हमें फिर उसी मार्ग से उतरना पड़ा जिससे ऊपर आये थे। तत्पश्चात् कई वर्ष के कष्टों के पश्चात् हम अब किष्किन्धा पहुंचने में सफल हुए।"

इतनी कथा सुनाकर वानरराज सुस्ताये। लोग मौन होकर उनकी कथा सुन रहे थे। जिस समय उन्होंने उच्च स्वर से ये शब्द कहे तो सबके मुख विवर्ण हो गये:—

"सभाजनो! हमारे सारे कष्टों का कारण वे देशद्रोही हैं जो हमें यहाँ से निकाल कर किष्किन्धा पर राज्य करना चाहते थे, और जो अपने इस घृणित मनोरथ में सफल हुए। हमें दुःख से कहना पड़ता है कि उनमें प्रथम स्थान हमारे रक्त के रक्त, हमारे माता-पिता के पुत्र, हमारे सहोदर कनिष्ठ भ्राता का है। उसने अपने मित्रों और सहायकों के साथ यह षड्यन्त्र रचा जो किसी प्रकार भी क्षम्य नहीं है।

महाराज फिर सुस्ताये तो सुग्रीव ने बोलने की आज्ञा माँगी।

परन्तु महाराज ने गरजकर यह कहते हुए उसे मौन करा दिया:—

"सुग्रीव! तुम्हें बोलने की आज्ञा नहीं है। तुम्हारे अपराध को प्रमाणित करने में किसी साक्षी की आवश्यकता नहीं। पर तुम राजकुल से सम्बन्ध रखते हो, इसलिये यद्यपि तुम मृत्युदण्ड के अधिकारी हो; पर तुम्हें वह दण्ड नहीं दिया जायेगा। (सुस्ता कर) तुम्हें क्षमा भी नहीं किया जा सकता। इसलिए तुम्हें वानर देश से निर्वासन का दण्ड दिया जाता है। तुम्हारे साथ तुम्हारे वह सहायक भी निर्वासित होंगे जिन्होंने इस जघन्य कार्य में तुम्हारी सहायता की। परन्तु, (फिर सुस्ता कर) तुम्हारी स्त्री रोमा ने कोई अपराध नहीं किया, वह तुम्हारे साथ नहीं जायेगी। तुम्हारे राजा बनने पर वह रानी बनी थी और तुम्हारे निर्वासन पर भी वह रानी ही रहेगी। महलों में उसके आदर सत्कार में कोई अन्तर नहीं आयेगा। अन्य रानियों की भांति वह भी रानी रहेगी। हम ने आज्ञा दे दी, इसका पालन किया जाय।"

महाराज के नेत्र रक्त वर्षा कर रहे थे। और जब उनका क्रोध इस सीमा पर पहुंचा करता था तो उनके सम्मुख बोलने का साहस किसी को नहीं होता था। इसलिये जब निर्णय सुना चुकने के पश्चात् उन्होंने समिति को विदा किया तो लोग चुपके से उठकर सभा मण्डप से बाहर हो गये। उस समय किसी को ज्ञात नहीं था कि सुग्रीव के "सहायकों" में किस-किस का नाम लिखा जा चुका है। सबकी धमनियों का रक्त ठंडा हो चुका था।

सीता हरण

सीता—तात ! जबसे जनस्थान की विजय हुई है महाराज को तो कुटिया में ठहरने का समय ही नहीं मिलता।

जटायु—हाँ पुत्री ! ऐसा ही है। नया-नया राज्य है, शत्रु अधिक हैं, प्रत्येक प्रकार का प्रबन्ध करना है और सारा भार इन्हीं दोनों भ्राताओं के कन्धों पर है।

सीता—जब कभी पूछती हूँ तो यही उत्तर मिलता है कि कई स्थानों पर राक्षस डकैती कर रहे हैं इनका प्रबन्ध करना है, कई स्थानों में प्रजा के लिये विद्यामन्दिर खोलने हैं, प्रजा के स्वास्थ्य का प्रबन्ध करना है। क्या कहूँ मुझसे तो अब वे पराये से हुए जाते हैं।

जटायु—सत्य कहती हो पुत्री ! भगवान् के शिर पर एकाएक नये राज्य की स्थापना का भार आ पड़ा है। देखता हूं कि तुम उन्हें यथाशक्ति सहायता दे रही हो, फिर भी जिम्मेवारी उन्हीकी है।

सीता—वनवास में हमने इतने दिवस जिस शान्ति और प्रेम से व्यतीत किये थे अब वे भूतकाल की बातें हो गई हैं। निश्चय ऐसे राज्य से तो हम साधारण वनवासी ही अच्छे थे !

जटायु—इसमें क्या सन्देह है ! साधारण वनवासी का जीवन राजा से कहीं अधिक सुखी है। राजा कहने को तो राजा है, पर

वास्तव में प्रजा के दासों का दास है। यदि प्रजा दुःखी हो तो कौन राजा सुख की निद्रा में सो सकता है ? यह न भी हो तो प्रजा के सुख के साधनों पर विचार करने में राजा के जीवन का मुख्य भाग बीत जाता है।

सीता—आज ही की बात है, महाराज रात्रि भर नहीं सोये ! राक्षस डाकुओं ने जहाँ दाव लगे जनस्थानवासियों को लूटना आरम्भ कर रक्खा है। रात भर उन्हें पकड़ने में लगे रहे। प्रातः आये थे, संध्या का भी समय न मिल सका, तब से फिर राज कार्यों में व्यस्त हैं। मैं तो कुटिया में बैठी बैठी-उकता गई हूँ। आज निश्चय किया है कि बनदेवी वासन्तीजी के यहाँ जाऊंगी, दीर्घकाल से उनकी ओर से निमंत्रण आ रहे हैं।

जटायु—तो वाहन का प्रबन्ध कर दूँ ?

सीता—वाहन की क्या आवश्यकता है ? कोई दूर तो है नहीं। भ्रमण ही हो जायगा। ऋतु सुखदायक है, बरबस चलने फिरने को मन चाहता है।

जटायु—तो मैं साथ चलूँगा।

सीता—आपके कष्ट उठाने की क्या आवश्यकता है ? महाराज की कृपा से चप्पे-चप्पे पर सैनिक हैं, वन में रामराज्य के होते किस को भय है ?

जटायु—सत्य है, तो भी राक्षस लोगों का विश्वास नहीं, वह धर्म अधर्म को नहीं जानते और जबसे उनका राज्य छीना गया है, बिल्कुल अपने आपे से बाहर हो रहे हैं।

सीता—जैसे आपकी इच्छा! मैं आपको कष्ट देना नहीं चाहती थी, पर यदि आप इस बात के लिये कटिबद्ध हैं तो मुझे क्या कहना है?

❀ ❀ ❀

"अहा वह वनदेवी जी का आश्रम आ गया, देवी जी स्वयं वाटिका में पुष्प चयन कर रही हैं। तात! अब आप जाइये, मैं दबे पाँव जाकर देवी जी के नेत्र बन्द कर लूँगी। उन्हें मेरी प्रतीक्षा तो है नहीं, देखूं पहिचानती हैं या नहीं? हाँ, तो आपके पुनः कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं, मैं स्वयं ही आजाऊँगी। यदि आवश्यकता हुई तो देवी जी के यहाँ से किसी को साथ लेती आऊँगी। ज्ञात नहीं किस समय आने की आज्ञा दें। हाँ, महाराज आ जायें तो उसी समय बुलवा भेजना, मैं तुरन्त पहुंच जाऊँगी।"

यह कह कर सीता जी जटायु के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही धीरे से वाटिका की ओर मुड़ गईं।

❀ ❀ ❀

"सुन्दरी तुम! कौन हो जो इस निर्जन वन में अकेली विचर रही हो? क्या तुम्हें राक्षसों का भय नहीं?"

देवी सीता को अकेली आते देख कर एक वनवासी ने कहा।

सीता—रामपत्नी को राक्षसों से भय! राम-राज्य में भय केवल पापियों को ही हो सकता है!

वनवासी—तो क्या मैं अपने सन्मुख राम-पत्नी को निहार रहा हूँ ?

सीता—हाँ भगवन् ऐसा ही है ! क्या मैं महाराज का परिचय पूछ सकती हूँ ?

वनवासी—क्यों नहीं। तुम्हारे ही दर्शन के लिये तो वनवासी आ रहा है, फिर पूछ क्यों नहीं सकतीं ? तुम्हारे कारण ही तो विश्वविजयी ने यह रूप धारण किया है !

सीता – मैं नहीं समझी।

वनवासी – जनकनन्दिनी ! तुम्हारे सम्मुख तुम्हारे सौन्दर्य का उपासक दशग्रीव खड़ा है, जिसे साधारण जनता रावण कहती है।

सीता—(विस्मय से उसकी ओर निहारते हुए) दशग्रीव को मुझसे काम ?

वनवासी—दशग्रीव ने इस समय तक सहस्रों स्त्रियों को देखा है, उसके अन्तःपुर में एक से एक बढ़कर सुन्दरी उपस्थित है, परन्तु जो रूप आज उसकी दृष्टि के सन्मुख आया है वह अपूर्व है। जनकनन्दिनी ! यदि तुम आज्ञा दो तो दशग्रीव तुम्हें अपनी महिषी बनाने की इच्छा रखता है।

सीता—(घृणा पूर्वक) मैंने ब्राह्मण का रूप देखकर तुम्हारा सत्कार किया था, परन्तु तुमने जो शब्द इस समय मुख से निकाले हैं उनके दण्ड में तुम्हारी जिह्वा गुद्दी से काट देनी पड़ेगी।

दशग्रीव—(हँस कर) सत्य है, पर तुम्हें यह दण्ड देने की

शक्ति उस समय प्राप्त होगी जब तुम लङ्का की महारानी बनोगी। इस निर्जन वन में रहते हुए तुमसे यह न हो सकेगा।

सीता—(आवेश से) ब्राह्मण! दशग्रीव! तुम जो कोई भी हो, मेरी दृष्टि से दूर हो जाओ! तुम्हारी छाया से वन की शान्ति भङ्ग हो रही है!

दशग्रीव—(आगे बढ़कर) सीता! दशग्रीव अकेला नहीं जायेगा। वह देखो उसका रथ तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। तुम्हें पैदल चलने का कष्ट होता होगा, इसमें आसीन हो जाओ।

सीता—पापी! निर्लज्ज! दूर हो! तू क्या समझता है कि स्त्री को निःसहाय देखकर उसे इस प्रकार तंग कर सकता है? स्मरण रख, रामपत्नी को दुःख देने वाला देवता हो या मनुष्य अथवा राक्षस इस संसार में सुख की नींद नहीं सो सकता। इसलिये यदि अपने जीवन से हाथ धोकर नहीं आया, तो जिस मार्ग से आया है उसीसे भाग जा, प्रथम इसके कि राम के धनुष से निकले हुए बाण तेरी अस्थियों को चकना चूर करें।

दशग्रीव—सुन्दरी! तुम्हारे सौंदर्य ने दशग्रीव को मुग्ध कर लिया है, नहीं तो इस प्रकार के शब्द सुनने की शक्ति रावण में नहीं। देख! सूर्य और चन्द्र को मुट्ठी में उठाने का दावेदार विश्वविजयी दशग्रीव तुझे अपने राज्य का भागी बना रहा है और तू एक तुच्छ बनवासी के कारण उसे ठुकरा रही है। रावण इस निरादर को सहन नहीं करेगा, इसलिये तुझे एक अवसर और देता है।

सीता—(चारों ओर देखकर) क्या वन में अकेली स्त्री को देख कर बल प्रयोग करोगे ? क्या ऐसा होता देख कर पृथ्वी और आकाश कम्पित नहीं हो जायेंगे ? क्या पतिव्रता का पातिव्रत उस की रक्षा नहीं करेगा ?

दशग्रीव—(अट्टहास करके) जो कार्य्य सीधी अंगुली से न हो उसे टेढ़ी उंगली से कर लिया जाय तो क्या बुरा है ? जनक-नन्दिनी ! जिस पातिव्रत की चर्चा तुम कर रही हो उसके विनाश से यदि पृथ्वी और आकाश हिलने लग जाते तो शायद प्रातः से सन्ध्या तक भूकम्प ही आते रहते । इसलिये इस स्वप्न को त्याग दे और इस सत्य पर विचार कर कि पृथ्वी और सागर का स्वामी दशग्रीव आज तुम्हारे चरणों में अपना सर्वस्व न्योछावर कर रहा है । घर आई लक्ष्मी का निरादर मत कर ।

सीता—जिस पृथ्वी और आकाश पर तेरे जैसे कामी का अधिकार है सीता उस पर थूकती भी नहीं ।

यह कह कर उसने वेगपूर्वक भागना आरम्भ कर दिया । यह देखकर दशग्रीव ने अट्टहास करते हुए कहा, "जनकनन्दिनी ! अभी भागने में स्त्रियां पुरुषों से बढ़ नहीं सकीं" यह कहा और उसके पीछे दौड़ कर उसे भुजा से पकड़ लिया । भुजा पर हाथ पड़ते ही सीता के नेत्र रक्तमय हो गये । और उसने जोर से झटका देकर कटार दिखाते हुए कहा "सावधान ! जो हाथ आगे बढ़ाया तो उसे शरीर से अलग पाओगे ।"

दशग्रीव भी कच्ची कौड़िया नहीं खेला था । उसके एक ही

प्रहार से क्षण भर में सीता के हाथ की कटार उड़ कर दूर जा गिरी। अपने आपको निःशस्त्र पाकर जानकी फिर भागी, परन्तु सफल न हुई, और दशग्रीव ने उसे पकड़ और उठा कर बलात रथ में डालते हुये कहा—"दशग्रीव की भगिनी का निरादर किया गया उसका प्रतिकार लिया जाना चाहिए, और लिया जायेगा। रावण ने अपना अपमान करने वाले को कभी क्षमा नहीं किया।"

विवश होकर सीता ने रामजी का नाम लेकर पुकारना आरम्भ किया तो दशग्रीव ने कहा :—

दशग्रीव—जनकनन्दिनी! यदि राम इस समय तुम्हारी रक्षा के लिये कहीं से निकल आये तो तुम निश्चय दशग्रीव को मनुष्य नहीं गदहा कह सकती हो। पगली! क्या तेरी बुद्धि में नहीं आया कि यदि इस स्थान पर किसी मनुष्य के आने की सम्भावना होती तो दशग्रीव तुझ पर हाथ डालता? ले भली प्रकार श्रवण कर, तेरा वनवासी राम अपने भ्राता लक्ष्मण सहित मेरे सेनापति मारीच के साथ युद्ध कर रहा है, और जब लग राम या मारीच में से एक अन्त नहीं हो जाता उनमें से कोई भी यहाँ नहीं पहुँच सकता। इस समय इधर आने के समस्त मार्ग रुके हुए हैं और जब तक तुम्हें सहायता मिले दशग्रीव का रथ इस स्थान से कोसों दूर होगा।"

यह शब्द सुनकर सीता को वास्तविकता का ज्ञान हुआ और उसने दशग्रीव से कहा :—

सीता—दशग्रीव! तुम कोई भी हो, स्मरण रखो पतिव्रता

का शाप तुम्हारे कुल के विनाश का कारण होगा ! राक्षस वंश तेरे पाप के कारण जगत् से उठ जायेगा ! राम पत्नि के अपमान से विश्व में भूकम्प आ जायेगा !!!

दशग्रीव—(बात काटते हुए) जनक सुता ! इस विषय में निश्चिन्त रहो। दशग्रीव जानता है कि राम-रावण के युद्ध का परिणाम क्या होगा ? इसीलिए वह तुझे लिए जा रहा है क्योंकि वह नहीं चाहता कि भारत पर आक्रमण करने में अपनी शक्ति का व्यर्थ व्यय करे। तुम्हें हरण करके वह तुम्हारे स्वामी राम को सागर पार लङ्का प्रदेश में निमन्त्रित कर रहा है। वहाँ पहुँच कर देखेंगे कि राक्षस कुल का विनाश होता है या सूर्य कुल का ! मेरा मन कह रहा है कि नाश दूसरी ओर होगा।

* *

"लक्ष्मण यह क्या ? यहाँ पर तो मानव रक्त बहा है ! यहाँ तो युद्ध के चिन्ह दीख पड़ते हैं !!"

लक्ष्मण—यह देखिये एक रथ टूटा पड़ा है ! रथवान मरा पड़ा है ! रथ के गर्दभ जान तोड़ रहे हैं ! चारों ओर शस्त्र बिखरे पड़े हैं !

राम—यहाँ तो किसी स्त्री के पांव के चिन्ह भी दिखाई देते हैं। जान पड़ता है वह इधर को भागी २ गई होगी। फिर यह लौटने के चिन्ह हैं, नहीं २ यह किसी पुरुष के बड़े २ पाओं की छाप हैं। यह क्या बात है ? भाई, तनिक शीघ्र चलो, जानकी कुटिया में हो, मेरा हृदय धड़क रहा है !

लक्ष्मण—वह देखिये एक ओर एक मनुष्य घायल पड़ा है ! यह कौन है ?

आगे बढ़े तो राम के मुख से चीख निकल गई। घायल मनुष्य वृद्ध जटायु था। उसे एक नहीं अनेक घाव लगे थे, और अधिक रक्त श्राव से मूर्छा आ गई थी। राम और लक्ष्मण ने उसे उस अवस्था में देखा तो भाग कर उसका सिर गोदी में उठा लिया और रामजी के मुख से निकला "तात ! तात जटायु ! तनिक नेत्र तो खोलो ! यह क्या बात है कुछ बताओगे या नहीं ?"

शब्द सुनकर जटायु ने नेत्र खोले और वह कुछ काल तक टकटकी बांध कर उनके मुख की ओर ऐसे निहारता रहा मानो पहचान रहा है। फिर उसके अधरों पर हल्की सी मुस्कान प्रगट हुई जब राम ने फिर कहा "तात ! तात ! क्या अपने राम और लक्ष्मण से बोलोगे नहीं ?

जटायु—(धीरे से) बोलूँगा क्यों नहीं ? इसीलिये तो इस समय तक जीवित हूँ (लक्ष्मण से) लक्ष्मण ! थोड़ा सा जल ! कण्ठ शुष्क हो रहा है।

लक्ष्मण भागे और कुछ क्षणों में वस्त्र का एक किनारा भिगोकर लाए और उसके कण्ठ में निचोड़ने लगे। जल के कण्ठ से नीचे उतरते ही जटायु के शरीर में गति सी प्रतीत हुई, उसने दोनों भ्राताओं से कहा, "मुझे क्षमा करना, मैं अपने धर्म का पालन न कर सका।"

राम—तात ! बात क्या है, किसने आपको घायल किया है ?

कौन हमारी अनुपस्थिति में आपके दुःख का कारण बना है ?

जटायु—सारी कथा सुनकर तुम्हें दुःख होगा। जानकी जी आपके पीछे बनदेवी वासन्ती के यहां चली गई थीं, उन्हें लौट कर आते हुए मार्ग में......राक्षस ने हर लिया ..... मैं साथ नहीं था ......उनके आने में विलम्ब हुआ जान कर उन्हें लिवाने को जा रहा था, जब देवी जी के चीत्कार का शब्द श्रवण-गोचर हुआ ! भागा तो देखा कि एक रथ उड़ा जा रहा है जिसमें राक्षस के हाथ में पड़कर जनक-नन्दिनी विलाप कर रही हैं।

जटायु मौन हुए, उनके शब्दों ने राम की आकृति में असाधारण परिवर्तन कर दिया। उन्हें चुप देखकर रामजी ने कहा, "तात ! जो कुछ कहना हो कह दीजिये, समय थोड़ा है और आपके शब्द अमूल्य"

जटायु—थोड़ा जल (अधरों पर जिह्वा फेर कर) यह शुष्क हो रहे हैं।"

लक्ष्मण जी फिर दौड़े। वह देख रहे थे कि जटायु के शरीर से प्राण-पखेरू शीघ्रता से निकल रहे हैं, और वह उससे सब कथा सुनना चाहते थे।

जल के घूंट अधरों पर लगे तो जटायु ने कहा, "मैंने दुष्ट राक्षस को ललकारा और उसके रथ पर आक्रमण किया। उसके गदहे मार दिये, सारथी के प्राण लिये, स्वयं उसे बुरी तरह घायल किया, रथ को नष्ट किया। सीता जी भागीं, परन्तु जिस समय मैं घायल होकर गिरा राक्षस ने जानकी जी को पकड़कर विमान में डाल कर रस्सियों से बांध लिया। रामजी ! आप उस समय

निकट न थे, मेरा शरीर वृद्ध था। हाय! उस समय मेरा वायुयान समीप होता तो शरीर में जीवन रहते उसे न जाने देता।"

यह कहते २ जटायु पर मूर्च्छा छा गई। लक्ष्मण जी ने वस्त्र को फिर निचोड़कर उसके मुख पर जल छिड़का तो जटायु ने कहा "राम! तुम्हारा शत्रु......दशग्रीव......लंकापति ...रावण...... दक्षिण दिशा को......

अन्तिम हिचकी आई और अमर आत्मा स्थान-स्थान से टूटे हुए जर्जर शरीर को सदैव के लिये त्याग गया।

जटायु के वृद्ध शरीर को प्राणहीन देखकर राम को पिता दशरथ का स्मरण हो आया, और उन्होंने लक्ष्मण से कहा, "लक्ष्मण! पिताजी के पुराने मित्र जटायु आज हमारी रक्षा करते हुए चल बसे। हमने पिता जी का अन्त्येष्टि संस्कार नहीं किया था, अब जटायु जी का मृतक संस्कार अवश्य करेंगे।

कबन्ध पर आक्रमण

सारे जनस्थान और दण्डक वन में भूचाल-सा आ गया जब यह समाचार सर्वसाधारण तक पहुँचा। सीताहरण न केवल उसके पति का ही अपमान था बल्कि जनस्थान और दण्डक, नहीं २ सारे भारतवर्ष को एक खुला चैलेंज (Challenge) था। इसलिये जिसने भी इस समाचार को सुना उसने उसे अपना निजी अपमान समझा। नगर २, ग्राम २, कसबे २ में इसके सम्बन्ध में सभाएं हुई और सब पंचायतों में यह निर्णय किया गया कि इस अपमान को लेटे हुए सहन करना असम्भव है। इस का प्रतिकार होना चाहिये। पंचवटी में श्री रामजी की कुटिया इस सारे प्रदेश की राजधानी बन रही थी। वहां पर एक भारी सभा एकत्रित हुई, जहाँ पर इस विषय के सब अंगों पर विचार किया गया कि दशग्रीव किस मार्ग से और क्यों कर जनस्थान में पहुँचा ? क्योंकि सागर तट और गोदावरी तीर पर सख्त पहरा था और वहाँ से कोई भी राक्षस पहरेदारों की आज्ञा के बिना नहीं जा सकता था, और यह निश्चित था कि पिछले दिनों में कोई नाव इधर से नहीं गई। परिणाम यही जान पड़ता था कि वह आकाश मार्ग से इस प्रदेश में पहुँचा, क्योंकि उसके राज्य और भारतवर्ष के मध्य में एक भारी समुद्र था और फिर मार्ग दूर का

और दुर्गम था। परन्तु युद्ध क्षेत्र में उसका रथ टूटा हुआ मिला था, उसमें गदर्भ जुते हुए थे, और उसका रथवान राक्षस जाति का एक मनुष्य था। यह सत्य था जो उस विचार के विरुद्ध साक्षी देता था।

अत्यन्त सोच विचार के पश्चात् बुद्धिमान सभासद इस विचार पर पहुँचे कि निस्सन्देह दशग्रीव आकाश मार्ग से लंका से आया था, उसके साथ उसका सेनापति मारीच भी था, जिसने आसपास के राक्षस प्रदेशों से सहायता लेकर जनस्थान पर आक्रमण किया, और इसी बीच में दशग्रीव इसी प्रदेश से रथ और रथवान लेकर अकेली आती हुई जनक नन्दिनी को बल पूर्वक उठा कर ले जाने में सफल हुआ। परन्तु उसका वह रथ तोड़ दिया गया। तत्पश्चात् उसने वायुयान का प्रयोग किया।

इस परिणाम पर पहुँचने के पश्चात् दूसरा प्रश्न यह था कि किस व्यक्ति से उसे सहायता मिली? इस सम्बन्ध में अन्तिम निश्चय यह हुआ कि जनस्थान के पश्चिम की ओर जिस राक्षस बस्तीपर कबन्ध राक्षस का अधिकार है वहीं से दशग्रीव और मारीच को सहायता मिली है। इसलिये उसका विनाश करना आवश्यक है।

इसलिये कबन्ध के प्रदेश पर जो क्रौंच वन को लांघ कर मतंग आश्रम के इस ओर एक पहाड़ी के समीप स्थित था, आक्रमण हुआ। इस आक्रमण में पहिले तो एक राक्षसी और फिर कबन्ध विकट रूप में घायल हुए। उसकी दोनों भुजायें राम और लक्ष्मण के खड्ग के प्रहारों से कट गयीं। विवश होकर उसे पृथ्वी पर पड़ा देखकर

लक्ष्मण ने उससे पूछा, "कबन्ध! कहो तुमने हमारे शत्रु की सहायता क्यों की" ?

कबन्ध—आप कौन हैं ? आपका शत्रु कौन था ?

लक्ष्मण—यह भी नहीं जानते और इस बन पर अधिकार जमा रहे हो ? तुम्हें ज्ञात नहीं कि इक्ष्वाकु कुल सूर्य महाराज दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र श्री रामचन्द्रजी हैं, जिन्होंने भारतवर्ष से राक्षसों की राक्षसी माया को दूर करने की शपथ खाई है। दण्डक और जनस्थान आज इनके नाम से गूंज रहे हैं। मैं इनका कनिष्ठ भ्राता हूं जिसे लोग लक्ष्मण कहते हैं।

कबन्ध—(उठने का यत्न करते हुए) कबन्ध चरणों में शीश झुकाता है। अज्ञान में भूल हुई। क्षमा चाहता है।

लक्ष्मण—कबन्ध! पंचवटी के स्थान पर एक सखी के यहाँ से आते हुए हमारी महारानी वन में लुप्त हो गई। महाराज उस समय जनस्थान से बाहर थे, इसलिये यह निश्चय नहीं हो सका कि वह कौन रूप था जिसने महारानीजी के शरीर पर हाथ डाला ? परन्तु उसका वाहन तुम्हारे देश का रथ था और तुम्हारा सारथी उसे हाँक रहा था, यह निश्चित है। क्या तुम हमें उसका नाम और परिचय दे सकते हो ?

कबन्ध—(कुछ सोचते हुए) इस सम्बन्ध में मुझसे कुछ न पूछिये। मैं कुछ जानता हूँ, कुछ नहीं जानता, पर जो जानता हूँ वह भी बता नहीं सकता। प्रतिज्ञाबद्ध हूँ। हां एक बात कह

सकता हूँ कि यहाँ से आगे पम्पा सरोवर को पार करने पर आप की एक मनुष्य से भेंट होगी जिससे आपको सब बातों का ज्ञान होगा। आप वहाँ जाइये, बड़ा रमणीक स्थान है। मतंग ऋषि वहाँ तपस्या किया करते थे। अब वहाँ पर उनकी शिष्या शबरी* रहती है। उस स्थान को देखकर आपका चित्त प्रसन्न हो जायेगा।

लक्ष्मण—यह कैसे जानते हो?

कबन्ध—यह भी न पूछिये। घावों के कारण कष्ट बढ़ रहा है, मुझे मरने दीजिये।

लक्ष्मण—तुम्हें बताना होगा कि जिस अज्ञात पुरुष का तुम वर्णन कर रहे हो वह कौन है?

कबन्ध—वह कौन है? वह कौन है? मेरे नेत्र उसे निहार रहे हैं......वह स्वयं दुखी है......वह आपको ढूंढ रहा है... वह आपको ढूंढ लेगा......वह आपकी सहायता चाहता है... वह आपकी सहायता करेगा..... वह वानर......

उसका वाक्य पूरा न हुआ था कि उसका जीवन समाप्त हो गया। राम लक्ष्मण देखते ही रह गये और वह वहां चला गया जहाँ जाते सभी हैं पर जहाँ से आता कोई दृष्टिगोचर नहीं होता।

---

* शबर जाति की एक स्त्री।

राम और सुग्रीव

ऋष्यमूक पर्वत के आगे उसके एक शिखर मलय पर्वत पर वानरराज सुग्रीव अपने मित्रों और सहायकों हनुमान आदि के सहित, जिन्होंने उनके लिये निर्वासन की विपद अपने सिर पर ले रक्खी थी, जीवन यात्रा व्यतीत कर रहे थे। उन्हें राज्य के छूटने का दु:ख नहीं था, क्योंकि उसकी इच्छा कभी उनके मन में उत्पन्न ही नहीं हुई थी। परन्तु विवाहिता स्त्री का छीना जाना उनके जीवन को नरकमय बना रहा था। रोमा के साथ उन्हें प्रेम था, प्रेम ही नहीं, गृहस्थ का जीवन व्यतीत करते हुए यदि यह कहा जाए कि दोनों पति-पत्नी एक प्राण दो शरीर थे, तो अत्युक्ति न होगी। उसी रोमा का जिसने उनके साथ एक नहीं सहस्रों बार अक्षय प्रेम की प्रतिज्ञा की थी और जिसे वह अपने प्राणों से अधिक समझते थे, बलात् छीना जाना उनके आत्मा को नरक अग्नि में जला रहा था। वह जिह्वा से नहीं, पर हृदय से हर घड़ी "रोमा" "रोमा" "रोमा" का जाप करते थे, पर विवश थे। रोमा को शत्रु के हाथों से छुड़ाने के लिये उनसे करते धरते कुछ बन नहीं आता था। वह रातदिन इसी दुःख में कुढ़ते थे। निर्वासन के दिन से उन्होंने उसे किष्किन्धा के महलों से निकाल लाने के सहस्रों उपाय सोचे थे। पर उनमें से कोई सफल न हुआ था। रोमा के प्रेम के कारण ही वह ऋष्यमूक

पर्वत की एक कन्दरा में जीवन व्यतीत कर रहे थे; क्योंकि रह-रह कर उनके हृदय मन्दिर के अन्दर यह आशा उत्पन्न होती थी कि वह रोमा से मिलेंगे और एक बार फिर जीवन का आनन्द लेंगे। इसलिये यद्यपि उस स्थान पर हर घड़ी पकड़े जाने का भय था, पर वह ऋष्यमूक से दूर जाने को उद्यत न थे। उनके मित्रों और सहायकों ने उन्हें कई बार आगे, कहीं दूर, चले जाने को कहा था और सचमुच वह कई बेर दूर, अति दूर, पर्वतों पर, टापुओं में, अन्य देशों में चले गये थे; परन्तु जब भी वह अकेले होते थे रोमा की अवाज उन्हें यह कहती हुई सुनाई देती थी, "प्राणपति! मुझे अत्याचारी के वश में छोड़कर इतनी दूर भाग गये कि मर जाऊं तो भी समाचार न मिले।"

वह इस शब्द को सुनते और किसी न किसी बहाने से ऋष्यमूक पर पहुँच जाते। उन्होंने कई बेर अपने मित्र और मंत्री केसरी पुत्र हनुमान से कहा था, "हनुमान! तुम नहीं समझ सकते, इस पर्वत पर जब किष्किन्धा की ओर से पवन आती है तो मुझे उसके अन्दर रोती हुई रोमा की चीत्कार सुनाई देती है। मैं इस चीत्कार को रोक नहीं सकता, पर कान बंद कर उसे श्रवण करने से रुक भी नहीं सकता"। उनके साथी उनके हार्दिक भावों को समझते थे, इसलिये प्राणों को हथेली पर रक्खे उनका साथ दे रहे थे।

ऋष्यमूक के एक ओर किष्किन्धा का राज्य था, दूसरी ओर मतंग ऋषि का तपस्या स्थान जो मतंग आश्रम और मतंग वन के

नाम से विख्यात था। महर्षि मतंग ने उस स्थान पर कई वर्ष तक घोर तपस्या की थी, और उसी तपस्या का फल था कि यद्यपि ऋषि मनुष्य शरीर को त्याग कर चिरकाल से ब्रह्म-लोक को पधार चुके थे, पर अभी तक भी उस जंगल में सिंह और बकरी एक घाट जलपान करते थे। पम्पा सरोवर में एक ओर वन्य हाथियों के झुँड जलक्रीडा करते थे, तो दूसरी ओर छोटे-छोटे जीव-जन्तु निर्भय होकर नाचते फिरते थे। पुष्पों की सुगन्धि से जंगल महक रहा था। हर ओर पृथ्वी तल पर स्वर्गीय दृष्य दीख पड़ते थे।

ऋष्यमूक के शृंग पर रहने वाले वानरराज को मतंग वन में साधारणतया मौन दीख पड़ता था, पर आज वहाँ से मनुष्य वाणी के शब्द आकाश मण्डल में उठकर उन तक पहुँच रहे थे। उन्हें सुनकर उन्होंने हनुमान से कहा:—

सुग्रीव—हनुमान! आकाश में मनुष्यवाणी के शब्द तैरते हुये आ रहे हैं, मानो कोई महती सेना पम्पा सरोवर के तट पर डेरा डाले पड़ी है, क्या उन्हें सुनते हो? सन्देह है कि वाली को हमारे निवासस्थान का पता चल गया है और वह हमारे विनाश के लिये आ पहुँचा है।

हनुमान—(भली प्रकार सुनने का यत्न करते हुये) महाराज का कथन ठीक है, पर शब्द जो आ रहे हैं वानर भाषा के प्रतीत नहीं होते।

सुग्रीव—इतनी दूर से भाषा के शब्द पहचानते हो?

हनुमान—विचार कुछ ऐसा ही है।

सुग्रीव—यदि स्वयं जाकर ज्ञात कर सको तो अच्छा ही होगा।

हनुमान—जो आज्ञा !

❀ ❀ ❀

मतंग आश्रम में महर्षि मतंग की शिष्या शबरी का जलपान स्वीकार करके और मतंग वन की सैर समाप्त करके राम पम्पा सरोवर का दृष्य देख रहे थे। चारों ओर हरा-हरा फ़र्श बिछा हुआ था। पक्षी भाँति-भाँति की बोलियाँ बोल रहे थे। शीतल निर्मल जल में मछलियां क्रीड़ा कर रही थीं। चारों ओर पुष्प खिल रहे थे। प्रतीत होता था महर्षि मतंग की तपस्या ने अद्भुत रचनाएँ रच दी हैं। रामजी यह देख रहे थे और मौन थे। उनके नेत्रों के सम्मुख वह दृष्य घूम रहा था जब वह जनक-नन्दिनी के साथ मन्दाकिनी के तट पर चित्रकूट पर्वत की तलहटी में बैठे थे और जानकीजी उनसे कमल फूल लाने के लिये आग्रह कर रही थीं।

इस दृष्य को दृष्टि के सामने लाकर वह अपने आप में खोए से गये थे, जब लक्ष्मणजी ने उनके कन्धे पर हाथ रख के कहा:—

लक्ष्मण—भगवन् ! एक विद्वान् महात्मा आपके दर्शन के इच्छुक खड़े हैं।

राम जी का ध्यान टूटा, तो न मन्दाकिनी थी न चित्रकूट ! पम्पा नदी का तट था जो पम्पा सरोवर में प्रवेश कर रही थी। सामने ऋष्यमूक पर्वत के ऊपर मलय पर्वत दृष्टि के सामने था,

जिससे चन्दन की सुगन्धि पवन पर सवार चली आ रही थी।

आगन्तुक ने रामजी के चरणों में प्रणाम करके कहा:—

"मुझे आज्ञा हुई है कि आपका परिचय पूछूं। मेरे नेत्र जो कुछ निहार रहे हैं उससे विदित होता है कि आप दोनों सत्य-पराक्रमी, राजर्षि, तपस्वी तथा कठोर व्रतधारी हैं। आपका शरीर कान्ति से उज्ज्वल हो रहा है। आपकी दृष्टि सिंह-सी, गति वृषभ-सी, भुजायें हस्ती की सूँड जैसी हैं। आपके शरीर से वीरता टपक रही है। प्रतीत होता है धनुष हाथ में लेकर आपने शत्रुओं को नष्ट करने की प्रतिज्ञा कर रक्खी है। आपकी प्रभा से गिरिराज ऋष्यमूक जगमगा रहा है। आपको देखकर प्रतीत होता है कि रवि शशि की जोड़ी इस पृथ्वी को देदीप्यमान करने के लिये यहाँ उतर आई है। कहिये आप मनुष्य हैं या इस रूप में देवता? आपका इस दुर्गम वन में आना कैसे हुआ?"

आगन्तुक बोल रहा था, मानो मुख से पुष्प गिर रहे थे। वाणी ऐसी ललित, भाषा ऐसी शुद्ध, बोलते समय क्या मजाल जो मुख, अधर, नेत्र या किसी अन्य अङ्ग से कोई असभ्य हरकत हुई हो। रामजी उसके मुख की ओर निहार रहे थे। उसका भाषण समाप्त होने पर लक्ष्मणजी से बोले—

राम—भ्राता लक्ष्मण! आपने सुना यह वक्तृता कितनी शुद्ध थी। क्या मजाल जो एक शब्द भी अशुद्ध हो अथवा वाक्य प्रवाह में अटक पड़ी हो। मेरा विचार है कि वक्ता ने ऋग्वेद का अध्ययन तथा यजुर्वेद का अभ्यास किया है, साथ ही सामवेद

का गायन भी किया है। निस्सन्देह यह व्याकरण का पंडित है। मुझे इसकी ललित वाणी अति प्रिय प्रतीत होती है आप इससे प्रेमपूर्वक वार्तालाप करें।

लक्ष्मण—(आगन्तुक से) विद्वान महात्मन्! आपने कोशल देश के स्वामी महाराज दशरथ का नाम सुना होगा। यह उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री रामचन्द्रजी हैं। इन्होंने सर्व प्राणियों को अभय देने तथा दण्डक वन को राक्षसहीन करने के लिये इधर प्रस्थान किया है। मैं इनका कनिष्ट भ्राता हूं जिसे जगत लक्ष्मण कह कर पुकारता है। क्या हम भगवान् का परिचय जान सकते हैं?

आगन्तुक—भगवान् ने वानरराज सुग्रीवजी का नाम श्रवण किया होगा। वह उस सामने वाले पर्वत पर निवास करते हैं। मुझे उनका मन्त्री समझिये। मेरा नाम हनुमान है। सुग्रीव जी के ज्येष्ठ भ्राता महाराज वाली वानर जाति के सम्यक राजा हैं। उन्होंने अपने कनिष्ट भ्राता को राज्य से निर्वासित कर रखा है। इस कारण वह अत्यन्त दुःखी हैं और आपसे मित्रता के इच्छुक हैं।

लक्ष्मण—हमने वानरराज सुग्रीवजी का नाम सुन रखा है। कई स्थानों से उनकी प्रशंसा भी सुनी है। हम भी उनके दर्शन करना चाहते हैं। वह यदि हमसे मित्रता करना चाहते हैं तो हमारी ओर से उसका अपमान नहीं होगा। हमें राक्षस कबन्ध ने बताया था कि वानरराज सुग्रीव बड़े बलवान, बुद्धिमान

तथा समर्थ हैं, वह हमारे कार्य में सहायक होंगे। इसलिये हमें भी उनकी मित्रता की आवश्यकता है।

हनुमान—क्या भगवान् कृपा करके बतायेंगे किस कार्य में वानरराज की सहायता चाहते हैं ?

लक्ष्मण—हम लोग जब वन में आये तो हमारे साथ श्री रामचन्द्रजी की धर्मपत्नि महारानी सीताजी भी थी। पंचवटी के स्थान पर हम लोगों ने कुटिया बना रखी थी। एक दिन हम आश्रम से बाहर गये तो किसी नीच राक्षस ने महारानीजी को हर लिया। उस राक्षस का अभी तक कुछ निश्चयात्मक पता नहीं चला। इसमें हमें वानरराज की सहायता की आवश्यकता है।

हनुमान—वानरराज के धन्य भाग हैं कि शरणागत वत्सल धर्मात्मा श्री रामचन्द्रजी, जिनका जीवन ही भले पुरुषों की सहायता तथा पापियों को दण्ड देने में लग रहा, है उस पर अनुग्रह कर रहे हैं। स्वयं सुग्रीवजी की भी यह दशा है कि महाराज वाली ने न केवल उन्हें राज्य से निर्वासित किया है, वल्कि उनकी स्त्री को भी उनसे छीन लिया है। इस कारण वह अत्यन्त दुखी रहते हैं। कौन जाने आपके चरणों की कृपा से ही उनके भी दिन फिरें। निश्चय उन्हें भगवान् का कार्य करने में अत्यन्त प्रसन्नता होगी।

❀ ❀ ❀

मतङ्गाश्रम के एक भाग में एक छोटी सी सभा हुई। उस में भाषण देते हुए महर्षि अगस्तजी ने कहा :—

"रामजी ! यह सबको ज्ञात है कि दशग्रीव रावण ने सीता जी का हरण किया है, परन्तु आप लोग इस भूल में न रहें कि वह साधारण मनुष्यों की भाँति कामवासना के समुद्र में बहा जा रहा है। इस बात को नीति की दृष्टि से देखो तो पता लग जाएगा कि दशग्रीव बड़ा चतुर नीतिमान है। उसने इस समय जो कुछ किया है वह एक अत्यन्त बुद्धिमान् खिलाड़ी का खेल है। तुमने राक्षस लोगों को दण्डकारण्य से निकाल दिया है। अब उस वन देश में बसने वाले ऋषि मुनि तथा साधारण जनता अपना जीवन निश्चिन्त होकर व्यतीत कर रही है। जनस्थान की राक्षसबस्ती के विजय हो जाने से राक्षस लोगों को विश्वास हो गया है कि अब भारतवर्ष में उनका पैर जमाना कठिन है।

दशग्रीव यदि अब इस देश में अपना अधिकार स्थापन करना चाहे तो उसके लिये दो ही मार्ग खुले हैं। या तो खुले बन्दों आप पर आक्रमण करे, या इस देश को विजय करने की आशा त्याग दे। किसी चतुर खिलाड़ी की भाँति वह ऐसा करना चाहता है कि सर्प भी मर जावे और लाठी भी न टूटे। अर्थात् वह न तो आपके देश पर आक्रमण करके भारत की सम्पूर्ण शक्ति को अपने विरुद्ध करना चाहता है, नहीं भारत की विजय का विचार त्याग सकता है। उसे ज्ञात है कि जिस दिन उसने इस देश पर आक्रमण किया, कोशल, मिथिला आदि देशों के राजा ही नहीं, सारे भारत की सेनाएँ उसको पराजित करने के लिये उठ खड़ी होंगी। उन्हें रोकने के लिये उसे समुद्र पार करके अपनी पूर्ण

शक्ति को भारत में उतारना होगा। इसके लिये जितनी शक्ति की आवश्यकता है उसे आप समझ सकते हैं। वानरराज बाली के साथ उसको घनिष्ट मित्रता है। इन दोनों ने हर कार्य में परस्पर सहायता देने की सन्धि कर रखी है। तो भी इतनी भारी गणना में नौकाओं तथा युद्ध सामग्री का प्रबन्ध सुगम नहीं। इस कारण उसने सीताहरण करके आपको लङ्का द्वीप पर आक्रमण करने के लिये ललकारा है। वह जानता है कि ऐसा करना सुगम नहीं। क्योंकि एक तो आपके मार्ग में वानर राज बाली का राज्य गगन-चुम्बी पर्वत की भाँति खड़ा है। दूसरे अन्य राजाओं के राज्यों के पश्चात् सौ योजन चौड़ा समुद्र उपस्थित है।

दशग्रीव के देश तक पहुँचने से प्रथम आपको अपने मार्ग से इन बाधाओं को हटाना पड़ेगा। तत्पश्चात् उसकी सम्पूर्ण शक्ति को जो एक स्थान में होगी, पददलित करना होगा। हर्ष की बात है कि वानरराज सुग्रीव ने आपको मित्रता का सन्देश भेज कर एक बाधा को दूर करने का अवसर दिया है। यदि आप भाइयों की गृहकलह में वानरराज बाली को अपने मार्ग से हटा सकें तो आधी बाधाएँ दूर हुई समझ लीजिये।

राम—भगवान् का कथन ठीक है। सुग्रीव बाली के अत्याचार से दुखित तथा देश निर्वासित है। बाली ने उसकी पत्नी को उस से छीन कर घृणित कार्य किया है। उसे इस अपराध का दण्ड दिया जा सकता है। यदि सुग्रीव हमसे मित्रता कर लेगा, तो उस मित्रता को निभाने के लिये हम पर उसकी सहायता आवश्यक

हो जाएगी, और यदि दोनों भ्राताओं में झगड़ा हो गया तो हम अपने मित्र की सहायता करेंगे ! यदि उस झगड़े में वानर-राज्य का चित्र-परिवर्तन हो जाए तो निस्सन्देह यह भारत में राक्षस नीति पर बलवान प्रहार होगा।

अगस्त्य—हमारा तात्पर्य यही है। सुग्रीव वानर देश के राज्य तथा अपनी स्त्री को प्राप्त करना चाहता है। बाली राक्षस राज्य का मित्र और इस कारण भारतवर्ष का शत्रु है। सुग्रीव की सहायता करके हम लोग एक ही समय में उसका भला तथा अपनी सहायता दोनों कर सकते हैं, इसलिये इस अवसर को खोना ठीक नहीं होगा।

राम—आपकी आज्ञा का पालन होगा।

❀ ❀ ❀

ऋष्यमूक पर्वत के ऊँचे शिखर पर, विस्तृत आकाश के नीचे, राज्य से निर्वासित तथा राज्य-हीन दो राजाओं में एक संधि-पत्र लिखा गया। किसी पत्र विशेष पर नहीं, किसी लेखनी से नहीं, बल्कि हृदय पत्र पर हृदय के रक्त से, जब एक ने अपना हाथ दूसरे के सम्मुख करते हुए कहा :—

'प्रभु ! मैं वानर हूं, यदि आप मेरे साथ मित्रता करना चाहते हैं तो मेरा यह हाथ फैला हुआ है, आप इसे अपने हाथ में लेकर परस्पर मित्रता का अटूट सम्बन्ध स्थापन करें।

शब्द साधारण थे, पर ऐसे नहीं जो दूसरे के हृदय को पाशबद्ध न कर लेते। उन्हें सुनकर रामजी ने सुग्रीव के हाथ को

अपने हाथ में ले लिया और आवेश से उसे खींच कर छाती से लगा लिया। इस प्रकार दोनों वनवासियों में वह सम्बन्ध स्थापन हो गया जिसे भविष्य में बड़ी-से-बड़ी आपत्ति भी तोड़ने में सफल न हो सकी।

इधर उन दोनों के हाथ तथा हृदय मिल रहे थे उधर हनुमान जी के हाथ दो लकड़ियां को रगड़ कर उन में अग्नि उत्पन्न कर रहे थे, जिसे उत्पन्न करते हुए वह परम पिता परमात्मा से प्रार्थना कर रहे थे कि यह नया सम्बन्ध दोनों की आयु भर स्थिर रहे।

अग्नि को प्रज्वलित देख कर दोनों शूरवीरों ने उसकी प्रदक्षिणा की और उसे साक्षी रख कर एक हृदय तथा एक मन हो गये। उस समय उनके मुखों पर एक तेज था, जो बता रहा था कि वह अग्नि आर्य और वानर जातियों को स्वर्ण सन्धि के साथ इस प्रकार एक कर रही है जैसे साधारण अग्नि दो धातुओं को पिघला कर एक कर देती है, और उस सम्मिलित धातु को देख कर कोई नहीं कह सकता कि उसमें मिश्रण क्या है।

अग्नि को साक्षि रखकर आयु भर के लिये अटूट सम्बन्ध स्थापन करने की यह विधि आज भी हिन्दू-विवाह के पद्धति में उसी भाँति चल रही है, जब दो आत्मायें इस विधि से बिना किसी लिखित के एक बन जाती है।

सुग्रीव और वाली का युद्ध

किष्किन्धा के गली कूंचों में कोलाहल मच गया। सब ओर चर्चा होने लगी कि वानर-राजधानी पर आक्रमण होगया। जातीय निगारे पर डंका बजा। वानरराज वाली सशस्त्र होकर राजधानी से निकले। शूरवीरों के रक्त उबलने लगे। बाँके योद्धा देश तथा जाति की रक्षा के लिये समरभूमि में पहुँच गये। पर ठीक उस समय शत्रु की ओर से यह शब्द वायुमण्डल में गूँजते हुए सुनाई दिये :—

"किष्किन्धा के शूरवीरो! हमारा सामना तुमसे नहीं। हम तुम में से किसी का रक्त बहाना नहीं चाहते! हमें तुमसे शत्रुता नहीं, वैर नहीं, झगड़ा नहीं। इसलिये यदि तुमने पहले वार न किया तो हमको तुम वैसे ही प्रिय रहोगे जैसा हमारा अपना आप। स्मरण रखो कि यह युद्ध दो राजाओं के भीतर नहीं। इस युद्ध में दो जातियाँ परस्पर भिड़ नही रहीं। यह विवाद दो भ्राताओं में है, जिसका निर्णय उन्हीं दोनों को करना चाहिये और करना होगा। इस कारण तुम लोग इसमें हस्तक्षेप करके इसे विस्तृत न करो। यदि तुम इसमें सम्मिलित नहीं होगे, तो हम वानरराज वाली को द्वन्द युद्ध के लिये ललकारते हैं, यदि उसने एक वानर देवी की कोख से जन्म लिया है, तो स्त्रियों की बग़ल में न घुसे रणक्षेत्र में आकर शूरवीरों का सामना करे, ताकि खड्ग यह

निर्णय कर दे कि इस विस्तृत जगत् में, आकाश के नीचे, जीवित रहने का भागी कौन है ?"

आवाज़ वह थी जिसे किष्किन्धा का नर नारी पहचानता था। क्योंकि वानरराज सुग्रीव स्वयं बोल रहे थे। उसे सुनकर वानर-सेना में निस्तब्धता छा गई। पर महाराज बाली गरज उठे—"ठीक कहते हो सुग्रीव! हमारे विवाद में वानर शूरवीरों को अपना रक्त बहाने की आवश्यकता नहीं। यदि तुमने सत्यमेव वानरी के उदर से जन्म लिया है तो आज हममें से किसी को तब तक पीछे नहीं हटना होगा जब तक दोनों जीवित रहें।"

शब्द अभी वायुमण्डल में गूंज ही रहे थे कि कटारों की खटाखट ने दोनों ओर के सेनापतियों को विश्वास दिला दिया कि वीर योद्धा परस्पर भिड़ गए। दोनों की आकृति एक-सी थी, शस्त्र एक-से थे, दोनों एक ही रङ्ग के अश्वों पर सवार थे। देर तक कटार चली, उससे कुछ न बना तो दोनों ने गदा उठाई और लोहकार की अहरन का समय बाँध दिया। यह भी टूट गई तो धनुषबाण की बारी आई, और जब तक तुणीर बाणहीन न हो गये उनकी वर्षा ने वायु का मार्ग रोके रखा।

दोनों ओर की सेना तथा सेनापति यह अद्भुत नाटक देख रहे थे, जो सत्य होते हुए भी कृत्रिम प्रतीत होता था। क्योंकि इतने शस्त्र चले पर दोनों शूरवीरों में से किसी का उत्साह क्षीण नहीं हुआ। कुछ काल पर्यन्त युद्ध हुआ, तत्पश्चात् किसी गुप्त सम-झौते के अनुसार दोनों भ्राता एक दूसरे का रक्त बहाते-बहाते

सुसताने के लिये पीछे हटे और पुनः नये अस्त्र-शस्त्र लेकर रणक्षेत्र में आ गए। उस समय सुग्रीव की कटि में रामजी की पहनाई हुई पुष्पमाला उसे बाली से भिन्न रूप में प्रकट कर रही थी।

युद्ध फिर घमसान का आरम्भ हो गया। शूरवीरों के हुंकार से रणक्षेत्र गूंज उठा। दोनों ने अपने-अपने घोड़ों को एड़ लगाई और निमिष मात्र में दो नेजे दोनों के शरीर पर पड़ कर टूट गये। उन्हें निकम्मा देख कर फेंक दिया गया, तो गदायें चलने लगीं। थोड़े समय उनकी खटाखट का शब्द गूंजा। फिर खड्ग चमक-चमक कर चकाचौंध उत्पन्न करने लगे।

इससे भी उद्देश्य पूर्ति न हुई, तो अन्य शस्त्र चलने लगे। अब कभी कोई, कभी कोई शस्त्र चल रहा था। उस समय दोनों सेनाएँ ध्यान से अपने २ सरदार की शूरवीरता को देख कर उस की प्रशंसा कर रही थीं, कि एकाएकी हनुमान एक ओर से आगे बढ़ा और विद्युत्गति से (जिसको देख कर लोग उसे "पवन पुत्र" कहने लग गये) सुग्रीव के घोड़े पर चढ़ कर उसकी बाग मोड़ ले गया। कारण बाली की गदा के वार से मूर्छित होकर सुग्रीव गिरा चाहते थे।

सुग्रीव को क्षेत्र से हटते देख कर बाली ने भीषण नाद करते हुए आदेश दिया, "सावधान! कोई जाने न पावे"। आज्ञा होते ही सहस्रों धनुष दोहरे हो गये। पर अभी उनसे निकले हुए बाण शत्रु तक पहुंचे भी न थे कि वानरराज बाली स्वयं घायल होकर

गिर गए। इसके साथ ही शंख ध्वनि के साथ एक आवाज सुनाई दी "स्मरण रखो! युद्ध दो सेनाओं में नहीं, दो भ्राताओं में था। परन्तु यदि यह खेल दो सेनाओं में ही खेला जाना है तो हम उसके लिये भी तैयार हैं।"

इसका प्रयोजन अभी किसी ने समझा भी न था, कि निकटवर्ती जंगल से सहस्रों सशस्त्र शूरवीरों ने निकल कर धनुष पर डोरी चढ़ाते हुए वानर सेना को घेर लिया।

महाराज बाली बुरी तरह घायल हुए थे, और रक्त के अधिक निकल जाने से उनका शरीर शिथिल हो रहा था। उन्होंने दृष्टि उठा कर चहुँ ओर देखा, पर उनकी समझ में कुछ न आया। इस पर उनके मुख से निकला :—

बाली—क्या कोई हमें बताएगा, यह क्या हुआ है और क्या हो रहा है?

सिरहाने खड़े एक सेनापति ने नेत्रों से अश्रु पोंछते हुए कहा, "श्री महाराज किसी अज्ञात योद्धा के बाण से घायल हुए हैं, और हमारी सेना घेरे में आ गई है"।

वानरराज के नेत्र लाल हो गए और उसने उठने का यत्न करते हुए कहा "क्या कोई इसे नहीं रोकेगा?"

सुग्रीव इस समय तक सचेत होकर भ्राता के पास पहुंच चुका था। उसके मुख से निकला—

सुग्रीव—भ्राता! शोक है कि ऐसा नहीं हो सकता।

बाली—(नेत्र उघाड़ कर) कौन? सुग्रीव! क्या यह बाण जिसने मेरे कवच को तोड़कर अस्थियों को चूर्ण कर दिया है

सुग्रीव का था ? नहीं ! मैं यह मान नहीं सकता ! सुग्रीव की भुजा में वह बल नहीं जो ऐसे मृत्युबाण को छोड़ सके।

सुग्रीव—सत्य कहते हो भाई ! यह बाण आपके कनिष्ठ भ्राता का नहीं। यह श्री रामचन्द्रजी की चुटकी से निकला है।

बाली—(विस्मय से) रामचन्द्र ! कौन रामचन्द्र ?

सुग्रीव—अयोध्यापति महाराज दशरथ के सुपुत्र श्री रामचन्द्रजी आज सुग्रीव की पृष्ठ पर अपना हाथ रख कर उसकी सहायता कर रहे हैं। यदि आज पर्यन्त आपके गुप्तचरों ने आपको यह समाचार नहीं दिया तो यह आपके कर्मचारियों का दोष है।

बाली—(रामजी को निकट आता देखकर) रामजी ! मैं आपके बाहुबल की प्रशंसा करता हूं। पर जहां तक स्मृति काम देती है मैंने आज पर्यन्त आपको कोई कष्ट नहीं दिया, आप से कोई बैर नहीं किया, फिर यह अत्याचार क्यों ? हाय ! यदि मुझे पहिले पता होता कि सुग्रीव की सहायता के लिये कोई भारी सेना आई हुई है जिसके नायक आप हैं, तो मैं भी हृदय की भड़ास तो निकाल ही लेता। तो भी यह दरशा तो दीजिये कि आप सुग्रीव के मित्र थे तो उसके भ्राता के जानलेवा क्यों बने ?

राम—बाली ! बानरराज ! तुम्हारा प्रश्न है कि मैंने तुम पर बाण क्यों छोड़ा ? क्या तुम्हारा आत्मा इसका उत्तर नहीं देता ?

बाली—(सोचकर) बहुत विचार किया पर इस अत्याचार का कारण बुद्धि में नहीं आया।

राम—बानरराज ! तुम्हें दण्ड दिया गया है, उसका कारण

बताना आवश्यक है। सुन लो! तुम ही नहीं दोनों सेनाएं सुनलें। तथा इन सबके मुख से जगत् के अन्य लोग श्रवण करलें, कि राजा लोगों को राज्य इसलिये नहीं दिया जाता कि वह मनो-वाञ्छित कार्य करते फिरें। उन्हें शक्ति का केन्द्र इसलिये नहीं बनाया जाता कि उस शक्ति को दूसरों को भयभीत करके अपनी कामवासना की तृप्ति करें। राजा का जन्म प्रजा की रक्षा के लिये होता है। जो राजा अपने इस धर्म को पूरा नहीं करता उसका यह धर्म उसे जड़ मूल से उखाड़ कर सड़ने के लिये फेंक देता है। प्रजा में उसे दण्ड देने की शक्ति न हो और वह उसे उसके पापों का दण्ड न दे सके; परन्तु परमात्मा सारी शक्तियों के केन्द्र हैं। कोई राजा अपनी शक्ति के बल पर उनकी शक्ति के सामने खड़ा नहीं हो सकता। वह ऐसी अवस्था उत्पन्न कर देते हैं जिससे सम्पूर्ण शक्तियां होते हुए भी पापियों को दण्ड मिल जाता है। ऐसा न हो तो यह जगत् नरकमय हो जाए। इस जगत् में मनुष्यों का जीवित रहना असम्भव हो जाये।

वानरराज! तुमको भूला नहीं होगा, तुमने राज्यसिंहासन पर बैठ कर कितनी पतिव्रताओं के पतिव्रत नष्ट किये हैं। कितनी निष्पाप देवियों को उनकी इच्छा के विरुद्ध नरक की अग्नि में धकेला है। तिस पर भी मुझ से पूछ रहे हो कि तुम पर प्रहार क्यों हुआ?

अरे! जिस दिन तुमने मायावी की स्त्री को उससे छीना था और उस कारण कई वर्ष पर्यन्त राज्य से वञ्चित रहे थे उस दिन

तुम्हें यह चेतावनी दी गई थी कि तुम्हारे पाप अपनी अन्तिम सीमा पर पहुंच गए हैं, उनका फल परिपक्क होकर गिरने वाला है। परन्तु तुमने मायावी का वध करके समझ लिया कि जगत् में अजेय हो गये। मिट्टी का पुतला होते हुए तुमने विश्वास कर लिया कि तुम किसी पाषाण से टक्कर लेकर टूट नहीं सकते। इसलिये तुमने अपने कनिष्ठ भ्राता को निर्वासित किया और उसकी स्त्री को अपनी कामपूर्ति के लिये महलों में डाल लिया! सुन लो! श्रोत्र खोल कर श्रवण कर लो! हमने यदि तुम्हारे हृदय को बाण से बींध कर तुम्हारे प्राण लेने की चेष्टा की है तो इस कारण नहीं कि हम सुग्रीव के मित्र तथा तुम्हारे शत्रु हैं। क्योंकि जैसा तुमने अभी कथन किया, हम तुम में कभी शत्रुता नहीं हुई। हमें सुग्रीव से वार्तालाप में यह भी ज्ञात हुआ है कि तुम सूर्यवंशी हो। हम स्वयं उसी वंश से सम्बन्ध रखते हैं, इस कारण शत्रुता का प्रश्न उत्पन्न ही नहीं होता। तथापि धर्मपालन आवश्यक है। इस समय अयोध्या की राजगद्दी पर सूर्यकुल तिलकमहाराज भरत विराजमान हैं। उनकी छत्रछाया में इस प्रकार के घृणित पापों की ओर से, जो तुम करते रहे हो, नेत्र मूंदने का परिणाम यही होगा कि अन्य जगत् उन्हें अधिक शक्ति से करने लग जाएगा। इस कारण हमने उनके प्रतिनिधि होते हुए तुम्हें दण्ड दिया है। हम पाप के शत्रु हैं, परन्तु पापी को प्रेम करते हैं। पापी से प्रेम इससे अधिक और नहीं हो सकता कि भविष्य में उसे ऐसे कुकर्मों से बचाया जावे। कहो! यदि हमने भूल की है तो विश्वास दिलाने

पर हम उसका प्रायश्चित्त करने को उद्यत हैं।"

रामजी बोल रहे थे और बाली दत्तचित्त से सुन रहा था। रक्त उसके शरीर से निकल कर उसे क्षीण कर रहा था, पर उसका मस्तिष्क ठीक सोचने लग गया था। इसलिये जब उनकी वक्तृता समाप्त हुई तो उसके मुख से निकला :—

बाली—आपने जो कहा मैं उसे स्वीकार करता हूं। अन्तिम समय जब मृत्यु सामने खड़ी है, मैं इन्कार नहीं करूंगा कि मैंने पाप किये हैं और शायद सबसे महान् पाप सुग्रीव की स्त्री रूमा के सतीत्व नाश का है। मुझे उसे अपनी पुत्री समझना चाहिये था और आरम्भ में मैंने ऐसा करने का यत्न भी किया, पर प्रकृति की शक्ति प्रबल थी। मैं कामवासना के सन्मुख निर्बल रहा और आज सारी सेना नहीं सारे जगत् के सन्मुख न केवल मुझे अपने प्राणों से उस पाप का प्रायश्चित्त करना पड़ा है, बल्कि अपने मुख से यह मान कर अपना मुख काला करना पड़ा है। (सुग्रीव से) भाई! मुझे तुमसे यह कहना है कि मेरे पाप का दण्ड उस अभागी को न देना। जो किया मैंने किया उसमें उसका कोई दोष न था...... (मुख ढांप लिया)........(फिर रामजी से) रामजी! मैंने जो किया उसका फल पा लिया, और नहीं तो पालूंगा, परन्तु अङ्गद ....उसका क्या बनेगा?........क्या वह भी मेरे पापों का प्रायश्चित्त करेगा?

राम—वानरराज! तुम्हारे पीछे राज्यसिंहासन पर कौन बैठेगा? यह हमारे कहने की बात नहीं। यह वानर देश की प्रजा

के वश में है, परन्तु जहां तक हमारे तथा सुग्रीव के वश में है हम तुम्हें विश्वास दिलाते हैं कि अङ्गद जैसे तुम्हारा पुत्र है वैसे ही सुग्रीव का है। हम भी उसे उसी दृष्टि से देखते हैं। इस कारण तुम्हें उसकी ओर से निश्चिन्त रहना चाहिये।

बाली—अब मैं निश्चिन्त हो गया। मेरे जीवन का अन्त शान्ति से होगा।

वाली की मृत्यु के पश्चात

वानरराज वाली का अन्त्येष्टि संस्कार हो चुका। उस संस्कार को अवलोकन करके राम और लक्ष्मण विस्मित रह गये, क्योंकि दाहकर्म पूर्ण वैदिक रीति से चन्दन की सुगन्धित लकड़ियों में हवन यज्ञ की मनों सामग्री सहित वेद गायन से किया गया। उस समय उन्हें ज्ञात हुआ कि दक्षिणापथ में अगस्त्य, सुतीक्ष्ण तथा अन्य ऋषि महर्षियों के यत्न से वानर तथा अन्य जातियों में वैदिक धर्म का प्रचार कहाँ तक हो चुका था।

वानरराज के दाहकर्म की अन्तिम क्रिया की समाप्ति के पश्चात् वानर जाति के वृद्धों की एक सभा एकत्रित हुई, ताकि भविष्य के लिये एक नेता चुन लिया जावे जो सुख-दुःख में जाति का नेतृत्व कर सके। इस सभा ने सर्वसम्मति से सुग्रीव जी को अपना राजा चुना। क्योंकि जनता को उनके राज्य प्रबन्ध का पहले से भली प्रकार ज्ञान था।

सभा का प्रस्ताव सुग्रीव जी के सम्मुख रखा गया तो वह दुविधा में पड़ गये, क्योंकि ज्येष्ठ भ्राता के साथ उनके विवाद में राज्यसिंहासन की इच्छा का कोई सम्पर्क नहीं था। पर प्रजा आग्रह कर रही थी, जिसका निरादर करना सुगम नहीं था। इसलिये उन्होंने अपनी स्वीकृति इन शर्तों पर दी—

(१) महाराज बाली के सुपुत्र अंगद को युवराज बनाया जावे;

(२ वानर राज्य दण्डक और जनस्थान के राज्य के साथ, जिसके प्रतिनिधि श्री रामचन्द्र जी थे, स्थायी संधि का निर्णय करे, जिससे दोनों राज्य दुःख तथा सुख में परस्पर सहायक हो जाएं।

इन दोनों बातों पर विचार करने के लिये एक महती सभा एकत्र की गई, जिसमें देश भर के नेता सम्मिलित हुए। इस सभा के सन्मुख सुग्रीवजी के हार्दिक विचारों को रखते हुए हनुमान जी ने कहाः—

"सुग्रीव जी की इच्छा है, कि वानरराज के देहान्त के पश्चात् वानर देश का राज्य प्रबन्ध उनकी महारानी तारा को सौंपा जावे। हाँ जब तक राजकुमार अङ्गद राजनीति के रहस्यों को भली प्रकार समझने में प्रवीण नहीं हो जाते वह ऐसे सब मामलों में जिनमें उनसे सम्मति पूछी जावेगी महारानी जी को अपने विचार बताते रहेंगे। इस भाँति वास्तविक राजा तो अङ्गद जी होंगे, पर उनके निकट के सम्बन्धी होने के नाते महारानी जी तथा सुग्रीव जी उन्हें समय-समय पर सम्मति देते रहेंगे।

इसी प्रकार वह जाति के सन्मुख अपनी यह इच्छा भी रखना चाहते हैं कि वानर राज्य जो इस समय आर्य तथा राक्षस राज्यों के बीच स्थित है, अपना सम्बन्ध आर्य राज्य से जोड़ ले। ताकि भविष्य में इन दोनों राज्यों में युद्ध की सम्भावना न रहे। इस समय सौभाग्य से दण्डक और जनस्थान के राज्य के प्रति-

निधि किष्किन्धा में उपस्थित हैं। उन्हें जाति तथा राज्य की ओर से यह विश्वास दिलाया जाना चाहिये कि वानर राज्य उनका मित्र है शत्रु नहीं।"

इस विषय पर देर तक वाद विवाद हुआ और अन्त में सर्वसम्मति से यह स्वीकार हुआ कि—

(१) वानर राज्य का भला इसीमें है कि वह आर्य राज्यों से मित्रता करे। क्योंकि दो शक्तिशाली राज्यों के बीच स्थित होने के कारण उसका अस्तित्व सदैव चिन्ताजनक रहने की सम्भावना है;

(२) यह आवश्यक है कि जाति तथा देश का नेता वह हो जो बुद्धिमान और नीति निपुण हो, और देश को शत्रुओं से सुरक्षित रखने की शक्ति रखता हो।

(३) सारी बातों पर विचार करके सभा इस परिणाम पर पहुंची है कि—

(१) राजकुमार अङ्गद युवराज बनाए जायँ।

(२) महाराज सुग्रीव राज्य सिंहासन को सुशोभित करें।

(३) यदि महाराज की इच्छा हो तो वह महारानी तारा को सभा (Cabinet) में सम्मिलित कर सकते हैं जिससे राज्य उनके बुद्धिबल का लाभ उठा सके।

इस प्रस्ताव को लेकर वानर वृद्ध महाराज सुग्रीव की सेवा में उपस्थित हुए और उन्हें देश तथा जाति के इस निर्णय के सन्मुख शीश झुकाना पड़ा।

❀　　❀　　❀

राज्य अभिषेक का प्रबन्ध किया गया, और उस आवश्यक कार्य से निवृत होकर किष्किन्धा के राज्य की ओर से पहला काम जो किया गया वह दण्डक और जनस्थान के राज्य के साथ परस्पर दुःख-सुख में मित्रता की सन्धि Offensive and Defensive Alliance करना था, जिस पर वानर मंत्रियों और सुग्रीव जी ने एक ओर से और रामचन्द्र जी ने दूसरी ओर से हस्ताक्षर किये।

इस अत्यावश्यक कार्य के पश्चात् नवीन सन्धि तथा महाराज सुग्रीव जी की इच्छा को सन्मुख रखते हुए यह निर्णय हुआ कि उत्तर में आर्य राज्यों और दक्षिण में राक्षस राज्य की सेवा में दूत भेज कर यह पूछा जावे कि वह नवीन वानर राज्य को मानते और उसके साथ राजनैतिक मित्रता करना चाहते हैं या नहीं? इस प्रश्न के उत्तर को सन्मुख रख कर देश-रक्षा का पूर्ण प्रबन्ध किया जावे।

दूत कार्य के लिये विश्वासपात्र और चुने हुए कर्मचारी भिन्न-भिन्न देशों में भेजने के लिए नियुक्त हुए और सुग्रीव जी ने उन्हें गुप्त आदेश देते हुए अपनी यह तीव्र इच्छा प्रकट की कि वह लोग जिस देश और स्थान में जाएँ, वहां पर यह टोह लगाएँ कि उस देश के किसी स्थान पर महारनी जानकी जी को तो नहीं रखा गया? और यथाशक्ति वर्षा ऋतु से पहले-पहले राजधानी में आकर सब बातों का पूरा ब्यौरा दें।

इन दूत मण्डलियों में सबसे विशेष मण्डली वह थी जो राक्षस राज रावण की सेवा में लङ्का द्वीप में भेजी गई। क्योंकि

यह अधिकतया निश्चित था कि महारानी जानकी उसी की दुर्नीति का शिकार हुई हैं। इसलिये उस मण्डली का नेतृत्व युवराज अङ्गद को देकर उसमें हनुमान, जामवन्त, सहोत्र, शरारी, शरगलम, गज, गवाक्ष, गवै, सुखैन, वृषभ, मैंद, द्विवद, गंधमादन, उल्कामुख, अनंग आदि बड़े-बड़े वानर सम्मिलित किये गये। जाते समय उन्हें वानरराज ने कहा—"आप लोगों के जिम्मे जो सेवा लगाई गई है उसे मैं स्वयं करना चाहता था, परन्तु परस्थिति आज्ञा नहीं देती, इसलिये युवराज जी को इस पर लगा रहा हूं। आप जानते हैं कि राक्षसराज के साथ महाराज वाली के सम्बन्ध किस प्रकार के थे और हम इच्छा रखते हैं कि उस सम्बन्ध में किसी प्रकार का अन्तर न आये। परन्तु दशग्रीव की नीति ने जो उलझन उत्पन्न कर दी है उसे सुलझाना सुगम नहीं। आप को ज्ञात है हम श्री रामचन्द्रजी के कितने कृतज्ञ हैं और आपको यह भी पता है कि हमारी राज्यसभा ने उनके राज्य के साथ किस प्रकार की सन्धि की है? इसलिये यह अत्यावश्यक है कि आप लोग इस उलझन के जो श्री जानकी-हरण से उत्पन्न हो गई है, सुलझाने का कोई उपाय निकालें और यह दशग्रीव के साथ वार्तालाप के पश्चात् ही हो सकता है। पर ऐसा करने से प्रथम यह और भी आवश्यक है कि इस विषय में कोई सन्देह न रहे कि जानकीजी को दशग्रीव ने ही हरण किया है और वह लंका में उपस्थित है। यह निश्चय हो जाने पर आप समयानुसार कार्य करें।"

उत्तर में दूतमण्डली की ओर से हनुमान ने कहा "श्री महाराज ने जो कथन किया, हमारे हृदयपट पर अंकित हो गया। श्री महाराज और श्री रामचन्द्र जी विश्वास रक्खें कि हम प्राणों पर खेल जायेंगे पर महाराज को मुख तभी दिखायेंगे जब अपने कर्त्तव्य में कृतकार्य होंगे।"

रामचन्द्र जी—हमें आप लोगों पर विश्वास है, और विश्वास ही नहीं निश्चय है कि आप अपने उद्देश्य में सफलमनोरथ होंगे। इसलिये (हाथ से मुद्रा उतार कर) अपना यह चिन्ह देते हैं। यदि किसी समय जानकी जी का पता मिले तो जैसे भी हो उनसे वार्त्तालाप करके उनकी दशा का ज्ञान प्राप्त करना। इस कार्य में यह चिन्ह आपका सहायक होगा, क्योंकि वे इससे परिचित हैं।

* * *

दूत चले गये, तो रामचन्द्र जी ने सुग्रीव से कहा—"वानर-राज ! आप राजनीतिज्ञ हैं। इसलिये आपको अधिक कहने की आवश्यकता नहीं तो भी अब जो आप और हम परस्पर दुःख और सुख में साझी बन गये हैं हमें यह विस्मरण नहीं करना चाहिये कि स्यात अति शीघ्र हमें राक्षसराज्य से भिड़ना पड़ेगा। इसलिये मुझे आपसे यह निवेदन करना है कि आप अपने कोष की ओर ध्यान दें, क्योंकि राजा की शक्ति का केन्द्र उसका कोष है। जिस राजा के पास धन नहीं वह सेना नहीं रख सकता, वह अपने देश में कलाकौशल को प्रोत्साहन नहीं कर सकता, सेना के

लिये अस्त्र-शस्त्र नहीं बना सकता। तात्पर्य यह है कि धन के अभाव में कोई भी शक्तिवर्द्धक कार्य नहीं हो सकता।

सुग्रीव—आपने ठीक कहा। मैंने जिस समय किष्किन्धा को छोड़ा था यहाँ धनधान्य का अभाव न था। भ्राता वाली के सम्बन्ध में मैं यही कह सकता हूँ कि उनमें ऐसा कोई दोष न था जिससे उन्होंने धन गँवाया हो। इसमें सन्देह नहीं वे स्त्रियों पर मरते थे, पर स्यात उन पर उन्होंने कोष नहीं लुटाया होगा। तो भी मैं अभी से कोष की आय-व्यय पर तीव्र दृष्टि रखूंगा। क्योंकि निःसन्देह हमें भविष्य में धन की आवश्यकता होगी।

राम—दूसरी बात यह कि आप अपनी सेना का निरीक्षण करें, ताकि आपको ज्ञात हो जाय कि सेना के पास अस्त्र-शस्त्र हैं या नहीं। अथवा वह युद्धविद्या में प्रवीण है या नहीं। सेनापतियों पर भी दृष्टि डालें और यदि किसी परिवर्त्तन की आवश्यकता हो तो अभी से कर लें। सत्य पूछते हो तो वाली और आपके युद्ध में मुझे वानर सेना ऐसी प्रतीत नहीं हुई कि उसके सहारे राक्षस-सेना से युद्ध किया जाय।

सुग्रीव—यह भी आपने बहुत ठीक कहा है। इस समय राजतिलक के कारण सारे वानर सेनापति एकत्रित हैं, मैं उन्हें देखूंगा, पर आप से भी यह निवेदन करूँगा कि आप उन्हें अपने दृष्टिकोण से निरीक्षण करके उनकी त्रुटियों को दूर करने की ओर ध्यान दें।

राम—हमें इन्कार नहीं। हम चाहते हैं कि वानर और

आर्य सेना दोनों ऐसी हो जांय कि जगत् की कोई शक्ति उनके सन्मुख खड़ी न हो सके। इसलिये यह अत्यावश्यक है कि वह युद्धविद्या में पूर्ण प्रवीण हों, नवीन अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हों, उन्हें प्रयोग में लाना जानते हों और शत्रु के अस्त्रों-शस्त्रों को तोड़ना जानते हों। आपको ज्ञात है कि राक्षस लोग ज्ञान-विज्ञान में अत्यधिक उन्नति कर चुके हैं। उनके यहाँ नवीन अस्त्र बनाने वालों का आदर है इसलिये यदि इन्हें उनका सामना करके सफल होना है तो हमें उन से कुछ पग आगे जाना होगा।

सुग्रीव—यह है तो सत्य पर यह कैसे हो सकेगा ?

राम—मैं जो कुछ कथन कर रहा हूं कल्पना-मात्र नहीं, हमने दण्डक वन में सहस्रों प्रकार के नवीन शस्त्र बनाये हैं और अब भी ऋषि आश्रमों में अनुसन्धान का कार्य यथाविधि चल रहा है, यदि आप अपनी सेना को उन गुप्त शस्त्रों में प्रवीण करना चाहते हैं जो हम लोगों ने बना लिये हैं तो हम अपना कोई रहस्य आपसे गुप्त नहीं रखेंगे। हमने जनस्थान में जटायु जी की अध्यक्षता में आकाशविद्या के भी विशेषज्ञ उत्पन्न कर लिये हैं। शोक है कि जटायु इस समय हमारे मध्य नहीं पर वह अपने पीछे ऐसे शिष्य छोड़ गये हैं जो उनके कार्य को भली प्रकार कर रहे हैं। हमारी इच्छा है कि इस अल्पकाल में जो हमारे सन्मुख है हम वानर सेना को वायु में उड़ने के कार्य में निपुण कर दें। इसके लिये भी आपको प्रबन्ध करना होगा।

सुग्रीव--(आवेश से) यह अवश्य होना चाहिये । यदि वानर सेना को पंख मिल जायें तो कौन उसका सामना कर सकेगा ?

राम—आप आज से ही देश में अस्त्र-शस्त्र बनाने का कार्य आरम्भ कर दें और ज्यों ही सेनायें राजधानी में आयें उन्हें नये अस्त्र-शस्त्र और आकाशमार्ग में विचरने की विधि सीखने पर आग्रह करें। आशा है कि दूतमण्डली के लौटने से प्रथम हम ऐसी शक्तिशाली सेना संगठित करने में सफल होंगे जिसके सन्मुख किसी का ठहरना असम्भव होगा। हम वानर सेना के गुणों को जानते हैं, वह वन के फलफूलों पर निर्वाह कर सकती है, इसलिये युद्ध में उनके लिये अधिक सामान ले जाने की आवश्यकता नहीं होगी। वानर लोग शरीर के हल्के हैं इसलिये आकाश में उड़ान के लिये उपयुक्त हैं। वे बुद्धिमान् हैं इसलिये कठिन अस्त्र-शस्त्रों को सुगमता पूर्वक समझ लेंगे। परन्तु उनके इन गुणों से काम लेने के लिये परिश्रम की आवश्यकता है।

सुग्रीव—निश्चय आप जो कुछ करना चाहते हैं वह मेरी बुद्धि से बहुत परे है।

राम—इतने वर्ष वन में हम लोगों ने जो खाक छानी है, वह इसलिये नहीं थी कि धूनी रमाकर, नेत्र मूंद कर पड़े रहें। हमें वनवासियों को एक बलवान शत्रु के सामने के लिये तैयार करना था। इसके लिये जो जो कष्ट हमें सहन करने पड़े हैं उन्हें हम जानते हैं या वन में रहने वाले वह ऋषि महर्षि, जो इस कार्य के लिये देश के राजाओं महाराजाओं के कृतज्ञ नहीं होना चाहते।

परमात्मा की कृपा है कि हम इसमें सफल हुए, और यदि दशग्रीव जानकी के शरीर पर हाथ न डालता तो हमारा कार्य समाप्त ही हो चुका था। परन्तु प्रतीत होता है इस नई विपद् में भी कोई रहस्य है। स्यात भगवान् की यह इच्छा है कि भविष्य में राक्षस-राज्य की ओर से भारतवर्ष को कोई भय न रहे। उस इच्छा का प्रथम फल आप से भेंट है।

सुग्रीव—मेरा ही नहीं, वानर देश का सौभाग्य है जो आप से भेंट हुई। आशा है कि भावी परीक्षा में हम यह कहने में गर्व अनुभव करेंगे कि हम भगवान् की इच्छा को पूर्ण करने के लिये प्रतिपल प्रस्तुत हैं और रहेंगे।

राम—तथास्तु !

❀ ❀ ❀

प्रस्रवन पर्वत के शिखर से जिस पर राम और लक्ष्मण का वास था, एक जादू का शब्द उड़ा और वानर देश, दण्डक और जनस्थान के विस्तृत प्रदेशों में एक नवीन आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। अगस्त्य आश्रम, सुतीक्ष्ण आश्रम, शरभंग आश्रम, मतंग आश्रम और अन्य छोटे बड़े आश्रमों, नगरों और ग्रामों में हलचल के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे। चारों ओर अस्त्र-शस्त्र पहिले से कई गुणा अधिक तेजी से बनने आरम्भ हो गये। स्थान-स्थान पर स्वयंसेवक वर्षा की उपेक्षा करके अस्त्र-शस्त्रों के अभ्यास, दैनिक परेड और वायुयानों की उड़ान में भाग लेने लगे। वानर राज्य के अनेक प्रदेशों से शूरवीर सेनापति जो अपनी २ सेना के साथ

नव राजा को अपनी राजभक्ति का परिचय देने के लिये आये थे उनके लिये आवश्यक हो गया कि वह धनुर्विद्या के विशेज्ञों से नये नयेअस्त्र-शस्त्रों के बनाने और चलाने और शत्रु के अस्त्र-शस्त्रों को निष्फल करने का कार्य सीखें। इसके अतिरिक्त विशेष शूरवीरों को वायु में उड़ने के कार्य भी सिखाये गये।

परिणाम यह हुआ कि वर्षा ऋतु के मेघ अभी अपनी अन्तिम बूंदे पृथ्वी तल पर गिराकर लोप नहीं हुए थे कि किष्किन्धा के चहुँ ओर मनुष्य-रूपी पक्षी उड़ते हुए दिखाई देने लगे।

किष्किन्धा में एकत्रित हुई सेनाओं के लिये स्थान नहीं था इसलिये उन्हें आज्ञा हुई कि वह नई शिक्षा से लाभ उठाकर नये आने वालों के लिये स्थान खाली करने के लिये दक्षिण की ओर प्रस्थान करके बानरराज की अन्तिम सीमा पर पहुँच जायें, ताकि समय आने पर आगे बढ़ने में सुभीता रहे।

दूत मण्डल की कठिनाइयां

"दक्षिणापथ की अन्तिम सीमा आ गई। सन्मुख अथाह जल ठाठें मार रहा है, जिसका न वार है न पार। न कोई नाव दीख पड़ती है न नौका, अब आगे कहाँ जाना है और किस भाँति? यह प्रश्न हैं जिन पर आप को विचार करना है।" दूत मण्डली के शेष व्यक्तियों को सम्बोधित करके उनके नेता युवराज अंगद ने कहा—

जामवन्त—दशग्रीव की राजधानी और लंका का टापू सागर के उस पार है इसमें सन्देह नहीं। परन्तु विदित होता है हम किसी ऐसे स्थान से, जहां पर नाव ठहरती या चलती हैं, दूर पहुंच गये हैं। अब जब तक ऐसे स्थान पर न पहुंच जांय लंका में पहुंचना असम्भव है।

अङ्गद—चारों ओर दृष्टि डालने से यह भी पता नहीं लगता कि हम कहां खड़े हैं। जब तक यह ज्ञात हो समय और व्यतीत हो जायेगा। (कुछ सोचकर) हमें आदेश था कि वर्षा ऋतु के पश्चात् एक मास के भीतर किष्किन्धा पहुंच जांय। और वह समय हमने दक्षिण के वनों और जङ्गलों में घूमते हुए बिता दिया।

सुखैन—इसमें हमारा क्या दोष। जिन प्रदेशों में कभी पग

न रक्खा था उनमें घूमते हुए मार्ग भूल गये। यही कम नहीं कि प्राण लेकर यहाँ पहुँच गये हैं।

अङ्गद—ठीक है हमें जो-जो कष्ट झेलने पड़े हैं उन्हें हम ही जानते हैं। परन्तु महाराज को इससे क्या? उनकी आज्ञा का पालन तो नहीं हुआ।

जामवन्त—यदि हम अपना कार्य पूर्ण करके जाते तो सम्भव था यह अपराध क्षमा हो जाता। परन्तु अब......... ?

अङ्गद—अब क्या ? एक ओर खारी समुद्र, दूसरी ओर महाराज का क्रोध ! बस दोनों ओर मृत्यु है ! मेरे लिये तो स्यात यह और भी आवश्यक हो जायेगा क्योंकि भविष्य में उनके मार्ग का कंटक दूर हो जायेगा।

हनुमान—(चौंक कर) यह आपने क्या कह दिया? क्या अभी तक अपने चाचा की ओर से आपका मन साफ़ नहीं हुआ ? क्या अभी तक आपको यह सन्देह है कि वह आपको मार्ग का कंटक समझते हैं ? श्री महाराज ! यदि ऐसा होता तो वानरराज स्वयं ही वानर सभा के सन्मुख यह प्रस्ताव क्यों रखते कि आपको युवराज बनाया जाय ? क्या आपको विस्मरण हो गया कि महाराज सुग्रीव ने सिंहासन पर बैठने से इन्कार कर दिया था, जब तक आपको युवराज नहीं बनाया गया ? युवराज जी ! आप ने यह शब्द मुख से निकाल कर निश्चय ही महाराज सुग्रीव से अन्याय किया है। वह तो स्वयं को राजा ही नहीं समझते बल्कि

आपका प्रतिनिधि समझ कर उस काल तक राज्यकार्य को संभाले हैं जबतक आप उसके योग्य न हो जायें।

अङ्गद—हनुमान जी! आपने सत्य कहा, मुझे ये शब्द मुख से निकालने नहीं चाहिये थे। मैं उन्हें वापिस लेता हूं। परन्तु इस सत्य से आप कैसे विमुख हो सकते हैं कि हमारे लिये अब 'न घर के रहे न घाट के' वाली बात है। हम वानरराज के सामने जाकर यह नहीं कह सकते कि हमें दक्षिणापथ से आगे का मार्ग नहीं मिला।

जामवन्त—हमसे तो जटायु ही भला रहा जिसने श्री जानकी जी की रक्षा में प्राण न्योछावर कर दिये।

"जटायु! जटायु! यह नाम किसने लिया है।"

वानरों ने फिरकर देखा तो एक वृद्ध तपस्वी लाठी टेके आ रहा था। उसने आते ही कहा—भाई तुम कौन हो? इस निर्जन स्थान में कैसे आ गये? और तुम जटायु को कैसे जानते हो?

अङ्गद—(प्रणाम करते हुए) हम वानर हैं। वानर देश से आये हैं और राक्षसराज्य की राजधानी लंका में जाना चाहते हैं।

वृद्ध—तुमने मेरे दूसरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। जटायु का नाम तुम्हीं ने लिया था न? तुम उसे कैसे जानते हो?

अङ्गद—जटायु कौशल देश के स्वामी महाराज दशरथ के मित्र थे। उन महाराज के सुपुत्र रामचन्द्र जी दण्डक वन में पधारे थे, जहाँ पर उनकी महारानी जानकी को कोई राक्षस बल-पूर्वक उठाकर ले गया। जटायु उसकी रक्षा में युद्ध करते हुए

थलि हो गये। रामचन्द्र जी उनकी खोज में किष्किन्धा पहुँचे। वहाँ उनकी वानरराज सुग्रीव से मित्रता हो गई। मैं महाराज बाली का पुत्र हूँ। उन दोनों भ्राताओं का परस्पर युद्ध हुआ जिसमें पिता जी श्री रामचन्द्र जी के बाण से घायल होकर सुरपुर सिधार गये। हम लोग महाराज सुग्रीव के राज्याभिषेक का सन्देश राक्षस-राज के पासले जा रहे हैं। आते २ हम बनों में मार्ग से भटक गये। एक दिन क्षुधा पिपासा से बहुत दुःखी थे कि हमें विदित हुआ कि एक गुफा के ऊपर हंस, सारस, बगले आदि जलपक्षी मँडरा रहे हैं। नाना प्रकार के कष्ट सहते हुए उस गुफा में पहुंचे तो भीतर एक सुन्दर सरोवर और फलफूलों से भरपूर वन दृष्टिगोचर हुआ। उसमें एक तपस्विनी का आश्रम था। उसकी कृपा से हमने वृक्षों के मीठे फल खाये, सरोवर का शीतल जल पान किया तो शरीर में प्राण आये। हमारी कथा श्रवण करके उस तपस्विनी ने जिसका नाम स्वयंप्रभा था हमारे नेत्र मूंद कर किसी अज्ञात मार्ग से हमें यहाँ पहुंचा दिया, क्योंकि जब हमने नेत्रों से पट्टियाँ खोलीं तो सन्मुख अगाध जलराशि थी। अब हम न यह जानते हैं कि कहाँ हैं? न यह विचार कर सकते हैं कि लंका में किस भाँति पहुंचे?

तपस्वी ने इस कथा को भली प्रकार सुना, और फिर ठंडा श्वास ले कर कहा—"दशरथ का मित्र जटायु मेरा कनिष्ट भ्राता था। मेरा नाम सम्पाति है। हम गरुड़जी के ज्येष्ठ भ्राता अरुणजी के पुत्र हैं, वायु भ्रमण प्रारम्भ से ही हमारे रक्त की विशेषता है,

गरुड़ जी से अधिक वायु भ्रमण कारी कौन हुआ है। हमने भी इस विषय में चाचा जी की भान्ति प्रसिद्धि प्राप्त करने का यत्न किया और इस प्रान्त में अधिक सीमा तक सफलता प्राप्त करके "गृद्धर" की उपाधि प्राप्त की इस उपाधि की प्राप्ति पर उमंगें और भी बढ़ गईं। एक दिन दोनों भ्राता अपने अपने वायुयानों पर अत्याधिक ऊँचाई पर चले गये। ज्ञात नहीं वह स्थान भूतल से कितनी ऊँचाई पर था, ऊपर जाकर वायु के सूक्ष्म होने के कारण दम घुटने लगा, वायुयान भी जलने लगे और हम दोनों नीचे गिरे। जटायु तो स्यात अगस्त्य आश्रम के समीप गिरा और मैं इस स्थान पर। उस के पश्चात् हम दोनों का मेल नहीं हुआ। यहाँ निकट ही निशाकर ऋषि का आश्रम था, ऋषि सज्जन पुरुष थे, शोक है कि अब वह संसार में नहीं। उन्होंने मुझे कई स्थानों पर जखमी देख कर मेरी परिचर्य्या की। यह उसी परिचर्य्या का परिणाम है कि थोड़ा बहुत चल सकता हूँ। देहान्त से प्रथम ऋषि कहा करते थे कि वानर देश में सुखैन नामक एक प्रसिद्ध वैद्य हैं, यदि उनके पास पहुँच सको तो फिर से नष्ट शक्ति प्राप्त कर सकते हो। पर शरीर में इतनी शक्ति कहाँ थी जो वहाँ तक पहुँच सकता।

अंगद—क्या आप हमें यह बता सकते हैं कि हम कहां पर हैं ?

सम्पाति—यह पर्वत, जो सन्मुख दृष्टिगोचर होता है, दक्षिणी विन्ध्या है जिसे महेन्द्र पर्वत भी कहते हैं। मैं उसी पर्वत पर गिरा

था। इधर यह भारत महासागर है यहाँ से सौ योजन पर लंका का टापू है। इस स्थान पर जहाँ हम खड़े हैं, मीलों तक आपको कोई जहाज अथवा नाव नहीं मिलेगी।'

यह कहकर सम्पाति ने एक दूरबीन अपने नेत्रों पर लगाई और वानर लोगों से कहा—"यह यन्त्र मुझे महर्षि निशाकर की कृपा से मिला था। इस से सैंकड़ों मील की वस्तुयें इस प्रकार दिखाई देती हैं मानों सामने पड़ी हों। मैं इस समय जो कुछ देख रहा हूँ आपके लिये उपयोगी बात है।"

अंगद—वह क्या?

सम्पाति—मेरी दृष्टि लंका नगरी पर पड़ रही है। उस के एक ओर एक उद्यान दीख पड़ता है, जिसके भीतर सुन्दर भवन बने हैं। उस वाटिका में एक ओर एक स्त्री बैठी है, उसके शरीर पर मलीन वस्त्र हैं और उसका उदासीन मुख बता रहा है कि वह वही है जिस को खोज में आप आये हैं, और जिसकी रक्षा में मेरे परम प्रिय भ्राता ने प्राण न्योछावर किये थे। आह! यदि हमें पहले पता होता।

अंगद—किस बात का पहले पता होता?

सम्पाति—एक दिवस की घटना है, इसे दीर्घकाल हो गया, मेरा पुत्र सुपार्श्व अपने वायुयान में सागर पर विहार कर रहा था, जब उसने राक्षस रावण को अपने विमान में जाते हुये देखा। विमान के भीतर एक स्त्री बँधी पड़ी थी, और वह "हाय राम", "हाय लक्ष्मण" पुकार रही थी। यदि हमें पहले ज्ञात

होता कि वह वही देवी है जिसके लिये भाई ने प्राण दिये हैं तो हम भी कुछ हाथ पाँव हिलाते। रावण! रावण! राक्षस राज! आज सम्पाति को ज्ञात हुआ कि उस का तुम्हारी ओर कुछ ऋण है, वह कैसे चुकाया जायेगा? शरीर में तो चलने-फिरने की भी शक्ति नहीं। वानर शूरवीरो! क्या तुम मुझे वैद्य सुखैन के निकट नहीं ले जा सकते?

अंगद—(मुस्कराते हुये) सम्पाति जी! इस वार्त्तालाप के कारण हम और आप मित्र बनते हैं। यदि आप हम को सागर पार करने और लंका में पहुँचने की विधि बता दें, तो हम आपको सुखैन जी के पास पहुँचा देंगे या सुखैन जी को आपके पास ले आवेंगे।

यह कह कर उन्होंने सुखैनजी को पुकार कर कहा, "नाना जी! तनिक सम्पाति जी को देखिये तो (फिर सम्पाति से) यह मेरे नाना श्रीमान् सुखैन जी हैं, जो जगद विख्यात वैद्य हैं। आप के सौभाग्य से यह दूत मण्डली में हमारे साथ आये हैं और कौन जाने आप के हितार्थ ही हम मार्ग भटक गये हैं"

इस अद्भुत सौभाग्य को सुनकर सम्पाति बोला "परमात्मा! तेरी लीला विचित्र है। नहीं तो कहाँ सम्पाति, कहाँ दक्षिणी विन्धया और कहां वानर देश?

सुखैन—(उसके शरीर की परीक्षा करके) सम्पाति! चिन्ता की बात नहीं, अभी अल्प काल में तुम्हें अपने शरीर में नव शक्ति का संचार अनुभव होगा"।

यह कह कर वह वहाँ से उठे और कुछ काल में कुछ वन्य बूटियाँ लेकर आ गये। उन्हें पत्थर की शिला पर रगड़ कर उनका रस सम्पाति के मुख में डाला, और उसे कुछ काल विश्राम करने को कहा।

औषधि को कण्ठ से नीचे उतरे कुछ ही घण्टे हुये होंगे कि वही सम्पाति जो बिना लाठी के नहीं चल सकता था, अपनी टांगों पर खड़ा हो गया और उसके मुख मण्डल पर प्रसन्नता और स्वास्थ्य की झलक आ गई। उस समय उसने वैद्यराज सुखैन के प्रति कृतज्ञता प्रगट करते हुये कहा "भगवान् ने मुझे जो नया जीवन दिया है उसके लिये मैं कैसे उऋण हो सकता हूँ ?"

सुखैन—हम लोगों को सागर पार करने की विधि बता कर !

सम्पाति—(कुछ सोच कर) सुपाशर्व नहीं है, परन्तु उसका वायुयान महेन्द्र पर्वत के शिखर पर है। उसमें केवल एक ही व्यक्ति बैठ सकता है। क्या आपमें से कोई उड़ना जानता है ?

इस प्रश्न के उत्तर में गज ने कहा—हमने श्रीरामचन्द्र जी के आने पर ही वायु में उड़ना सीखना आरम्भ किया था। जटायु जी के शिष्य हमें सिखा रहे थे। इतने काल में मैंने दस योजन उड़ने का अभ्यास किया था।

गवाक्ष—मैं बीस योजन तक उड़ सकता हूँ।

शरभ—मेरे उड़ने की शक्ति तीस योजन तक है।

ऋषभ—मैं चालीस योजन जा सकता हूँ।

गन्धमादन—मैं पचास योजन से अधिक नहीं जा सकता।

मैंद—मैं साठ योजन उड़ सकता हूँ।

द्वीवध—मैं सत्तर योजन जा सकता हूं।

सुखैन—मैं अभी तक अस्सी योजन जा सकता हूं।

जामवन्त—वृद्ध हो गया हूँ तो भी नव्वे योजन उड़ने की शक्ति है।

सम्पाति—सागर सौ योजन से कम नहीं।

अंगद—मैंने सौ योजन उड़ने का अभ्यास किया है -

जामवन्त—परन्तु हम आपको अकेले नहीं भेज सकते। आपको भय में डालकर हम महाराज को मुख कैसे दिखायेंगे।

अंगद—दूत के कार्य में भय क्या है?

जामवन्त—परन्तु जानकी जी का पता निकालना और उन्हें श्रीरामजी का संदेश देना सुगम नहीं। इस में जोखम है।

यह कह कर उसने चारों ओर देखा तो हनुमान जी मौन बैठे सब कुछ सुन रहे थे।

जामवन्त—हनुमान जी! आप मौन हैं। निःसन्देह आपमें वह शक्ति है कि इस जैसे कई समुद्र पार करके लौट आयें। इसी कारण तो लोग आपको पवन् पुत्र कहते हैं। क्या आप इस कठिन कार्य को अपने सिर पर न लेंगे?

हनुमान--(उठकर अंगड़ाई लेते हुए) निस्सन्देह वानरराज सुग्रीव और महाराज रामचन्द्रजी की आज्ञा पालन में हनुमान समुद्र को फाँद कर लंका के कोने-कोने को छान मारेगा। (सम्पाति से) गृद्धराज ! आप हमें अपना वायुयान दिखाइये (वानरों से) आप इसी स्थान पर मेरी प्रतीक्षा कीजिये। देखें अदृष्ट क्या कुछ दृष्टि के सन्मुख लाता है।

यह कह कर वह सम्पाति के साथ चल दिये।

राजकुमार विभीषण का गृह

"पिताजी ! क्या बात है आप विचार मग्न हैं ?

"कौन ? कला !" राक्षस राज दशग्रीव के कनिष्ठ भ्राता और मन्त्री राजकुमार विभीषण ने चौंक कर कहा।

कला—हाँ पिताजी मैं ही हूँ। मैं देख रही हूं और कितने काल से देख रही हूँ, यह आप को ज्ञात नहीं, आप गम्भीर विचार मग्न हैं और आपका मुख बतलाता है कि जिस बात को सोच रहे हैं उसकी कोई सुलझन आपको नहीं मिली।

विभीषण—(हँस कर) पुत्री तुम बहुत बुद्धिमान हुई जाती हो, तुमने ठीक समझा और ठीक कहा। जो समस्या मेरे सन्मुख है, उसे मेरी बुद्धि पूर्णतया समझ नहीं सकी।

कला—क्या वह कोई गुप्त बात है ? क्या आप उसे मुझे नहीं बता सकते ?

विभीषण—बात गुप्त तो नहीं, राजनीति की अवश्य है। मेरा विचार है तुम मुझे इसमें सहायता नहीं दे सकोगी।

कला—यदि वह बात गुप्त नहीं तो मुझे बताने में हानि क्या है ?

विभीषण—आग्रह करती हो तो सुन लो। कल रात्रि को एक विदेशी वायुयान लंका के ऊपर चक्कर काटता रहा है। प्रथम तो

उसका पता नहीं लगा, परन्तु पीछे हमारी गुप्तचरों की सरदार—तुम्हें ज्ञात है हम उसे लंका कह कर पुकारा करते हैं, और सर्व साधारण कहा करते हैं कि जब तक कोई विदेशी 'लंका' को नीचा नहीं दिखाता, राक्षसराज की राजधानी लंका को कोई भय नहीं—हाँ मैं कह रहा था कि हमारी गुप्तचरों की सरदार लंका ने उसे रोका, और जब वह वायुयान एक विस्तृत स्थान पर नीचे उतरा, तो उसने उसे ललकारा। उस ललकार के उत्तर में बताया गया कि वायुयान का चालक वानरराज्य का दूत है। लंका ने इस पर विश्वास नहीं किया और उसे अपने पत्र दिखाने को कहा। उसका विचार था कि इतने बड़े राज्य का दूत अकेला नहीं आ सकता, उसके साथ उसके कर्मचारी होने चाहियें।

उत्तर में दूत ने कहा, "हमारे पत्र गुप्त हैं, जो राक्षस राज के अतिरिक्त और किसी को नहीं दिखाये जा सकते, उन्हें अन्य व्यक्ति को दिखाने की आज्ञा नहीं"। इस पर लंका के मुख से अपशब्द निकल गये! दूत को भी क्रोध आ गया, और उसने एक थप्पड़ लंका के मुख पर जड़ दिया, जिससे उसके कुछ दांत टूट गये और वह रक्त से लथ-पथ हो गई।

कला—(हँसकर) तो इस झगड़े में लंका ने नीचा देखा?

विभीषण—झगड़े को बढ़ता देखकर हमें सूचना दी गई। हमने अवसर को संभालने के लिये आज्ञा दी कि दूत को आदर

पूर्वक अतिथि गृह में पहुँचा दिया जाय, और गुप्त रीति से उसपर दृष्टि रक्खी जाय।

आज प्रातः वह हमसे भेंट करने आया था, क्योंकि तुम्हें ज्ञात है महाराज आखेट के लिये गये हुए हैं, इसलिये जब तक वह लौट कर न आयें, उनका दर्शन नहीं हो सकता। दूत से वार्तालाप में हमें यह विश्वास हो गया है कि वह बुद्धिमान, नीतिनिपुण और शूरवीर है, जिसे वानर राज की ओर से महाराज दशग्रीव की सेवा में कुछ समाचार पहुँचाने के लिये भेजा गया है, क्योंकि वानर राज्य में कुछ ऐसे परिवर्त्तन हुये हैं कि उस सन्धि पत्र में जिस पर दोनों राज्यों ने हस्ताक्षर किये थे किसी परिवर्त्तन की आवश्यकता पड़ गई है।

कला—वहाँ क्या परिवर्त्तन हुआ है ?

विभीषण—सन्धि के समय वानर देश के राजा महाराज बाली थे। वह महाराज दशग्रीव के मित्र थे और दोनों राज्यों में सन्धि का सार यह था कि वे शान्ति और युद्ध दोनों में एक दूसरे की सहायता करेंगे। महाराज बाली अब इस संसार में नहीं रहे, और राज्य सिंहासन पर उनके कनिष्ठ भ्राता सुग्रीवजी विराजमान हैं। उन्होंने दूत यह ज्ञात करने के लिये भेजा है कि क्या महाराज दशग्रीव पिछली सन्धि पर ही चलते रहेंगे या उसमें कोई परिवर्त्तन चाहेंगे।

कला—इसमें अधिक सोच विचार की क्या बात है? सन्धि दो राजाओं में नहीं, दो राज्यों में हो चुकी है, और

निश्चय महाराज दशग्रीव अब भी उसे उसी भांति आदर से देखेंगे जिस भांति कि पहले देखते रहे हैं।

विभीषण—साधारण अवस्था में ऐसा ही होता है परन्तु इस में एक और उलझन है।

कला—वह क्या ?

विभीषण—दूत के कथनानुसार महाराज बाली प्राकृतिक मृत्यु को प्राप्त नहीं हुए। महाराज सुग्रीव ने उन्हें युद्ध में वध किया है। दूत ने बड़ी सभ्यता से, परन्तु चतुराई और दृढ़ता से अधिक बातें बताने से विरोध किया है, क्योंकि वह उन्हें महाराज के ही कर्णगोचर करना चाहता है। पर अल्पमेधा मनुष्य भी यह समझ सकता है कि सुग्रीवजी को किसी बाह्य सहायता से ही सफलता प्राप्त हुई होगी। ऐसी अवस्था में वह निश्चय अपने सहायक के कृतज्ञ होंगे, और यदि वह सहायक ऐसा हुआ जिसे महाराज दशग्रीव न चाहते हों, तो फिर क्या होगा ? दूसरा प्रश्न यह भी है कि सन्धि पत्र के अनुसार राक्षस राज्य को चाहिये था कि महाराज बाली को उनके शत्रु के विरुद्ध सहायता देता। तो अब जब वानर राज्य ने बाली जी के शत्रु को अपना राजा बना लिया है तो क्या बनेगा ?

कला—बात सचमुच ही टेढ़ी हो गई है। (कुछ सोच कर) पिता जी ! क्या आप महाराज को इस बात पर उतारू नहीं कर सकते कि वह जानकी सीता को उसके पति के पास भेज दें ?

मैं उसके पास जाया करती हूँ, कभी-कभी माता जी भी चली जाती हैं, वह बेचारी बन्धन में इतनी तंग आ गई है कि कभी-कभी तो मुझे जान पड़ता है कि यदि अवसर मिल गया तो वह आत्मघात कर लेगी। अभी अगले दिन वह मुझसे कह रही थी "कला! मुझे कहीं से थोड़ा सा विष ला दे। दश मास मैंने बहुत कष्ट सहे हैं अब अधिक जीया नहीं जाता!" जिस दुःख भरे मन से उसने यह शब्द कहे थे कभी आप वह शब्द सुन लेते। पिताजी! मैं सच कहती हूँ, मैं उसके शब्दों को सुन कर फूट-फूट कर रो पड़ी, और मैंने उसे कहा, "सीते! क्यों इतना घबराती हो! भगवान् जाने उसकी क्या इच्छा है!" उस समय उसने कहा "कले! तू नहीं जानती मेरे भगवान् मुझ से छूट गये! दस मास जिनके तीन-सौ दिन होते हैं, थोड़े नहीं। तब से वह मुझसे छूट गये। और उन्होंने मुझे इस कैद से छुड़ाने के लिये कुछ न किया!! दुनिया आशा पर जीती है, मैं भी आशा पर जीती रही। पर अब यह टूटती जा रही है। मेरी अवस्था इस समय उस तारे की है जो सूर्य मण्डल से टूटे और उसके लिये ठहरने का कहीं स्थान न हो। मैं अब कहाँ जाऊंगी? यह नहीं जानती। लोग ईश्वर का आश्रय ढूंढते हैं। मेरे ईश्वर, मेरे स्वामी, मेरे मालिक जो कुछ भी हैं रामजी हैं। जब उन्हींके चरणों से पृथक् हो गई और उन्होंने मेरी सुध न ली तो मैं अब जी कर क्या करूँगी? अब तो मृत्यु में ही विश्राम दीखता है।"

विभीषण—(बात काटकर) तुमने तो एक लम्बी चौड़ी वक्तृता ही प्रारम्भ कर दी। तुम्हें विदित नहीं, न केवल मैंने बल्कि अन्य कई मन्त्रियों ने भी कई बार महाराज से इस विषय में निवेदन किया है; पर परिणाम जहाँ तक मैं समझ सकता हूँ यह है कि महाराज हम लोगों पर ही सन्देह करने लग गये हैं। पर इसका इस बात से क्या सम्बन्ध, जिस पर हम विचार कर रहे हैं ?

कला—क्षमा प्रार्थी हूं। मेरे मन ने मेरे विचारों को कुछ इस प्रकार उस विषय के साथ जोड़ दिया है कि मुझे उनमें एक सम्बन्ध दीख पड़ता है। सम्भव है मेरा विचार ठीक न हो, पर मेरा मन कहता है कि शायद वह बाह्य शक्ति, जिस का आपने वर्णन किया, सीता के स्वामी रामचन्द्र ही हों।

विभीषण—नहीं! यह कैसे हो सकता है? वह एक वन-वासी .... पर नहीं .... क्यों नहीं हो सकता? यदि वनवासी राक्षस सेना को जनस्थान में पराजित कर सकता है तो क्या वह महाराज बाली को .... पर जनस्थान एक छोटा सा राज्य था, वानर राज्य विस्तृत देश है .... पर जनस्थान को विजय करने के पश्चात् .... हाँ हाँ कला तुमने ठीक कहा......... शायद यही बात है जिसे दूत महाराज के कर्ण-गोचर करना चाहता है परन्तु ....

कला--परन्तु क्या ?

विभीषण—यदि तुम्हारा विचार ठीक निकला, तो भविष्य अन्धकारमय है।

कला—क्या दूत आज ही महाराज दशग्रीव से भेंट कर सकेगा ?

विभीषण--महाराज आखेट के लिये गये हैं यद्यपि वह कभी-कभी रात्रि के समय आ जाते हैं, पर उस समय वह किसी से नहीं मिलते। इसलिये दूत को प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

कला—क्या वह इतने दिन तक ठहर सकेगा ?

विभीषण—वह शीघ्रातिशीघ्र लौट कर जाना चहता है। वह बताता है कि उसके साथी सागर तीर पर दूसरी ओर उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उसकी कथा विचित्र है। उसके कथनानुसार एक बड़ी मण्डली जिसमें युवराज भी थे, इस दूत कार्य के लिये वानर देश से चली थी, पर मार्ग भूल कर सागर तट पर ऐसे स्थान पर पहुँच गई जहाँ कोई नाव न थी। वहाँ उन्हें केवल एक वायुयान मिला जिसमें एक ही मनुष्य बैठ सकता था। इसलिये अन्य मन्त्रियों को वहीं छोड़ कर उनका प्रतिनिधि बन कर यह दूत यहाँ आया है; क्योंकि महाराज के आने तक उसका ठहरना आवश्यक है इसलिये हमने ऐसा प्रबन्ध कर दिया है कि उसे लंका के दर्शनीय स्थानों का भ्रमण करा दिया जाय। बड़े-बड़े सरदारों और मन्त्रियों को भी

यह संकेत कर दिया गया है कि वह उसके आगमन के उपलक्ष्य में भोजादि दें, ताकि उसका समय भली प्रकार व्यतीत हो जाय। आज रात को, अपने यहाँ ही भोज होगा। लंका के समस्त बड़े कर्मचारी उसमें निमन्त्रित हैं। तुम्हें इसका प्रबन्ध करना होगा।

कला—पहले तो आपने इसकी चर्चा ही नहीं की, अब एकाएक ही आज्ञा दे दी। और यदि मैं यह विषय न छेड़ती तो ?

विभीषण—मुझे विस्मृत हो गया था। तुम्हारी वार्त्तालाप में याद आ गया। इसके लिये प्रबन्ध करो, मुझे यह समाचार महाराज तक भेजना है।

लंका भ्रमण

हनुमानजी अतिथि-गृह में निवास कर रहे थे। अतिथि-गृह में जिधर दृष्टि जाती थी, सुनहरा रुपहला सामान बिछ रहा था। कहीं जरीदार मसनद, कहीं सुनहरी बिछौने, कहीं चाँदी सोने का सामान। ऐसा प्रतीत होता था लङ्का प्रदेश में स्वर्ण, चांदी की स्थिति वही है जो अन्य स्थानों में लोहे लकड़ी की है। वह इसे विस्मय से देख रहे थे कि बाहर से किसी ने कहा 'भीतर आने की आज्ञा है ?

"आजाइये', हनुमानजी ने उत्तर दिया।

आने वाला भीतर आया। हनुमान जी ने उसे सिर से पांव तक निहारा और हाथ के संकेत से बैठने को कहते हुए कहा—"कहिये।"

आगन्तुक—मैं राजकुमार विभीषणजी की आज्ञा से उपस्थित हुआ हूं। मेरा नाम प्रहस्त है।

हनुमान—प्रहस्त ? यह नाम तो हमने सुना है......

प्रहस्त—श्रीमान् जी ने यह नाम सुना होगा क्योंकि मन्त्रि-मण्डल में से एक इसी नाम से प्रसिद्ध है। परन्तु श्रीमान् जी का सेवक एक तुच्छ मनुष्य है।

हनुमान—राजकुमार जी ने किसलिये आपको भेजा है ?

प्रहस्त—उनकी आज्ञा है कि महाराज अभी कुछ दिन तक आखेट से नहीं लौटेंगे इसलिये इस समय यदि आप उचित समझें तो मैं श्रीमान्‌जी को लंका के दर्शनीय स्थानों के भ्रमण में सहायता करूँ।

हनुमान—हम राजकुमार जी की दूरदर्शिता के लिये कृतज्ञ हैं। निस्सन्देह काम के बिना समय काटना सुगम नहीं।

प्रहस्त—श्रीमान् के मनोरञ्जन के लिये और भी कई प्रबन्ध किये गये हैं। यदि श्रीमान् जी यहाँ के प्रसिद्ध स्थानों को देखने की इच्छा रखते हैं तो सेवक उपस्थित है।

हनुमान—यहाँ पर कौन-कौन से दर्शनीय स्थान हैं ?

प्रहस्त—श्रीमान् जी यहां प्रथम बार ही आये हैं ?

हनुमान—इससे प्रथम आने का सौभाग्य नहीं हुआ।

प्रहस्त—यूं तो यहाँ प्रत्येक स्थान दर्शनीय है। राजकीय भवन, कार्यालय, महल, सराय, राज्य कर्मचारियों के निवास-स्थान, दीवानखाना, छावनी, प्राचीर, नगर के आस-पास की खाई, कोट, उद्यान, वन इत्यादि जिसे चाहें आप देख सकते हैं।

हनुमान—हमारे पास समय अल्प है इसलिये सब स्थान न देख सकेंगे। जो स्थान अति उत्तम हैं उनका नाम लो।

प्रहस्त—अशोकवन......परन्तु.........

हनुमान—परन्तु क्या ?

प्रहस्त—वह वन अति सुन्दर है। उसमें अशोक के वृक्ष भारी संख्या में लगे हैं। उसमें श्वेत पत्थर की कूल चल रही है।

उसके एक ओर आखेट-गृह बना है। महाराज जब मनोरञ्जन के लिये राजधानी से बाहर आते हैं तो उसी गृह में पधारते हैं। दर्शनीय स्थान है पर आजकल किसी को वहाँ जाने की आज्ञा नहीं।

हनुमान—महाराज आखेट के लिये गये हुए हैं, वहाँ ठहरे होंगे ?

प्रहस्त— जी हाँ। उसके अतिरिक्त ....

हनुमान—क्या ? शब्द क्यों रोक लिये ?

प्रहस्त—कुछ नहीं। बस वही बात थी जो आपने कही।

हनुमान— नहीं कोई और बात भी थी जिसे छिपा रहे हो ?

प्रहस्त—जी नहीं, यूं ही जिह्वा से निकल गया था।

हनुमान—हम यहाँ प्रथम बार आये हैं, किसी से मित्रता नहीं, घनिष्ठता भी नहीं। आते ही राजकुमार विभीषण से मिले हैं या इस अतिथि-गृह के कर्मचारियों से। तत्पश्चात् तुमसे मिलना हुआ है यदि ऐसी ही बात है जिसे तुम छिपाना चाहते हो तो हमें तुम्हारा भेद लेने की आवश्यकता नहीं। न बताओ।

प्रहस्त—(कुछ सोचकर) जी नहीं, कोई ऐसी बात नहीं। यूं ही लोगों में किंवदन्ती फैल रही है।

हनुमान—कैसी ?

प्रहस्त—(चारों ओर देखकर) कहते हैं, ईश्वर जाने कहाँ तक सत्य है, जनता की जिह्वा पर है कि अशोकवन की अशोक वाटिका वाले भवन में आजकल महाराज ने एक 'नया शिकार'

रक्खा है उसके कारण वहां सबका आना जाना बन्द है।

हनुमान—शिकार ? क्या महाराज ने कोई सिंह पकड़ रक्खा है जिसके भय ने लोगों का आना जाना बन्द कर दिया है ?

प्रहस्त—जी नहीं।

हनुमान—तो ?

प्रहस्त—कहते हैं (फिर चारों ओर देखकर) कोई स्त्री है !

हनुमान—ओरेम् !

प्रहस्त—सुनते हैं बड़ी सुन्दर है। महाराज उस पर बुरी तरह रीझे हैं। जब भी आखेट के लिये जाते हैं वहाँ अवश्य पहुंचते हैं।

हनुमान—क्या महाराज ने अभी तक विवाह नहीं किया ?

प्रहस्त—महाराज के विवाहों का कौन ठिकाना है ? कौन सी जाति है जिसकी सुन्दरी महाराज की रानी नहीं बनी ?

हनुमान—(विस्मय से) महाराज के बहुत सी रानियाँ हैं ?

प्रहस्त—जी कोई गणना है ?

हनुमान—और यह ?

प्रहस्त—कहते हैं किसी वनवासी की स्त्री थी। महाराज के मन को जँच गई, उड़ा लाये।

हनुमान—उससे विवाह हो गया ?

प्रहस्त—विवाह हो जाता तो महल में न आ जाती। सुना है कि वह मानती नहीं। कई मास बीत गये महाराज बड़े धैर्य और शान्ति से उसे प्रसन्न करने की चेष्टा कर रहे हैं। पर

वह रोती ही रहती है। मानती ही नहीं।

हनुमान—(हँसकर) तो ऐसी रोनी सूरत को लाने का क्या लाभ ? खैर हमें महाराज के कामों से क्या ? अच्छा प्रहस्त भोजनोपरांत हम भ्रमण को चलेंगे। वाहन के लिये कह देना।

प्रहस्त—जैसी आज्ञा श्रीमान् जी की।

❀ ❀ ❀

"भाई हम तुम पर प्रसन्न हैं, आज की सैर बहुत अच्छी रही नगर की खाई वास्तव में दुर्गम है। यदि महाराज की आज्ञा न हो तो उसे कौन पार कर सकता है ?

प्रहस्त—सत्य ही कहा श्रीमान् ने। कोट, प्राचीर, खाई तत्पश्चात् पर्वत और समुद्र इन सबने मिलकर लंका को अजेय बना दिया है।

हनुमान—खाई के पुल कैसी अद्भुत कलाकौशल के नमूने हैं। अभी तो लोग उन पर चल रहे हैं और अभी चाहो तो फाटक चौपट नीचे गिर जायेंगे। शत्रु यदि लांघ रहा हो तो खाई में डूब मरे !!

प्रहस्त—और श्रीमान् जी ने नहीं देखा खाई के पानी के नीचे लोहे के कांटे लगे हैं। पानी पर तैरते हुए कमल फूल उन्हें ढांप रहे हैं।

हनुमान—और छावनी ! कैसे-कैसे बाँके युवक सेना के भूषण हैं। हम तो सचमुच राक्षस सेना पर मुग्ध हुए जाते हैं।

प्रहस्त—क्यों न हो विश्वविजयी सेना है।

हनुमान—तो कल क्या दिखाओगे ?

प्रहस्त – जो श्रीमान् जी की इच्छा हो। मेरे वश में होता तो आपको अशोक वन का भ्रमण कराता। अच्छा यत्न तो करूंगा।

हनुमान—वह तो तुम बता चुके सर्वसाधारण के लिये बन्द है। अब तुम विश्राम कर लो, हमें राजकुमार के यहां भोजन के लिये जाना है, आज तुमने बहुत परिश्रम किया यह लो........ (मुट्ठी में कुछ दे दिया)

प्रहस्त— (प्रसन्न होकर) हम लोग श्रीमान् का ही तो खाते हैं। इसकी क्या आवश्यकता थी।

हनुमान—भाई आज की सैर में तुमने हमें जो विचित्र वस्तुएं दिखाई हैं यह तो उसका साधारण सा पुरस्कार है। अच्छा प्रातः भोजन से प्रथम कहीं और चलेंगे नहीं तो समय, नहीं कटेगा।

❀ ❀ ❀

कुछ दिन बीत गये, हनुमान जी ने लंका के उच्च पदाधिकारियों के निवासस्थान, कलाकौशल के कारखाने, क्रीड़ास्थल, शस्त्रालय, पुष्पक विमान आदि सब देख लिये और वह अपने कमरे में विश्राम कर रहे थे कि प्रहस्त को आता देख कर बोले, "आ गये ? कहो किधर चलोगे ?"

प्रहस्त – (धीमे से) मैंने अशोक वन की सैर का कुछ प्रबन्ध किया है ?

हनुमान—(विस्मय से) वह कैसे ?

प्रहस्त—(चारों ओर देखते हुए) माता जी वहां पर सेविका हैं। उन्हीं से कहा था।

हनुमान—तुम्हारी माता ? वहाँ पर सेविका ? क्या काम है उनका ?

प्रहस्त —(आंखें नीची करके) नये शिकारों को महाराज के लिये तैयार करने के सम्बन्ध में.........

हनुमान—समझ लिया। तो क्या प्रबन्ध किया तुमने ?

प्रहस्त—माताजी कहती थीं यह असम्भव है, अत्यन्त कठिन है; पर मैं पीछे पड़ गया। पता नहीं श्रीमान् ने मुझ पर क्या जादू डाला है—मैंने बहुत आग्रह किया तो अन्त में माताजी ने कहा, "दिन के समय तो असम्भव है कि वहां पक्षी भी पर मार सके; परन्तु यदि तुम्हारे श्रीमान् रात्रि के समय वहां की सैर करना चाहते हों तो शायद मैं सहायता कर सकूं क्योंकि महाराज आज यहां नहीं हैं और शायद रात्रि को वहां न आ सकेंगे।"

हनुमान—(हँसकर) रात्रि को ? क्या अन्धेरे में हमें वन्य जीवों का खाद्य बनाओगे ?

प्रहस्त—इस काम में माताजी अपने प्राणों को जोखम में डाल रही हैं; क्योंकि यदि महाराज आ गये तो न जाने क्या हो जाय।

हनुमान—अच्छा तुम्हारे कथन पर हम अपनी जान को जोखम में डाल देंगे। यद्यपि पराये देश में जहां कोई भी अपना नहीं, ऐसा करना मूर्खता है। (एक भारी रकम उसके हाथों में देते हुए) यदि सत्य ही वह स्थान ऐसा है जैसा तुम वर्णन कर रहे हो तो तुम्हारी माता की कृपा का प्रतिफल देने में हमें इन्कार न होगा।

प्रहस्त—तो चलिये इस समय वन के बाहर की सैर करा दूंगा। उससे श्रीमान् के मस्तिष्क में उसकी भीतरी सुन्दरता का अनुमान हो जायेगा।

अशोक वन में

रात्रि आधी से अधिक व्यतीत हो चुकी थी, चारों ओर अन्धकार और वायु में सन्नाटा था, जब हनुमान जी के कमरे के किवाड़ पर धीमी सी थाप पड़ी। वह जाग्रत थे इसलिये धीरे से दरवाजा खोला तो बाहर प्रहस्त खड़ा था। बिना कोई शब्द मुख से निकाले वह द्वार बन्द करके उसके पीछे हो लिये, और कुछ क्षणों में ही अतिथिगृह की वाटिका के गुप्त द्वार से निकल कर राजमार्ग पर पहुँच गये। अतिथिगृह नगर के बाहर बना था, तो भी जब तक दोनों वहां से एक मील की दूरी पर नहीं पहुँच गये प्रहस्त ने जिह्वा नहीं खोली। तत्पश्चात् जब यह विश्वास हो गया कि निकट अथवा दूर कोई मनुष्य नहीं तो उसने कहा—

प्रहस्त—इसमें सन्देह नहीं जोखम बहुत बड़ी है, पर जब आप उस स्थान को देखेंगे तो आपको मानना पड़ेगा कि लङ्का में राजप्रासादों के पश्चात् यदि कोई स्थान दर्शनीय है तो यही है।

हनुमान—ओ३म्।

प्रहस्त—माता जी के पास यह तालिका है, जिससे वन के एक गुप्त द्वार का ताला खुलता है। जब वह किसी गुप्त कार्य के लिये वन को आती जाती हैं तो यह चाबी उनके काम आती है। आप इसे संभाल कर जेब में रखलें। मैं वन के बाहर

प्रातः तक श्रीमान् की प्रतीक्षा करूंगा।

हनुमान—तो क्या साथ नहीं चलोगे ?

प्रहस्त—दो के जाने में खतरा बढ़ जायेगा।

हनुमान - यदि किसी ने देख लिया तो ?

प्रहस्त—भगवान् न करें ऐसा हो ! परन्तु यदि ऐसा अवसर आ गया, तो इस तालिका को इधर उधर कहीं फेंक देना, नहीं तो मेरी माता जी के लिये अनर्थ हो जायेगा।

हनुमान—(हँसकर) तुम्हारी माँ की प्राणरक्षा हो जाय चाहे हम इस मनोरंजन में अपना सिर कटा दें।

प्रहस्त—वहां पर आप ऐसे भव्य भवन और आकर्षक दृश्य देखेंगे कि पृथ्वीतल पर कहीं न देखे होंगे। भोगविलास में श्री महाराज ने रुपया जल की भांति बहाया है। सत्य ही यदि विलास का महत्त्व कोई समझता है तो वह महाराज दशग्रीव ही हैं।

हनुमान—तो क्या हम वहां पर उस 'नये शिकार' को भी देख सकेंगे ?

प्रहस्त—माता जी का विचार है कि ऐसा सम्भव है। वह बताती हैं कि यह "नया शिकार" और किसी बात को भूल जाय पर समय पर भगवान् की आराधना को कभी नहीं भूलता। सत्य तो यह है कि वह विचित्र स्त्री है। वह रात्रि को नहीं सोती, दिन को कभी ऊँघ ले तो शायद ऊँघ ले। रात्रि भर अपने स्वामी और भगवान् के स्मरण में मग्न रहती है, और सूर्योदय से बहुत प्रथम

अशोक वाटिका में वहने वाली कूल के तट पर भगवान् के ध्यान में मस्त होकर स्वयं को भूल जाती है। उस समय सम्भव है आप उसके दर्शन कर सकें। माताजी कहा करती हैं कि महाराज के हाथों में पहली वार इस प्रकार का शिकार आया है जिसके सामने उन्हें पराजित होना पड़ा है। दस मास हो गये, महाराज ने उसे सैकड़ों प्रलोभन दिये, लाखों सब्जबाग दिखाये, संसार भर के पदार्थ सामने रक्खे, पर पता नहीं क्यों उसके मन पर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा ? महाराज जी ! सत्य तो यह है उसका दर्शन ही उस सारे खतरे का जो आप अपने शिर पर ले रहे हैं मूल्य है। लोग सहस्रों रुपये व्यय करते हैं, सहस्रों कष्टसहन करते हैं और देवी देवताओं की पाषाणमूर्तियों के दर्शन करते हैं, आप तो आज एक जीवित देवी के दर्शन करने जा रहे हैं जो स्वयं ब्रह्मरूप है।

हनुमान—महाराज ने उसे क्यों बंदी बना रक्खा है ?

प्रहस्त—(दुखी हृदय से) माता जी कहा करती हैं "यह देवी राक्षसराज्य को भस्मीभूत करने के लिये यहां लाई गई है। यह राक्षसराज को डस कर उसे जड़ मूल से उखाड़ने के लिये आई है।" वे कहा करती हैं "हमने अपने जीवन में यह प्रथम स्त्री देखी है जिसने काम और कामवासनाओं को तपस्या की अग्नि में जलाकर भस्म कर दिया है। जो पुरुष इस प्रकार की तपस्विनी से वासना-पूर्ति चाहता है, वह अपना शत्रु नहीं तो क्या है ? निःसन्देह वह अग्निशिखा है जो जब भी भड़केगी लङ्का और उसका

स्वामी राख का ढेर हो जायेगा।"

हनुमान—तो उसे किसी ने यह नहीं समझाया?

प्रहस्त—समझाये कौन? कुछ मन्त्रियों ने कुछ कहने का साहस किया पर महाराज की भृकुटी देख कर मौन हो गये। लीजिये गुप्त द्वार आगया. इसे खोलकर भीतर प्रवेश कीजिये। मैं इन झाड़ियों में श्रीमान् के लौटने तक प्रतीक्षा करूँगा।

❀ ❀ ❀

गुप्त द्वार से प्रवेश करके हनुमानजी आगे गढ़े तो थोड़ी दूर चलकर ही अपने आपे में खो गये, क्योंकि प्रकृति और मनुष्य के हाथों ने एक दूसरे की सहायता करते हुए वह समां बांध दिया था कि देख कर प्रकृति की महिमा का अनुभव होता था। वन में चारों ओर विस्तृत राजमार्गों का एक जाल-सा बिछा था जिनके किनारे गगनचुम्बी पेड़ खड़े थे, परन्तु क्या मजाल जो उनकी समानता में कहीं भी अन्तर आया हो। प्रकृति ने पेड़ों को जन्म दिया था, तो मनुष्य के हाथ ने उन्हें नखशिख से संवार कर नयी नवेली दुलहिनों की आकृति दे दी थी। परन्तु हनुमान जी का मन प्रकृति और मनुष्य के कौशल देखने में नहीं था। वह धड़कते हुए हृदय के साथ उस कार्य के लिये अग्रसर हो रहे थे जो उनके लिये सौ योजन समुद्र पाटने का कारण हुआ था। वन में से जाते हुए एक स्थान पर एक कृत्रिम पहाड़ी दृष्टिगोचर हुई। जिसमें से कृत्रिम नदियाँ फूट-फूट कर निकल रही थीं। उस समय चन्द्रदेव उदयाचल से झांक कर इस सारे दृश्य को एक नैसर्गिक

आभा प्रदान कर रहे थे। चान्द के प्रकाश में पहाड़ी में जड़ित रत्न जगमगा रहे थे। आगे बढ़े तो चारों ओर सुनहरी पृथ्वी, सुनहरे पेड़, और उसके आस पास बैठने के लिये स्वर्ण-जटित स्थान उन्हें यह विश्वास दिलाने लगे कि वे स्वयं वसन्त का अवतार बन गये हैं। आगे चलकर एक सुन्दर नदी बह रही थी जिसके तट श्वेत पत्थर के थे। इन किनारों पर जल तक पहुँचने के लिये रत्नों की सीढ़ियाँ बनी थीं। स्थान-स्थान पर बैठने के लिये चौकियाँ थीं। यही वह नदी थी जिसका वर्णन प्रहस्त ने अपनी माता के शब्दों में किया था। नदी के एक ओर भव्य भवन निर्मित हुए थे जिनमें बिजली के कुम-कुमे दर्शकों को चन्द्रमा के पृथ्वी पर अवतीर्ण होने का विश्वास दिलाते थे। यह सब कुछ था, पर निस्तब्धता वह थी कि हनुमान जी का दम घुटा जाता था। एकाएक उनकी दृष्टि बरामदे पर पड़ी जिसमें से एक सुन्दरी मलीन वस्त्र धारण किये बाहर निकल रही थी। उसे देख कर हनुमान जी का हृदय धड़का, और उन्होंने ध्यानपूर्वक उसे देखना आरम्भ किया। वह कुछ क्षण तक देखते रहे, तत्पश्चात् उनके मुख से धीमी सी आवाज़ निकली—"यही हैं, निश्चय यही हैं, माता जानकी यही हैं। श्रीराम जी ने उनके जिन आभूषणों का वर्णन किया था वह सब उसी प्रकार उनके शरीर पर विद्यमान हैं, यद्यपि उन पर मैल की मोटी तह जम गई है।" ये शब्द कहते हुए उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो उनके शब्द समस्त अशोक वन में गूंज गये हैं। क्योंकि वह सुन्दरी, जिसका अद्वितीय सौन्दर्य

उन मलीन वस्त्रों में भी फटा पड़ता था, एकाएक रुक कर वायु में के शब्द को सुनने लगी। हनुमान जी उस समय एक वृक्ष की ओट में थे कि आवाज़ आई—'सीता! देवी! भीतर आजाओ, महाराज दशग्रीव पधारे हैं।"

"वही हुआ जिसका खटका था।" कहते हुए हनुमान जी वृक्ष की शाखाओं का आश्रय लेते हुए उसके ऊपर चढ़कर पत्तों में छिप गये, तो उन्होंने सुना कि एक वृहत्काय परन्तु सुडौल और सुन्दर पुरुष की आवाज़ यह कह रही थी—"सीता! जानकी! मेरी हृदयेश्वरी! कहाँ हो? मैं तुम्हें और केवल तुम्हें देखने के लिये इतनी दूर से आया हूँ और तुम्हारा पता ही नहीं। यह कितना अत्याचार है?"

हनुमान जी ने देखा और इतने दूर से उन्हें ज्ञात हुआ कि सीता जी के शरीर पर कँपकँपी सी छा गई और वह दोनों बाहुओं से वक्षस्थल को ढांप कर नेत्र नीचे करके वहीं की वहीं बैठ गईं। वही आवाज़ फिर गूंजी और हनुमान जी ने यह शब्द सुने। जानकी! क्या अभी तक तुम्हारा हृदय नहीं पसीजा? दश मास हो गये, जब से आकाश से पाताल तक का स्वामी दशग्रीव अपना सर्वस्व तुम्हारे चरणों में न्यौछावर कर रहा है, उसे कब तक वंचित रखोगी तुम?"

सीता के मुख से कोई शब्द न निकला, तो दशग्रीव ने फिर कहा "क्या मुख से बोलना भी बंद कर दिया? जानकी! देखो मैं तुम्हारे साथ बलप्रयोग कर सकता था पर मैंने ऐसा नहीं

किया क्योंकि मेरा सिद्धान्त मुझे यह आज्ञा नहीं देता। मैं जानता हूँ कि प्रेम और वस्तु है बलात्कार और। पाशविक वासनाएं बलपूर्वक पूर्ण की जा सकती हैं पर प्रेम बलात् प्राप्त नहीं होता, क्योंकि वह पाशविक वृत्तियों से ऊपर है।

जानकी—तो रेत में से तेल निकालने का यत्न क्यों कर रहे हो? एक गरीब तपस्विनी के सतीत्व के साथ क्यों खेल रहे हो? निश्चय जो कुछ तुम चाहते हो वह जानकी के पास नहीं है!

दशग्रीव—इन शब्दों के लिये कृतज्ञ हूं, पर ये मुझे शान्ति नहीं देते। मेरा विश्वास है कि असम्भव शब्द बुद्धिमानों के कोष में नहीं है और इसलिये दश मास से तुम्हारे द्वार पर माथा रगड़ रहा हूँ परन्तु दिनों की यह तीन शताब्दियाँ मेरे धैर्य का बन्ध तोड़ रही हैं, अब इसे रोकना कठिन होगा।

जानकी—राजन्! मैं हाथ जोड़ता हूँ मेरा पीछा छोड़ दीजिये। आप दश मास का कथन कर रहे हैं यदि दस सहस्र वर्ष पर्यन्त भी आप अपनी इस अपवित्र इच्छा को पालते जायेंगे तो परिणाम वही होगा जो वन्ध्या से पुत्र पाने के इच्छुक को होता है। जानकी राम की है और राम की ही रहेगी। वह अन्य किसी की न कभी हुई न होगी!

दशग्रीव—राम? क्या अभी तक तुम्हारे मन से उसका ध्यान नहीं गया? भोली स्त्री! दस महीने का समय तुम्हें यह विश्वास दिलाने के लिये पर्याप्त था कि यदि राम जीवित है तो वह तुम्हें

अपने जीवित होने का प्रमाण देता।

जानकी—जीवन में और मृत्यु में मैंने उनका साथ देने की प्रतिज्ञा की है। और यह प्रतिज्ञा मेरे मन पर लिखी हुई है।

दशग्रीव—और इस व्यर्थ प्रतिज्ञा-पूर्ति में यौवन भस्म कर दोगी? सीता! देखो अपने चारों ओर देखो। तुम्हारे संकेत पर आकाश से पाताल तक की वस्तुयें, जिनके लिये संसार के राजा और महाराजा इच्छुक हैं तुम्हारे चरणों में होंगी। तुम्हारी एक 'हां' पर इतना भारी राज्य न्यौछावर हो जायेगा। समझ में नहीं आता वह भूखा तपस्वी तुम्हें क्या दे रहा है?

जानकी—भूखा हो वा धनाढ्य मेरे लिये उसका ध्यान संसार भर के पदार्थों से बढ़कर है।

दशग्रीव—(अट्टहास करके) परन्तु तुम उसके पास नहीं पहुँच सकतीं और तुम्हें उसके पास नहीं पहुंचने दिया जायेगा!! जानकी! सीता! उसके देवताओं को भी यह पता नहीं लग सकता कि तुम कहां हो? तुम्हें उसका ध्यान त्यागना पड़ेगा। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, त्यागना पड़ेगा।

जानकी—उस मनुष्य ने अभी माता के उदर से जन्म नहीं लिया जो जानकी की प्रतिज्ञा को उलट सके।

दशग्रीव—तुम्हारे कथन को मैं एक क्षण में असत्य प्रमाणित कर सकता हूं, पर विवश हूं, वचन दे चुका और तुम्हें एक वर्ष की अवधि दे चुका हूं। एक वर्ष में से दस मास व्यतीत हो गये। आज मैं तुम्हें स्मरण कराता हूं कि अब केवल दो मास अथवा

साठ दिन शेष हैं। यदि इन तीन कोड़ी दिनों में तुमने दशग्रीव के कथन को स्वीकार न किया तो तुम्हें उसका प्रतिफल अपने रक्त से देना होगा। तुम्हारा यह शरीर जिसे दशग्रीव पुष्पशैया पर बैठाना चाहता है उसके भोजन की चटनी बनेगा।

जानकी—दशग्रीव! रावण! तुम पतिव्रता के पातिव्रत की शक्ति से परिचित नहीं हो! वह शक्ति उसकी अस्थियों और चर्म में नहीं उसकी आत्मा के भीतर रहती है। उस आत्मा को विजय करने में तुम समर्थ नहीं।

दशग्रीव—(बढ़ते हुए क्रोध को रोक कर) जानकी! मैं फिर अवसर देता हूं। सोच लो, समझ लो, निर्णय कर लो, दो मास के पश्चात्, साठ दिनों के पीछे, या तो तुम्हें दशग्रीव की आज्ञा माननी होगी अथवा मृत्यु। अन्य तीसरा कोई मार्ग नहीं।

दशग्रीव चला गया तो जानकी जी के रुके हुए भावावेग नेत्रों के मार्ग से बहने लगे। रो धोकर उनका आवेश कुछ कम हुआ तो उनके मुख से निकला "भगवान! सर्वशक्तिमान्! यह दुर्दशा कब तक रहेगी? तीन सौ दिन! तीन सौ दिनों में एक-एक दिन में कितनी बार इस प्रकार का अपमान सहन करना पड़ा है!! देवों के देव! क्या तुमसे यह भूला हुआ है? यह कब तक चलेगा? क्या तेरी शक्तियाँ इस दुरात्मा की शक्तियों के सन्मुख शिथिल हो चुकी हैं?" यह कहते-कहते सीता जी ने दोनों हाथों से मुँह ढांप लिया।

हनुमान जी वृक्ष की शाखाओं में छिपे-छिपे यह नाटक देख

रहे थे। उन्होंने देखा कि दशग्रीव के गमन के पश्चात् उसका संकेत पाकर जानकी की पहरेदार स्त्रियां कभी प्यार और कभी भय से उसे समझाने लगीं। पर रात बहुत बीत गई थी इसलिये ऊंघ भी रही थीं। अन्त में यह कहकर कि "महाराज चलेगये अब विश्राम कर लें" धीरे-धीरे चली गईं।

जानकी अब अकेली थी और वह इसी भांति न जाने कब तक अकेली बैठी रही। फिर उठी, उठकर अंगड़ाई ली और अपने लम्बे केशों को खोलती हुई उस वृक्ष के नीचे पहुंच गई जिस पर हनुमान बैठे थे। उस समय उसके मुख पर किसी परिपक्व संकल्प की झलक थी। वह अपने हाथों से अपने केशों को रस्सी की भांति बट रही थी। वृक्ष के नीचे आकर एक हाथ लम्बा करके उसने सबसे निचली शाखा को हाथ में लिया और यह समझने का यत्न किया कि केश उस तक पहुंच सकते हैं या नहीं।

हनुमान जी ने देखा और क्षण भर में यह बात उन्हें सूझ गई कि जानकी अपने ही केशों के साथ वृक्ष से लटक कर फांसी लेने का संकल्प कर चुकी है। क्योंकि उसके मुख से यह शब्द निकलते सुनाई दे रहे थे! "आज इस प्रतिदिन की कल-कल का अन्त हो जायेगा। रामजी! जीवन में आप मुझ से कितने भी दूर रहे हों पर भविष्य में मुझे आप से परे रखने की शक्ति किसी में भी नहीं।"

इस भीषण संकल्प का पता लगने पर हनुमान जी के मुख से सहसा निकल गया "आत्महनन पाप है! यह नास्तिकता

का चिन्ह है ! !" ये शब्द सुनते ही जानकी जी ने तेजी से मुड़कर चारों ओर दृष्टिपात किया पर वक्ता का पता न मिला। तो उसने कहा "क्या यह मेरे आत्मा की आवाज थी ? क्या मेरे बाह्यश्रोत्र मुझे धोखा दे रहे हैं ?" वह अभी यह सोच ही रही थी कि फिर एक धीमी सी आवाज वायु पर तैरती हुई सुनाई दी। "महाराज दशरथ के सुपुत्र राम राज्य से निर्वासित हुए तो उन्होंने साहस नहीं छोड़ा। भ्राता लक्ष्मण और प्रिय धर्मपत्नी को साथ लेकर वनों में भटकते हुए सहस्रों कष्ट सहे पर आत्मघात पर कटिबद्ध न हुए। दण्डकारण्य में राक्षसों का वध करते हुए उनका धैर्य अटल रहा। चतुर्दश सहस्र राक्षसों के सन्मुख वे न घबराये, जटायु की मृत्यु देखकर उनका क्रोध बढ़ा पर उत्साह नहीं घटा। देवी ! तुम उनसे छिनी, वे तुम्हारी खोज में संसार का कोना-कोना ढूंढ़ चुके, क्या अब जब वे तुम्हारी खोज में सफल होने को हैं आत्मघात करके उन्हें भी आत्म हनन पर विवश करोगी ?"

शब्द अत्यन्त साफ थे, "निश्चय ये इसी वृक्ष में से आ रहे हैं।" जानकी ने यह सोचकर ऊपर नेत्र उठाये, पर पत्तों के भीतर छिपी हुए हनुमान की मूर्ति दृष्टिगोचर न हुई। विवश होकर उसने कहा :—

जानकी—मित्र हो या शत्रु ! देव हो वा दानव ! मनुष्य हो वा गन्धर्व ! सन्मुख आ जाओ ताकि ज्ञात हो कि रामजी के इतिहास को जानने वाले तुम कौन हो ?

उत्तर में हनुमान धीरे-धीरे वृक्ष से उतरे और दोनों

हाथ जोड़कर जानकी के चरणों में गिर पड़े। उन्हें देखकर जानकी शीघ्रतापूर्वक पीछे हटी, और उसके मुख से निकला—"तुम कौन हो ? इस रात्रि के समय तुम्हारा यहाँ क्या काम है ?"

हनुमान—(धीरे से) माता ! आप घबराएँ नहीं। मैं शत्रु नहीं, रामजी और आपके चरणों का सेवक हनुमान नामी वानर हूं। सौ योजन समुद्र लांघ कर आपकी खोज में यहाँ आया हूं।

जानकी ने समझा स्वप्न देख रही है। इसलिये नेत्र मलकर ध्यान से देखती हुई बोली—"वानर ? मैं नहीं समझी। तुम रामजी के चरणों के सेवक कैसे हो ? मैंने तुम्हें कभी नहीं देखा।"

हनुमान—माता आप मुझ पर अविश्वास न करें यह प्राकृतिक है। तो भी मुझे आपसे यह कहना है कि आपके जनस्थान से लुप्त होने के समय से श्री राम और लक्ष्मण आपकी खोज में पृथ्वी और आकाश एक कर रहे हैं। इसी बीच में उनका कबन्ध राक्षस से टाकरा हुआ। उसका विनाश करके वह पम्पा सरोवर पर पहुँचे। उस सरोवर के निकट ही ऋष्यमूक पर्वत है जिस पर इधर आते समय आपने अपने भूषण एक वस्त्र में बाँधकर गिराये थे। उस पर्वत पर हम लोग अपने नेता सुग्रीव जी के साथ निवास करते थे। रामजी जब वहां पहुंचे तो हमने वह आभूषण उन्हें दिखाये। सुग्रीव अपने भ्राता बाली के हाथों, जो किष्किन्धा में वानर देश पर राज्य करता था, दुखी था, क्योंकि उसने उसकी स्त्री को छीन कर उसे राज्य से निकाल दिया था। रामजी की उससे मित्रता हो गई। उन्होंने बाली को मार कर सुग्रीव को वानर

देश का राज्य दिलाया। उन महाराज सुग्रीव का मैं मंत्री हूं, जिसे लोग पवनसुत हनुमान कहते हैं। महाराज सुग्रीव के राज्याभिषेक के पश्चात् वानरराज के समस्त छोटे बड़े लोग देशदेशान्तरों में आपको ढूंढ रहे हैं।

जानकी—शायद तुम सत्य कहते हो। पर इस बात का क्या प्रमाण कि तुम रामजी के भेजे हुए हो?

हनुमान— जेब से मुद्रा निकाल कर जानकी जी के करकमलों में देते हुए) मेरी सत्यता का प्रमाण इस मुद्रा में है।

जानकी जी ने मुद्रा को हाथ में लिया। उसे नीचे ऊपर से देखा। उसके भीतर लगे हुए रत्न को, जिस पर रामजी का नाम अंकित था, ध्यान से पढ़ा। और उसे हृदय से लगाकर चुम्बन करते हुए कहा, "हनुमान! क्षमा करना! मैंने तुम पर अविश्वास किया, परन्तु कष्ट झेलते हुए इतना समय बीत गया है कि अब मुझे अपने आप पर भी विश्वास नहीं रहा।"

हनुमान—माता! मैं सब कुछ समझता हूं। आपने जो कष्ट सहन किये हैं वह शूरवीर से शूरवीर को पागल बना देने के लिये पर्याप्त हैं। पर मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि अब आप के ये दुःख केवल अल्पकालीन हैं।

जानकी—मैं ऐसी सौभाग्यवती कहाँ?

हनुमान—श्री राम और सुग्रीव जी की मित्रता से दण्डक और वानर देश के वासी परस्पर दुःख-सुख के साथी बन गये हैं। पर इस समय तक न तो श्रीरामजी और न ही महाराज सुग्रीव

कुछ कर सकते थे। क्योंकि हमें यह ज्ञात नहीं था कि आप यहाँ हैं? पर अब जब मैं आपके दर्शन करके लौटूंगा तो थोड़े ही दिनों में सेना के दलबादल भारत भूमि से उठकर लङ्का पर छा जायेंगे। उस समय आप देखेंगी कि वह जो आपके कष्ट के कारण बने हैं राज्य भवनों में नहीं रक्त और मिट्टी में लोटेंगे।

जानकी—पर तुम्हें यहां आने कैसे दिया गया? मुझे बताया गया है कि लङ्का नगरी प्रत्येक प्रकार से सुरक्षित है, उसमें प्रवेश सुगम नहीं।

हनुमान—आपने जो कहा वह सत्य है। लङ्का नगरी को उसके स्वामी ने सत्य ही दुर्गम बना रक्खा है। पर बुद्धि बलवान से बलवान तालों को खोल सकती है।

जानकी—और तुमने वह ताले खोल लिये?

हनुमान—कार्य कठिन था परन्तु सुगम होगया। वानर देश के राज्य सिंहासन पर नये राजा के अभिषेक के कारण यह आवश्यक था कि सारे मित्र देशों को इसकी सूचना दी जाय। लङ्का में दूत भेजना और भी आवश्यक था क्योंकि महाराजा बाली के साथ दशग्रीव की मित्रता थी और राक्षस और वानर राज्य ने दुःख-सुख में परस्पर सहायता की सन्धि कर रक्खी थी। इसलिये लङ्कापति से यह पूछना आवश्यक था कि भविष्य में वह सन्धिपत्र पर स्थिर रहना चाहता है या नहीं।

जानकी—और यदि उसने उस पर स्थिर रहने की इच्छा प्रगट की तो?

हनुमान—तो उसे मेरी माता श्री जानकी जी को आदर पूर्वक श्रीरामचन्द्र जी की सेवा में पहुंचा कर उनसे क्षमा मांगनी होगी।

जानकी—(मुस्करा कर) क्या दशग्रीव ऐसा करेगा?

हनुमान—यह बताना उसका कर्त्तव्य है। मेरा कार्य तो उस तक मित्र राज्यों का सन्देश पहुंचा देना है।

जानकी—शरीर में प्राण रहते तो वह ऐसा करने से रहा। हनुमान! तुम नहीं जानते वह कितना हठी और दुराग्रही है।

हनुमान—माता! हम मूर्ख नहीं, जो उससे ऐसी आशा रक्खें। परन्तु नीति कहती है और हम कहते हैं, कि यदि विना रक्त पात के कार्य साधन हो सके तो राक्षस द्वीप का नाश न हो। आप से भूला नहीं कि श्री रामचन्द्र जी विश्व के प्रत्येक प्राणी को अपना रूप समझते हैं।

जानकी—परन्तु मुझे तो वह इतने समय से भूल ही गये हैं!!

हनुमान—ऐसा मत कहो माता! आपने उनको इतने काल से नहीं देखा, परन्तु हम जो अल्पकाल उनके समीप रहे हैं, जानते हैं कि उस शान्त महासागर के नीचे कितने विप्लव उठते रहते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि वह प्रत्येक प्राणी के पास अपने दुःख का वृतान्त सुनाने नहीं जाते, परन्तु जिनको उनके हृदय तक पहुंचने का सौभाग्य प्राप्त है उन्हें ज्ञात है कि वह आपके दुःख से कितने दुखी हैं।

जानकी—(नेत्रों में अश्रु भरकर) आर्यपुत्र मुझ तुच्छ स्त्री के कारण दुःखित हैं ? हनुमान तुम्हें देखकर मेरा हृदय कमल खिल उठा था, परन्तु आर्यपुत्र के दुःख का वृत्तान्त सुना कर तुमने वह सब कुछ भुला दिया।

हनुमान—माता ! अमावस्य की रात्रि बीत रही है। अब अल्पकाल में ही, न आपके, न श्री राम के लिये दुःख का कोई कारण रहेगा। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं आज से एक मास के भीतर वानर सेना लंका के कोट को नष्ट भ्रष्ट करके दशग्रीव के एक क्या दश शिर भी हों तो कुचल कर रख देगी।

जानकी—क्या वानर सेना इतनी शक्ति शाली है ?

हनुमान—(गर्व से सिर ऊंचा करके) माता जी ! आपके सन्मुख उस सेना का एक दुर्बल सैनिक खड़ा है, जो सौ योजन समुद्र को फांदकर लंका-पति को ललकारने के लिये यहाँ आया है। यदि आप आज्ञा दें तो वह उसके सारे योद्धाओं को पराजित करके आपको अपने कन्धे पर उठा ले जाने के लिये प्रस्तुत है।

जानकी—धन्य हो पुत्र ! धन्य हो ! परमात्मा तुम्हें वह बल देंगे जिस की गाथाएं जगत् विख्यात होंगी। लोग तुम्हें "महावीर" कह कर पुकारा करेंगे।

हनुमान—माता का आशीर्वाद मिल गया। अब कौनसा कार्य है जो हनुमान के लिये असम्भव है ? वह सब कुछ कर सकता है।

जानकी—तो क्या महाराज का सन्देश दशग्रीव के कर्णगोचर कर दिया ?

हनुमान—नहीं अभी तक यह नहीं हो सका। दशग्रीव आखेट में है, यद्यपि आज रात्रि मैंने उसे यहाँ और कल रात्रि उसके अपने महलों में देखा था।

जानकी—तो क्या तुम रात्रि को भी घूमते रहते हो ? क्या उसके महलों तक भी पहुंच गये ?

हनुमान—माता जी ! मैं कह चुका कि मैं लंका में भोज खाने नहीं आया। मैं किसी उद्देश्य को लेकर आया हूँ। उसके लिये जो समाचार लेने चाहिये थे वह ले चुका। बुद्धि और लक्ष्मी मिल जाय तो बड़े से बड़े बन्दीग्रह के फाटक खुल सकते हैं। मेरे लिये भी सब कुछ हो गया। अब केवल दशग्रीव के दर्शन करने हैं और वह आज करके रहूंगा।

जानकी—क्या दशग्रीव आज राजधानी में लौट आयेगा ?

हनुमान—नहीं ! पर मैंने यह ठान ली है कि आज उसके दरबार में पहुंच कर रहूंगा।

जानकी—वह कैसे ?

हनुमान—(हंस कर) कठिन क्या है ? अशोक वन में उधम मचाऊंगा, यहाँ के रक्षक मारने को दौड़ेंगे, उनमें से किसी को मारूंगा, किसी से मार खाऊंगा, अन्त में दशग्रीव के दरबार में पहुँच जाऊंगा !

जानकी—(विस्मय से) दंगा करोगे ?

हनुमान—जिस की माता बन्दी हो वह चुपका थोड़ा ही बैठा रहेगा !

जानकी—न बेटा इसमें खतरा है !

हनुमान—खतरा हो या न, पर मैंने आपको आज जिस दशा में देखा है उसने हृदय में अग्नि-सी लगा दी है। अब मैं यहाँ का कार्य समाप्त करके वापिस किष्किन्धा पहुंच कर श्रीराम जी के चरणों में सब कुछ निवेदन करना चाहता हूँ, ताकि वानरसेना यहाँ पहुंच कर इस रोज-रोज के दुःख का अन्त कर दे।

जानकी—यदि दशग्रीव ने तुम्हें कारागार में डाल दिया ?

हनुमान—तो कारागार की दीवारें टूट जायेंगी, और सायंकाल से प्रथम हनुमान समुद्र पार हो जायेगा। पर कुछ भी हो, माता जी ! यह विश्वास रखिये, जाने से प्रथम वह एक बार आपके दर्शन करके जायेगा। आपने महाराज को जो सन्देशा देना हो तैयार रखिये। अब सूर्योदय हो रहा है, आज्ञा दीजिये इस वन में से कुछ फल खा लूं, क्षुधा लग रही है।

जानकी—जाओ बेटा ! प्रभु तुम्हें अजर और अमर करें। आर्यपुत्र के चरणों में तुम्हारी प्रीति बढ़ती रहे।

हनुमान—(नेत्रों में प्रेमाश्रु भर कर) आपके आशीर्वाद के पश्चात् मुझे किसी अन्य वस्तु की इच्छा नहीं रही। मुझे सब कुछ प्राप्त हो गया।

दशग्रीव के दरबार में

"मन्त्रि प्रहस्त ! इस पुरुष से पूछो, यह क्यों हमारे अशोक वन में, जहाँ पुरुष का जाना वर्जित है, भीतर गया ? इसने उस स्थान में दङ्गा क्यों किया ? और क्यों वहाँ के रक्षकों को मारा ? इसने तुम्हारे पुत्र जम्बूमालि और अन्य मन्त्रि कुमारों का वध क्यों किया ? हमारे सुपुत्र राजकुमार अक्षकुमार को क्यों मारा ?" सुवर्ण मुकट धारण किये क्रोध से अग्निरूप हुए लङ्कापति महाराजा दशग्रीव ने अपने एक मन्त्री से कहा—आज्ञा पालन में मन्त्री प्रहस्त ने हनुमान से कहा :—

प्रहस्त—तुम कौन हो ? इन्द्र के भेजे हुए यहाँ आये हो या विष्णु के ? कुवेर के दूत हो या यम के ? महाराज जो कुछ पूछ रहे हैं उसका यथार्थ उत्तर देने पर सम्भव है तुम छूट सको। यदि असत्य भाषण करोगे तो उचित नहीं होगा।

हनुमान—(दशग्रीव के नेत्रों से नेत्र मिला कर) मैं न इन्द्र का दूत हूं न विष्णु, कुवेर या यम का; मेरे स्वामी का नाम इनसे भिन्न है और शायद महाराज दशग्रीव उससे परिचित हैं; क्योंकि वह महाराज के मित्र वानरराज वालि का वध करके वानर राज्य के स्वामी बने हैं। उन महाराज का सन्देश लेकर मैं उनका मन्त्री हनुमान, महाराज दशग्रीव की सेवा में उपस्थित होने को आया

था, पर यहाँ आकर ज्ञात हुआ कि राक्षस सभ्यता और वानर सभ्यता में बहुत अन्तर है। हमारे देश में दूत, चाहे वह मित्र देश का हो या शत्रु का, राज्य अतिथि माना जाता है। ऐसा होने पर प्रजा उसे शिर आंखों पर बिठाती है। पर, लंका का कानून शायद इससे भिन्न है। महाराज दशग्रीव राजधानी में नहीं थे, इसलिये मुझे उनकी प्रतीक्षा में राज्य-अतिथी-गृह में ठहरना पड़ा। मन ऊब गया तो सैर के लिये चल निकला। चलते-चलते एक रमणीक वन देख कर उसमें सैर करने लगा। इस पर वन के रक्षकों ने हल्ला बोल दिया। उन्हें समझाया गया, नम्रतापूर्वक बताया गया कि वह एक मित्र देश के मन्त्री और राजदूत का अपमान कर रहे हैं, परन्तु उन्होंने किसी बात की ओर ध्यान न दिया। इस पर कुछ कठोरता उपयोग में लाई गई तो राज्य के मन्त्री, कर्मचारी और उनके पुत्र अपनी-अपनी सेना लेकर अकेले वानर पर आ धमके, जो हाथ में छड़ी लिये सैर के लिये बाहर आया था और जिसे आत्म-रक्षा के लिये उन्हींके शस्त्र छीन कर युद्ध करना पड़ा। इस झगड़े में यदि कोई मर गया, या मारा गया, तो उत्तरदायित्व उस पर है या मुझ पर ?

दशग्रीव—(नेत्र लाल करके) तो स्वीकार करते हो कि तुमने दंगा किया और हमारे मनुष्यों का वध किया ?

हनुमान—जो सत्य था वह कह चुका, इससे अधिक मुझे कुछ नहीं कहना।

दशग्रीव—तुम्हें मनुष्य हत्या के अपराध का दण्ड फाँसी दिया जायेगा।

हनुमान—यह बहुत भली बात है। पर एक बात कह दूं जिसे कहना मेरा धर्म है, कि मैं वानरराज महाराज सुग्रीव का दूत हूँ, उनके आदेश से यहाँ आया हूँ, उनका सन्देश लेकर आया हूँ। उस सन्देश को न सुनकर उनका निरादर किया गया है, यह अपमान सहन नहीं किया जायेगा। हनुमान मरे या जीये पर महाराज बालि के उत्तराधिकारी इस अपमान का प्रतिकार लेंगे। आप वानर वीरों की शूरवीरता से अनभिज्ञ नहीं। आपको ज्ञात है कि आपने क्यों और किस अवस्था में महाराज बालि से सन्धि की थी? महाराज बालि अब नहीं हैं, पर उनसे अत्यधिक शक्तिशाली, अत्यधिक नीतिमान अत्यधिक शूरवीर राजा वानर राज्य के राजसिंहासन को सुशोभित कर रहे हैं। वानर देश के समस्त सर्दार उनके चरणों की पूजा करते हैं। महाराज बालि के सुपुत्र राजकुमार अंगद उनके युवराज हैं, इसलिये सारा वानर देश पहले से अधिक संगठित है। तिस पर महाराज सुग्रीव ने आर्यावर्त के राज्यों से जो सम्बन्ध स्थापित कर लिये हैं, उसने वानर देश की शक्ति को पहिले से सहस्रगुणा अधिक कर दिया है। इसलिये लंकापति अपने मन्त्रियों से परामर्श कर लें, सारे ऊँच-नीच समझ लें, फिर जो चाहे करें। अपने लिये मैं सर्वथा निश्चिन्त हूं और समय पड़ने पर जो कुछ पहिले किया उसे दोहराने को प्रस्तुत हूं।

दशग्रीव—यह बानर उद्दंड है, इसे मेरी दृष्टि से दूर करो। हम अभी इसके अपराध का निर्णय करेंगे।

❀ ❀ ❀

हनुमान रक्षकों की रक्षा में बाहर ले जाये गए तो महाराज दशग्रीव ने मन्त्रीपरिषद् को बुलाया। धुर्धर, महापार्शव, निकुम्भ, प्रहस्त, विभीषण, अविंध्य आदि मन्त्री और राक्षसवृन्द भागे-भागे आये। उनके सन्मुख हनुमान की उद्दण्डता का विषय रक्खा गया तो अविंध्य ने कहा—श्री महाराज! यह तो ज्ञात हो चुका कि यह बानर साधारण बानर नहीं, बानर राज का मन्त्री है, जिन्होंने इसे यहां इसलिये भेजा था कि वह आपकी मित्रता को खोना नहीं चाहते बल्कि उसका सम्मान करते हैं, इसलिये इसे दण्ड देकर बानर राज को क्रुद्ध करना ठीक नहीं होगा।

विभीषण—श्री महाराज! जब यह ज्ञात हो चुका कि हनुमान अपने राजा का दूत है, तो उसे राजदूत के सब अधिकार प्राप्त हो गये। सर्वदेशों और जातियों में दूत अवध्य है। यह समस्त जातियों ने अन्तर्जातीय नियम बना रक्खा है। दूत चाहे क्रूर शब्द भी मुख से निकाले, वह दण्डनीय नहीं, क्योंकि वह अपने राजा की जिह्वा कहा जाता है। बुद्धिमान् और शक्तिशाली राजा यदि दण्ड देते हैं तो दूत को भेजने वाले को, न कि दूत को। यदि ऐसा न हो तो दूत कार्य कौन करे? और राजा लोग परस्पर वार्त्तालाप कैसे कर सकें? इसलिये नम्र निवेदन है कि दूत को मृत्युदण्ड न दिया जाय।

दशग्रीव—यह ठीक है पर आज उसने जो उधम मचाया है उसे कैसे भुलाया जाय?

विभीषण—उसने अपनी रक्षा में यह कहा है कि वह यहां के नियम से अनभिज्ञ था, और यह सत्य हो सकता है।

अचिन्त्य—यदि श्री महाराज आज्ञा दें तो मैं यह निवेदन करना चाहता हूँ कि ऐसा प्रतीत होता है कि महाराज सुग्रीव ने महाराज बालि का वध करके जो वानर देश का राज्य प्राप्त किया है उसमें किसी अन्य व्यक्ति का हाथ है। इसलिये अच्छा हो जो महाराज दूत से सारी कथा सुन लें।

दशग्रीव—सर्वथा बेजोड़ बात है। पर तुम्हारे कहने पर हम इस पर विचार करेंगे। प्रहस्त कहो, इस अपराध के सम्बन्ध में तुम्हारी क्या सम्मति है?

प्रहस्त—महाराज मेरा पुत्र उसके हाथों से मारा गया है, मेरा मन ठीक काम नहीं करता!

दशग्रीव—और महापार्श्व आप क्या कहते हैं?

महापार्श्व—मेरे विचार में इस वानर को दण्ड अवश्य मिलना चाहिये, चाहे वह नाममात्र ही हो।

दुर्धर—मैं महापार्श्व जी से सहमत हूं।

निकुम्भ—मेरी भी यही सम्मति है।

मन्त्रीपरिषद् का काम समाप्त हुआ तो उनके जाने पर महाराज दशग्रीव ने हनुमान को लाने की आज्ञा दी। वह आये तो रक्षकों को बाहर जाने की आज्ञा देकर महाराज ने कहा, "हनुमान!

तुमने आज बहुत बुरा काम किया और यदि तुम हमारे मित्र वानर राजा के मन्त्री और दूत न होते, तो हम तुम्हें अवश्यमेव मृत्युदण्ड देते। पर तुम्हारा पद तुम्हारी रक्षा कर रहा है। (थोड़ी देर चुप रहकर) वानरराज सुग्रीव ने हमारे लिये क्या सन्देश भेजा है?

हनुमान—राक्षसराज! महाराज का वास्तविक सन्देश तो अतिथिगृह में मेरे सामान में ताले में बन्द पड़ा है; क्योंकि आपके रक्षकों और सेनापतियों ने मुझे वहाँ लौटकर जाने का अवसर नहीं दिया। फिर भी जो कुछ कहा गया था, निवेदन करता हूँ।

दशग्रीव—कहो क्या कहते हो?

हनुमान—श्री महाराज! जब से मैंने आपको देखा है मेरे मन में रह-रह कर यह विचार उत्पन्न होता है कि ज्ञात नहीं महाराज ने पूर्वजन्म और इस जन्म में क्या-क्या तपस्यायें की हैं जिनके फलस्वरूप शौर्य, सौन्दर्य और राज्यलक्ष्मी को प्राप्त किया है।

दशग्रीव—(मुस्करा कर) वास्तविक बात की ओर आओ।

हनुमान—वही निवेदन करने लगा था। वानर राज्यपति मेरे स्वामी श्री सुग्रीव जी की यह तीव्र इच्छा है कि वानरराज्य और राक्षसराज्य को उसी भांति परस्पर मित्र और सहायक देखें जिस भांति वह महाराज वालि के समय में थे।

दशग्रीव—यद्यपि सुग्रीव जी ने हमारे मित्र का वध किया

है पर हम इस कारण से एक राज्य को दूसरे राज्य से भिड़ायेंगे नहीं।

हनुमान—राक्षसराज का विचार प्रशंसनीय है और मैं महाराज के इस विचार को वानरराज के कर्णगोचर कर दूंगा परन्तु ....

दशग्रीव—परन्तु क्या ?

हनुमान—वानरराज की इच्छा है कि जिस प्रकार वह विशाल हृदय से राक्षसराज को मित्रता का सन्देश भेज रहे हैं, उसी भांति राक्षसराज भी वानरराज के मित्रों को अपना मित्र समझें।

दशग्रीव—प्रयोजन ?

हनुमान—महाराज सुग्रीव ने सिंहासनासीन होते ही प्रथम कार्य जो किया है वह है आर्य राज्यों, दण्डक, जनस्थान, अयोध्या, मिथिला आदि से मित्रता स्थापित करके जनता को सुख और शान्ति का श्वास लेने का अवसर देना। वह अपने मित्र-राज्यों से भी यही आशा रखते हैं कि वे भी उन राज्यों से मित्रता जोड़कर उन्हें हर्ष का अवसर देंगे।

दशग्रीव—हम महाराज सुग्रीव के पवित्र विचारों का आदर करते हैं, परन्तु शोक है कि हम इस बात को विस्मरण नहीं कर सकते कि दण्डकवासियों ने हमारे राज्य का एक प्रदेश 'जनस्थान' हमसे छीन लिया है।

हनुमान—यह राक्षसराज की विचारणीय बात है। मैंने

वानरराज का संदेश दे दिया और यदि आज्ञा मिलेगी तो वह पत्र भी जो उन्होंने मुझे दिये थे, सेवा में उपस्थित कर दूँगा।

दशग्रीव—हम अधिक समय तक यहाँ नहीं ठहर सकते। इस समय हमें अति दूर पहुँचना है। तुम वह पत्र हमारे मंत्री को दे सकते हो। (मन्त्री प्रहस्त को पुकार कर) प्रहस्त ! हम इस वानर का मृत्युदण्ड क्षमा करते हैं पर इसका अपराध ऐसा नहीं कि इसे कोई दण्ड न दिया जाय, इसलिये इसे नगर के गली-गली और कूंचे-कूंचे में फिराकर और इसके अपराध का ढिंढोरा पिटवा कर इसे नगर से निर्वासित कर दिया जाय, ताकि भविष्य में लोग ऐसा अपराध न करें। नगर निर्वासन से प्रथम इसकी लांगूल जला दी जाय। हमें ज्ञात है कि लांगूल वानर लोगों का प्रिय भूषण है, उसका जलाया जाना इसके लिये पर्याप्त दण्ड है।

प्रहस्त—जो आज्ञा।

दशग्रीव—(कुछ सोचकर) इसका कथन है कि इसके पास वानरराज के भेजे हुए कुछ पत्र हैं जिन्हें यह हमारे सन्मुख उपस्थित करना चाहता है और जिसका इस समय तक अवसर नहीं मिला, क्योंकि हम शीघ्र जा रहे हैं। इसलिये दण्ड देने से प्रथम आप इससे वह पत्र लेकर उनकी पहुँच दे दें। उन्हें हमारे समीप भेज दिया जाय।

प्रहस्त—(झुककर प्रणाम करके) बहुत अच्छा श्रीमान् !

लांगूल जलती है !

अतिथिगृह के विस्तृत मैदान में जनता की वह भीड़ थी कि थाली फेंको तो सिरों पर से चली जाय। हनुमानजी को दो दिन पर्यन्त नगर के गलियों और कूंचों में फिराया गया था। लङ्का का वर्गफल उस समय में जिसका हम वर्णन कर रहे हैं, आज कल के लंदन से कम नहीं था, क्योंकि वह भारत की सीमा से लेकर दक्षिणी ध्रुव तक उस विशाल राज्य की राजधानी थी जो अफ्रीका से लेकर मलाया, जावा, सुमात्रा, न्यूजीलैंड, बोर्नियो न्यूगिनी, फिलिपाइन, आस्ट्रेलिया से होता हुआ दक्षिण अमरीका तक जा पहुँचा था। उस राजधानी में देशों-देशों के राजाओं के दूत उपस्थित होना गर्व समझते थे। इतने विशाल नगर में लङ्कापति की आज्ञा का पालन साधारण बात न थी। तो भी किसी-न-किसी भांति उनके एक-एक शब्द को पूर्ण किया गया और अब हनुमान से पत्र लेकर उसकी लांगूल को जलाने और उसे निर्वासित करने का कार्य शेष था। यह लांगूल क्या बला थी ? इसे प्रत्येक मनुष्य नहीं जानता था इसलिये उसे देखने और जलती देखने की इच्छा सर्वसाधारण को घरों से खींच लाई थी। नियत समय पर मंत्री प्रहस्त ने हनुमान जी से कहा—"पत्र दे दीजिये, ताकि शेष कार्य पूर्ण किया जाय।"

"बहुत अच्छा" कहकर हनुमान अपने स्थान से उठे।

फौजी गारद उनके चारों ओर थी। अतिथी-गृह के एक ओर उन्होंने एक कमरे को खोलने का संकेत किया जिसमें उनका वायुयान बन्द था। पत्र और उनका शेष सामान उसीके भीतर सुरक्षित था। कमरा खोला गया और हनुमान जी ने जिनके हाथ पाँव उस समय तक बँधे थे, भीतर प्रवेश करके शक्ति से वायुयान के एक खाने में तालिका फिराई। मन्त्री प्रहस्त समीप खड़े थे और एक मुंशी हाथ में लेखनी लिये पहुँच लिखने को तैयार खड़ा था। सहसा वायुयान कमरे से बाहर निकल कर ऊपर उठता हुआ दिखाई दिया, और अभी किसी को यह ज्ञात भी नहीं हुआ कि क्या हुआ है कि आकाश मण्डल से हनुमान की आवाज यह कहती हुई सुनाई दीन "मन्त्री प्रहस्त! लङ्कापति दशग्रीव ने बानर की लांगूल के जलाने का आदेश दिया है और आप लोग उसे जलता देखने के लिये यहाँ आये हैं। पर शायद तुम्हें ज्ञात नहीं कि इस पृथ्वी पर कोई बानर ऐसा नहीं जो लांगूल का अपमान सहन कर सके। लांगूल के स्थान में अब लङ्का जलेगी! अति शीघ्र जलेगी! और तुम लोग उसके जलने का कौतुक देखोगे।"

वायुयान विद्युत गति से लङ्का के पश्चिमी फाटक पर पहुँच गया। लोगों की दृष्टि उसके पीछे-पीछे थी कि जोर का धड़ाका हुआ और धूएँ के दल-बादल उस फाटक से निकलते दिखाई दिये!

अभी किसी की समझ में कुछ न आया था कि इसी भाँति

का धड़ाका पूर्वी फाटक पर हुआ और उस स्थान पर अग्नि शिखा दिखाई देने लगी। तीसरा धड़ाका छावनी में, वायुयानों के कारखाने में हुआ और उसके पश्चात् यहाँ-वहाँ, इधर-उधर धड़ाके का शब्द और अग्नि की ज्वाला दीख पड़ने लगीं।

नगर में घबराहट फैल गई। लोग अतिथी-गृह से निकल कर अपने-अपने निवास स्थानों को भागे। सबको यह डर था कि उसका अपना गृह अग्नि की लपेट में न आ गया हो। उस समय जब प्रत्येक प्राणी घबराया हुआ था हनुमान जी का वायुयान नगर के ऊपर चक्कर काट कर अशोक वाटिका में उतरा। उस समय जानकीजी की रक्षक स्त्रियां कुछ तो अपने घरों की चिन्ता करती हुई इधर-उधर भाग रहीं थीं, शेष वायुयान को देखकर भाग गईं। तब हनुमान ने वायुयान से उतर कर माता जानकी के चरणों को स्पर्श करते हुए कहा—"आपके आशीर्वाद के बल से अपना कार्य समाप्त करके उपस्थित हो गया हूं। आज्ञा दीजिये कि भगवान् राम के चरणों में पहुँच कर उनकी सेवा में आपके दुःख का ब्योरा सुनाऊँ।"

जानकी—यह तो बताओ तुम दशग्रीव के हाथों से कैसे मुक्त हुए ? मुझे तो जिस समय से यह ज्ञात हुआ था कि तुम बन्दी बना लिये गये हो, मैं तुम्हारे सम्बन्ध में अशुभ विचार करके भगवान से प्रार्थना कर रही थ कि वह तुम्हें सब विपत्तियों से सुरक्षित रक्खें।

यह सुनकर हनुमान जी का कण्ठ रुंध गया और उन्होंने

कहा—"सन्तान के दुःख का ध्यान करके माता को कष्ट न होगा तो और किसको होगा ? (आवाज़ साफ करके) आपको यह तो ज्ञात था कि मैं दंगा करने जा रहा हूं ताकि पकड़ा जाकर दशग्रीव के सन्मुख पहुंच सकूँ। जो बात भावना से इच्छापूर्ति के लिये की जाय उसके लिये घबराहट क्यों ?

जानकी—मैं यह कभी विचार में भी नहीं ला सकती थी कि तुम निःशस्त्र होकर इतने राक्षसों का वध करोगे ? (ध्यान से सुन-कर) यह कड़ाके और धड़ाके के शब्द क्या आ रहे हैं ?

हनुमान—दशग्रीव ने मेरे पापों का प्रायश्चित यह निश्चित किया था कि मेरी लांगूल जला दी जाय। उसका कौतुक हो रहा है।

जानकी—मेरी समझ में नहीं आया !

हनुमान—माताजी ! लांगूल हम लोगों का जातीय चिन्ह है। उसके अपमान को सहन करना किसी वानर के लिए सम्भव नहीं। दशग्रीव इस बात को भली प्रकार समझता था इसीलिये उसने ऐसी आज्ञा दी; परन्तु प्रतीत होता है उसके सिर पर शनी-चर सवार है क्योंकि उसके स्वर मस्तिष्क से जो निकलती है उसके प्रतिकूल ही पड़ती है। उसने मेरी लांगूल के जलाए जाने की आज्ञा दी और उसके जलने का कौतुक देखने के लिये लोग नगर के सब विभागों से एकत्रित हुए। अब देखिये वानर की लागूंल तो सुरक्षित है, पर लोग दशग्रीव की लांगूल लङ्का के दहन का कौतुक देख रहे हैं।

जानकी—यह तुमने कैसे कर दिया ?

हनुमान—विस्मय की कोई बात नहीं । वायुयान मुझे देते समय जटायुजी के ज्येष्ठ भ्राता सम्पाति ने उसमें कुछ अग्नि बाण यह कह कर रख दिए थे कि, "सम्भव है किसी समय इनकी आवश्यकता पड़ जाय ।" वही अग्निबाण लङ्का के कुछ स्थानों पर पड़ कर चारों ओर अग्नि प्रदीप्त कर रहे हैं । शायद इस रमणीक नगर का बड़ा भाग उनके कारण सर्वथा भस्मीभूत हो जाय । शोक है कि वह गणना में अधिक न थे, तो भी दशग्रीव के भवन, छावनी, लङ्का के द्वार और बड़े-बड़े मन्त्रियों के गृह पुनः ही निर्माण करने पड़ेंगे । (सूर्य की ओर निहार कर) विलम्ब हुआ जाता है इसलिये महाराज के लिये जो संदेश देना हो दे दीजिये और यदि उचित समझो तो कोई अपना चिन्ह भी; ताकि मैं महाराज रामचन्द्रजी को यह विश्वास दिला सकूं कि मैं उनके सन्मुख गल्प रचना ही नहीं कर रहा ।

जानकी—(शिर से चूड़ामणि उतार कर उसे देते हुए एक दीर्घ श्वास लेकर) हनुमान ! तुम्हें देखकर मुझे अपना दुःख भूल गया था और मैं अपने को दशग्रीव के वश में नहीं, अपने हित चिन्तकों के मध्य में समझती थी । तुम्हारी इस बात ने मेरा स्वप्न भङ्ग कर दिया । बेटा ! तुम जा रहे हो, तुम्हें संदेशा क्या दूं ? आर्य-पुत्र से इतनी बातें कहनी हैं कि वर्षों में समाप्त न हों । दश मास के दुःख का वृतान्त इतनी शीघ्र सुनाया नहीं जा सकता । इस कारण तुम से यही प्रार्थना करती हूँ कि उन्हें मेरी दशा का समाचार सुना कर यह कह देना ।

"आर्यपुत्र ! आपको स्मरण होगा, कि चित्रकूट पर मन्दाकिनी तीर पर जब कागों ने मुझे घेर लिया था, और एक काग ने अपनी चोंच से मुझे घायल किया था, उस समय मेरे रक्त की कुछ बूंदें देखकर आप के क्रोध की सीमा न रही थी और आपने काक वंश का अन्त करने के लिये ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर दिया था; परन्तु अब इतना समय हो गया आपने जानकी की सुधि ही भुला दी·········[तनिक ठहर कर] कहां एक निर्बल काक! अस्थियों की मुठ्ठी पर दो पंख! और कहाँ लंकापति दशग्रीव रावण! क्या आप विचार नहीं कर सकते कि उसने मुझपर इन तीन शताब्दी दिवश में क्या-क्या अत्याचार किये होंगे? मैं जिस समय उसे देखती हूँ तो ऐसा प्रतीत होता है, ज्वर पीड़ित हूँ। पर विस्मित हूँ कि क्यों आज पर्य्यंत मुझे राजयक्ष्मा नहीं हो गया? तिस पर भी आप शान्त हैं! क्या वह प्रेम अब शीतल हो गया? क्या देश और काल की दूरी ने उस पर जल वर्षा दिया? नहीं-नहीं, मेरे अभाग्य के अतिरिक्त इसका और कोई कारण नहीं! आपको दोष क्यों दूं? पर अब मेरे दुःख का अन्त निकट आ रहा है। दशग्रीव ने मुझे एक वर्ष की अवधि दी थी, उसमें से दशमास बीत गये, दो शेष रह गये हैं। उन तीन कोड़ी दिनो के बीतने पर दशग्रीव ने मुझ पर बलात्कार करने की धमकी दी है। मैं जानती हूँ कि ऐसा होने से प्रथम मैं इस निकृष्ट शरीर को छोड़ दूंगी। इस भांति दुःख से तो मुक्ति मिल जायेगी, पर हृदय में आशा रह जायेगी कि यह प्राण, जो इतने

दिनों से आपका मार्ग देख रहे थे, आपके चरणों में न निकले ! अच्छा ! जो ईश्वर इच्छा ! इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में तो मिल ही लूँगी ।

यह कहते-कहते जानकीजी बेसुध सी हो गई, उनके नेत्रों से अश्रुधारा बह निकली, जिसे देखकर हनुमान जी के नेत्र भी प्लवित हो गये । पर उन्होंने शीघ्र ही अपनेआपको संभाल लिया और दोनों हाथों से आँखें सुखाकर कहा—"माता ! मैं यह सब बातें श्री महाराज के चरणों में कहूंगा और आशा रखता हूँ कि कुछ सप्ताह, नहीं-नहीं कुछ दिनों में आर्य और वानर शूरवीरों की किलकारें लंका द्वीप में गूंजती हुई सुनाई देंगी । अब मुझे प्रस्थान की आज्ञा दीजिये । मेरी इच्छा थी कि आप मेरे साथ चलतीं, इस समय नगर में भगदड़ मची हुई है और मैं सुगमता से आपको कंधे पर उठाकर ले जा सकता हूँ ।

जानकी—बेटा ! तुमने ठीक कहा, परन्तु मुझे ज्ञात है कि तुम्हारा वायुयान केवल एक ही मनुष्य के लिये बना है । उसमें दूसरे का स्थान नहीं और यदि तुम मुझे कंधे पर बिठाओगे तो उसमें विपत्ति ही है । सम्भव है शत्रु के वायुयान तुम्हारा पीछा करें, उस अवस्था में तुम्हें एक तो वायुयान को संभालना होगा दूसरे उनसे युद्ध करना, इसके अतिरिक्त एक और बात है कि मैंने आज तक स्वेच्छा से किसी अन्य पुरुष को नहीं छुआ, दशग्रीव मुझे बलात् उठा लाया, उसमें मेरी इच्छा का प्रश्न नहीं था ।

हनुमान—क्या माता का पुत्र की पीठ पर बैठना भी दोष है ?

सीता—मान लिया, परन्तु सब बातों का विचार करके मेरी यही इच्छा है कि मुझे आर्यपुत्र ही ले जायेंगे तो जाऊँगी। अच्छा अब सवार हो जाओ, भगवान् तुम्हें कुशलपूर्वक महाराज के चरणों में पहुँचा दें !

दूत मण्डल का प्रत्यागमन

चूड़ामणि को हाथ में लेकर हृदय से लगाते हुए श्री रामचन्द्र जी के नेत्र जल प्लावित हो गये। वह कुछ काल तक उसकी ओर निहारते रहे। फिर निकट स्थित लक्ष्मण तथा सुग्रीव से बोले—

"आपको पता नहीं यह चूड़ामणि मूकवाणी से क्या कह रहा है? इसे पिता जनक ने अपनी पुत्री को देते समय कहा था—"बेटी! इस चूड़ामणि के सम्बन्ध में यह कथा प्रसिद्ध है कि जिसके पास यह हो उसके जीवन को कोई भय नहीं।" जानकीजी ने हनुमान को इसे देकर मानो यह सन्देश दिया है कि अब उनके जीवन का कोई आश्रय नहीं रहा......... (दिल भर आया)... हाँ, हनुमान! क्या सन्देश लाये?"

हनुमान—(सारा वृत्तान्त सुनाकर) मैंने माताजी के दर्शन किये, वह दशग्रीव की क़ैद में अपने पतिव्रत धर्म का दण्ड भोगते हुए तप कर रही हैं। तपस्या ने उनके शरीर को सुखा दिया है, पर आत्मिक तेज इतना बढ़ा दिया है कि यद्यपि दशग्रीव उन्हें नित्य प्रति धमकियाँ देता है पर उसमें यह साहस नहीं कि उनको पूरा करे। मैंने अपने नेत्रों से जो देखा तथा श्रोत्रों से जो सुना उसे सहन करना असम्भव था। पर श्री महाराज की आज्ञा नहीं थी, नहीं तो दशग्रीव के प्राण लेने को उस रात्रि से अच्छा अवसर नहीं मिल सकता था.........

तत्पश्चात् जब मैं माताजी की सेवा में उपस्थित हुआ तो उन्होंने प्रथम तो यह विश्वास ही न किया कि मैं शत्रु या शत्रु का भेजा हुआ नहीं हूं। पर भगवान की मुद्रा ने वह कार्य कर दिया जो मेरे शब्द न कर सकते थे। माताजी आपको चित्रकूट की काक कथा स्मरण कराकर कहती थीं कि कहाँ तो वह समय कि उनके शरीर पर एक पक्षी की चोंच लगते देखकर आपके नेत्रों में रक्त उतर आया था, कहाँ यह बेमुखी! मैंने उन्हें बहुत समझाने का यत्न किया पर उन्होंने बताया कि उनके जीवन की अवधि अब केवल दो मास शेष हैं क्योंकि दशग्रीव ने उन्हें नहीं-नहीं ......भूलता हूँ......आप और हम दोनों को.........एक वर्ष की अवधि दे रक्खी थी, कि इस समय में अपना भुजबल दिखा कर माताजी को छुड़ा लें। उस एक वर्ष में से दशमास का दीर्घकाल बीत गया, अब दो मास का समय कौन समय है? माता जी ने इतने काल उसका सामना किया। दो मास के पश्चात् उसने बलप्रयोग की धमकी दी है। यदि ऐसा हुआ, तो माता जी जीवित नहीं रहेंगी, इसलिये हाथ जोड़कर विनयपूर्वक मैं श्री महाराज से कहूंगा कि अल्पकाल में भी बहुत कुछ सम्भव है। मुझे, अङ्गद, जामवन्त और मेरे कुछ अन्य मित्रों को आज्ञा दीजिये, हम प्राणों पर खेलकर माताजी का बन्धन मुक्त करेंगे.........

राम—हनुमान! तुमने जो कुछ किया मैं उसका प्रतिफल कैसे और क्योंकर दे सकता हूँ? भाई! आओ मेरे हृदय से लग जाओ (उठकर हनुमान को हृदय से लगाकर) तुमने मेरे लिये

अपने आपको विपत्ति में डाला, मेरे जीवित रहते तुम्हें अब अधिक आपत्ति में नहीं डाला जायगा........ हाँ वहाँ शत्रु की शक्ति के सम्बन्ध में क्या कुछ देख आये ?

हनुमान—श्री महाराज ! जो कुछ देखने योग्य था सभी कुछ देख आया। लङ्का नगरी इसी नाम के टापू पर त्रिकूट पर्वत पर बसी है। बस्ती से दूर अथाह जल से भरी हुई खाई उसकी रक्षा कर रही है। उस खाई में सागर में से जल एक ओर से आता और दूसरी ओर से निकल जाता है। जल तल पर सहस्रों पैने शस्त्र लगाये गये हैं। खाई को लांघकर नगर में पहुँचने के लिये जो मार्ग बने हैं वह यन्त्र के द्वारा खुलते और बन्द होते हैं। यदि किसी समय नगर निवासियों को अपनी रक्षा के लिये कोट में बंद होना पड़े, तो यन्त्र का तनिक-सा पेच दबने से यह मार्ग खाई में गिर जाते हैं। ऐसे मार्ग चारों द्वारों के सन्मुख हैं। उन में से केवल एक ऐसा है जिसे अकम्प कहा जा सकता है, उस द्वार के बाहर स्वर्ण और चाँदी के बने हुए स्तम्भ खड़े हैं। खाई को लाँघने के पश्चात् प्राचीर इतनी विस्तृत है कि उसपर कई रथ साथ-साथ दौड़ सकते हैं, उसपर स्थान-स्थान पर शतघनियाँ चढ़ी हैं, जिनमें से आवश्यकता पड़ने पर सहस्रों शस्त्र निकलकर शत्रु का विनाश कर सकते हैं। नगर के फाटकों में भी ऐसे छिद्र बने हैं जिनमें से सेनानी छिप कर शत्रु पर शस्त्र-वर्षा कर सकते हैं। कोट के भीतर वायुयानों के अड्डे, उनके कारखाने आदि सभी दर्शनीय हैं।

नगर के भीतर चारों ओर पक्के राजमार्ग दौड़ रहे हैं जिन पर देश-देशान्तरों के व्यापार की वस्तुएँ गाड़ियों पर लदी हुई दृष्टिगोचर होती हैं। दशग्रीव का गुप्तचरों का प्रबन्ध भी अति उत्तम है और उसे सारी बातों का ज्ञान रहता है। नगर में प्रत्येक प्रकार के लोग वास करते हैं। मैंने वहाँ पर वेद-मन्त्रों की ध्वनि भी सुनी और राक्षस लोगों के निज के देवी-देवताओं की पूजा होते हुए भी देखी ....

राम—(बात काटकर) इतने दृढ़ नगर को तुम, अङ्गद, जामवन्त और तुम्हारे अन्य कुछ मित्र विजय करना चाहते हैं ?

हनुमान—श्री महाराज ! सम्पातीजी के अग्नि-बाणों के कारण मैंने लंका के दो फाटक जला दिये और उनके बाहर के पुलों को राख का ढेर बना दिया। दशग्रीव के वायुयानों के कारखानों को मलियामेट करके उसके वायुबल का विनाश कर दिया। अब आवश्यकता केवल यह है कि शीघ्रातिशीघ्र लंका पर आक्रमण करके उसकी शेष शक्ति का नाश कर दिया जाय। दशग्रीव अभी तक यह नहीं जानता कि हम क्या करना चाहते हैं। इसलिये यदि उसे तैयार होने का अवसर दिये बिना आक्रमण कर दिया जाय तो लंका-विजय कठिन नहीं होगी।

राम—कहिये सुग्रीव आपकी क्या सम्मति है ?

सुग्रीव—मैंने जब से हनुमान से सब वृत्तान्त श्रवण किया है, मेरी सम्मति भी वही हो रही है जो हनुमान ने प्रगट की है।

राम—इसमें सन्देह नहीं जो कुछ हनुमान कह रहे हैं वह

नीति के अनुसार है। शत्रु की निर्बलता से लाभ उठाना उत्तम है, परन्तु समुद्र उलंघन कैसे होगा ?

सुग्रीव—वायुयान हमारी सेना को सागर पार ले जायेंगे।

राम—वह कुछ सेना को ले जा सकते हैं, सारी को नहीं। युद्ध के लिये अस्त्र-शस्त्र होंगे, खाद्य और पेय पदार्थ होंगे, डेरों की सामग्री होगी, इन सबको आकाश-मार्ग से ले जाना सुगम नहीं।

सुग्रीव—तो इसका उपाय आप ही सोचेंगे।

राम—अवश्यमेव सागर हमारा मार्ग नहीं रोक सकता। हमारे पूर्वज सगरजी ने उसे विजय करके उसे अपना नाम दिया था, अब हमें उसके वक्षःस्थल पर से लाँघना है। हमें आशा है कि वह हमें अवश्य मार्ग दे देगा। सेना को आज्ञा दीजिये कि वह यहाँ से चलकर शत्रु को पददलित करने के लिये तैयार हो जाय। निर्बल, रोगी और वृद्ध लोग किष्किन्धा में रहें, शेष सब सेना सागर तीर पर पहुँच जाय। पर जो कुछ हो चुपचाप हो कि अपने देश में भी सर्वसाधारण को ज्ञात न हो।

सागर उलंघन

"कहो हनुमान क्या समाचार है ?"

हनुमान—महाराज की कृपा से हमारी सेना ने उन सब नावों और जहाजों को जो बन्दरगाह में थी अपने काबू में कर लिया है। इर्द-गिर्द चौकी पहरे का पूर्ण प्रबन्ध है। अब बिना हमको सूचित किये कोई व्यक्ति इधर से उधर और उधर से इधर नहीं आ सकता।

रामचन्द्र—और समुद्र पार करने के सम्बन्ध में क्या उपाय किया गया है ?

हनुमान—जो आज्ञा होगी उसका पालन होगा।

राम—वानर नरेश ! आपका क्या विचार है ?

सुग्रीव—दूसरी ओर शत्रु का देश है, इसलिये जबतक पर्याप्त सेना न हो उधर जाना भयजनक है।

रामचन्द्र—हमें शत्रु की जल सेना को तोड़ना है। हमारे विचार में शायद ठीक यह होगा कि हमारी सेना के चुने हुए वायुगामी हनुमान जी की अध्यक्षता में समुद्र के उस पार उतर कर लंका के बंदर में उपस्थित समस्त नावों को अपने आधीन कर लें। यदि ऐसा न हुआ तो शत्रु उनसे काम ले सकेगा, सम्भव है निकट दूर के प्रदेशों से भी उन्हीं के द्वारा उसे सहायता प्राप्त हो सके। यदि हम उसकी जलशक्ति को इस रात्रि के अन्धकार में

तोड़ सकें तो फिर उसे उसी सेना के साथ जो इस समय लंका द्वीप में है युद्ध करना होगा। यदि ऐसा न होसका तो फिर हमें सारे राक्षस राज्य के साथ युद्ध में प्रवृत्त होना पड़ेगा जो शायद एक महान् कार्य हो। इसमें सन्देह नहीं हमारे शूरवीर योद्धा समस्त विश्व को ललकार सकते हैं परन्तु हमें वृथा रक्तपात से प्रयोजन नहीं, न ही हम युद्ध की अवधि को बढ़ाना चाहते हैं। इसलिये हमारा विचार और निर्णय यह है कि शत्रु की जलशक्ति को नपुन्सक बनाकर उसका बाह्य जगत् से सम्बन्ध तोड़ दिया जाय। यदि ऐसा हो जाय तो युद्ध क्षेत्र छोटा सा रह जायेगा। कहिये आप इसमें क्या कहते हैं ?

सुग्रीव—यदि ऐसा हो जाय तो लङ्का को विजय करना सुगम हो जायेगा।

जामवन्त—टापुओं का स्वामी दशग्रीव अपनी जलशक्ति के कारण दूर निकट अपना सिक्का जमा रहा है। यदि उसकी इस शक्ति का अन्त हो जाय या वह पददलित हो जाय तो आधी विजय हो गई।

हनुमान—(आवेश से) महाराज ने जो सोचा है उसे क्रियान्वित किया जाना चाहिये।

रामचन्द्र—इस बीच हमारे वायुयान दिन के समय सागर के उस पार इस भांति उतरते रहें कि शत्रु को निश्चय हो जाय कि हमारी वायु सेना भारी गणना में उपस्थित है, दूसरी ओर सेतु बांधने कार्य का सूर्योदय के साथ ही आरम्भ कर दियाजाय।

अङ्गद—वह कैसे होगा ?

रामचन्द्र—तुम में ऐसे-ऐसे विद्वान् उपस्थित हैं जो महानतम कार्य सुगमतापूर्वक सम्पादन कर सकते हैं। हमें ज्ञात है कि शूरवीर नल कला कौशल के महान् वेत्ता हैं, और हमारे पूछने पर उन्होंने विश्वास दिलाया है कि यदि समग्र सेना सहायता करे तो वह पांच दिनों में सागर के वक्ष पर तैरने वाला सेतु तैय्यार करके सेना को अस्त्र, शस्त्र और खाद्य सामग्री सहित सागर के उस पार उतार सकते हैं। कहो नल हमने यथार्थ कहा ?

नल - महाराज की कृपा दृष्टि हो तो क्या सम्भव नहीं है ?

रामचन्द्र—हमारी इच्छा है कि पर्वत को उखाड़ने और वृक्षों को काटने के लिये जो यन्त्र दण्डक निवासी अपने साथ लाये हैं उनकी सहायता से महेन्द्र पर्वत को उखाड़ा जाय, और जिस-जिस प्रकार के वृक्ष और शिला सेतु बंध के लिये आवश्यक हैं सूर्योदय होते ही सागरतट पर पहुँच जांय। सेना का अधिक भाग और विशेषकर नील जी की सफर मैना उन वृक्षों और शिलाओं को सागर पर तैराने में नलजी की सहायता करे। अन्य सब लोग यन्त्रों पर काम करें और सामग्री को सागर तक पहुँचायें। सेना में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं रहना चाहिये जो इस कार्य में यथाशक्ति भाग न ले।

सुग्रीव—आज्ञा का पालन होगा।

रामचन्द्र—हम, लक्ष्मण, अङ्गद, जामवन्त, सेना का रक्षा भार अपने ऊपर लेंगे। आप हनुमानजी की सहायता के उत्तरदायी हैं।

सुग्रीव—जो इच्छा।

उधर सूर्यदेव ने उदयाचल से शिर ऊंचा किया, इधर हनुमान जी के दूत ने यह शुभ समाचार दिया कि लंका के बन्दर में उपस्थित सब नावों पर अधिकार जमा लिया गया है और यह सब बिना रक्तपात के हुआ। साथ ही समग्र सेना के पर्वतों और वनों पर आक्रमण का शब्द सुनाई देने लगा। अल्पकाल में ही भारी यन्त्र सागर तीर पर शिलाओं और काष्ठ के ढेर एकत्रित करते हुये दीख पड़े। फिर नल के शिल्पकारी आगे बढ़े, और नवीन प्रकार के यन्त्रों ने उल्टी की हुई नावों के रूप में लकड़ी के शहतीर जल पर बिछाने आरम्भ कर दिये। उन पर भारी शिलायें ऐसे तैरने लगीं मानो किसी जादूगर के हाथ ने पृथ्वी की आकर्षण शक्ति समाप्त करके उनका भार उड़ा दिया हो।

सेतु का थोड़ा सा भाग तैय्यार होता दृष्टिगोचर हुआ तो वानर लोग बड़े उल्लास से नारे लगाने लगे—"श्री रामचन्द्र की जय" "वानरराज सुग्रीव की जय"। इन नारों के शब्द ने बतला दिया कि रामचन्द्रजी का स्वप्न सत्य में परिणत हो रहा है। इसी कारण सेना के प्रयत्न अत्यधिक उत्साह से आरम्भ हो गये और सायंकाल तक चौदह योजन सेतु तैय्यार होकर उनके उत्साह को बढ़ाने लगा।

दण्डक वन के तपस्वी उस समय नल के साथ-साथ अपनी कार्य-कुशलता से संसार को विस्मय-विमुग्ध कर रहे थे। पर्वत पर से शिलाओं और वृक्षों की वर्षा हो रही थी, लाखों सैनिकों

के साथ समीपवर्ती प्रदेशों से मजदूर लोग आ-आकर सम्मिलित हो रहे थे, और इस भांति अपने अथक प्रयत्न से इस अद्वितीय सेतु निर्माण में भाग ले रहे थे। परिणाम यह हुआ कि दूसरे दिन का कार्य ड्योढ़ा होकर इकीस योजन पर पहुंच गया। सेतु के दोनों ओर लोहे के दृढ़ रस्से बांधकर उन्हें पर्वतों की भारी चट्टानों के नीचे दबा दिया गया। उनकी रक्षा एक ओर रामचन्द्र-जी की सेना और दूसरी ओर हनुमानजी के वायुगामी सैनिक करने लगे।

पांचवें दिन संध्या समय नल ने सेनापति की सेवा में उपस्थित होकर कार्य की पूर्णता का समाचार दिया, और सूर्योदय से प्रथम सारी सेना सागर के उस पार पहुँच गई। उसके साथ भारी यन्त्र, युद्ध सामिग्री, खाद्य और पेय पदार्थ भी थे।

राक्षस-समिति

वानर सेना के इंजीनियरों को सेतु बाँधने दीजिये। आइये इतने लंका भ्रमण कर आयें। यहाँ तो सभा मन्दिर (Assembly hall) में लोग इकट्ठे हो रहे हैं। यह मन्दिर जो स्वर्ण और चाँदी जड़ित स्तम्भों पर खड़ा है, इतना विशाल है कि सहस्रों सेवक उसे शुद्ध रखने और सजाने पर नियत हैं। आज उसमें राक्षस-समिति की बैठक होगी. जिससे अनुपस्थित रहना निज को एक महान् अधिकार से वंचित रखना है।

नियत समय पर समिति का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। सभा मन्दिर के एक ओर महाराज के बैठने का स्थान है जो अन्य लोगों से अलग उच्च चौकी पर बनाया गया है। राक्षस राज दशग्रीव रावण इसे सुशोभित कर रहे हैं। कैसी सुन्दर आकृति है! सम्मुख सहस्रों कुर्सियों और गद्देदार चोकियों पर लंकावासी विराजमान हैं। सभा मन्दिर में असीम नीरवता है। सुनना राक्षसराज बोले—"आपको जिस कार्य के लिये यहाँ पधारने का कष्ट दिया गया है, उसके लिये हमें आप में से प्रत्येक की सहायता की आवश्यकता है। उस कार्य से कोष और सेना दोनों पर भार पड़ेगा, इसलिये हमारी इच्छा है कि हम आपकी व्यक्ति गत और सामूहिक सम्मति से लाभ उठायें।

आपको स्मरण होगा राक्षस राज्य की वृद्धि के विचार से हमने भारतवर्ष के दक्षिणी भाग में एक नवीन बस्ती बनाई थी। उसका नाम जनस्थान था। वहाँ पर राक्षस जाति के अनेक अनुभवी व्यक्ति अपना कार्य व्यवहार करते थे। उस बस्ती के अतिरिक्त हमारे लोगों ने उस देश के भिन्न २ भागों में कई स्थानों पर बस्तियाँ बसाई थीं। हमारा यह स्वप्न था और है कि एक दिन ऐसा आयेगा जब समस्त भारतवर्ष आपका होगा। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये हमने वानर राज बालि से सन्धि की थी कि समय पड़ने पर उनकी ओर से कोई भय न हो।

पर कुछ समय से हमारी इन इच्छाओं के मार्ग में, जो राक्षस जाति की मान मर्यादा को उच्च करने के लिये थीं, कुछ लोग बाधाएँ डाल रहे हैं। उन्होंने कोशल देश के राजा दशरथ के दो पुत्रों रामचन्द्र और लक्ष्मण को जिन्हें उनके पिता ने उनके दुष्चरित्र के कारण अपने देश से निर्वासित कर रक्खा है, अपने साथ मिला कर जनस्थान पर आक्रमण किया। उस आक्रमण की रोक थाम में हमारे भ्राता खर और दूषण मारे गये और हमारी भगिनी महारानी शूर्पणखा का अपमान किया गया।

हमने इस विचार से कि पड़ोसी देशों से सम्बन्ध बिगड़ न जाये, इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया, परन्तु जब हमें ज्ञात हुआ कि हमारे शत्रु दूर निकट के प्रदेशों को सूत्रबन्ध करके हम पर आक्रमण किया चाहते हैं तो आवश्यकता हुई कि हम उन्हें बताएँ कि हम जाग्रत हैं। नीति की अनेक बातों को विचारा-

धीन रखते हुए हमने उचित समझा कि रामचन्द्र की स्त्री जानकी सीता को जनस्थान से हर लायें। इसका उद्देश्य कामवासना पूर्ति नहीं था, बल्कि यह कि शत्रु यदि राक्षस राज्य से टक्कर लेना चाहे तो अपनी सारी शक्तियों को एकत्र करके हमारे देश में आने पर लगाये, क्योंकि हम उचित नहीं समझते थे कि अपनी सारी सेना को समुद्र पार करके उस स्थान पर ले जायें जिसमें करोड़ों रुपये के व्यय के अतिरिक्त महान् परिश्रम की आवश्यकता थी। यह स्त्री दश मास से आपकी राजधानी के एक कोने में बन्दी है। इस समय तक हमारा विचार था कि शत्रु उसे मुक्त कराने की शक्ति नहीं रखता, परन्तु प्रतीत होता है हमारा विचार ठीक नहीं था क्योंकि शत्रु ने प्रथम तो वानरराज बालि के भ्राता सुग्रीव को सहायता देकर वानरराज को मृत्यु के घाट उतारा, और अब वानर सेना को संगठित करके समुद्र तट पर आ पहुँचा है, और इस यत्न में है कि सागर लाँघकर लंका पर आक्रमण करे। अब विषय आप लोगों के गृह द्वार की रक्षा का है। इसलिये हमें आपकी सम्मति की आवश्यकता है। हमने यह बात सभा (Cabinet) के सामने भी रक्खी थी, और यह रहस्य आपके सन्मुख खोलना चाहते हैं कि मन्त्रि परिषद् में इस सम्बन्ध में दो विचारधारा थीं। एक दल तो चाहता था कि शत्रु का जमकर सामना किया जाय और उसके दाँत खट्टे किये जायें कि भविष्य में किसी और को लंका की ओर मुख करने का भी साहस न हो। दूसरे दल की यह इच्छा थी कि जानकी सीता को लौटाकर शत्रु

के साथ सन्धि कर ली जाय।

अब यह बात आपके सन्मुख है। आप बताएँ कि आप क्या चाहते हैं? हम आपसे यह छिपाना नहीं चाहते कि शत्रु बुद्धिमान् है, नीतिमान् है और उसने नीति की एक चाल से हमारे वानर मित्रों को अपना मित्र बनाकर हमारे विरुद्ध कर दिया है। वानर सेना की शूरवीरता को हम सदैव से मानते रहे हैं, इसलिये उनके साथ युद्ध दुःखदायक होगा। आप इन सारी बातों पर विचार करके अपना परिपक्व निश्चय बताएँ।"

महाराज दशग्रीव मौन हुए तो सभा में निस्तब्धता थी, जिसे कुछ काल के पश्चात् महाराज के मंझले भाई कुम्भकर्ण ने भंग करते हुये कहा:—

कुम्भकर्ण—ज्येष्ठ भ्राता तथा महाराज जी! शोक है कि जो कार्य पहिले किया जाना चाहिये था, वह पीछे किया जा रहा है। आज की समिति को बुलाने की आवश्यकता आज नहीं थी, उस समय थी जब आप सीताहरण के लिये दण्डकारण्य में गये थे। यदि आप उस समय हम लोगों से सम्मति पूछते तो आज के अधिवेशन की आवश्यकता न होती, क्योंकि यह सर्वविदित बात है कि पर स्त्री को धोखे, फरेब से और बलात् हरण करना पाप है। उसका उद्देश्य कोई भी हो, कामवासना की पूर्ति को उससे अलग नहीं किया जा सकता। (दशग्रीव के नेत्र लाल हो गये) पर अब जब कि हमने यह विषमिश्रित दुग्ध पान कर लिया है, तो जैसे भी बने उसे पचाना होगा, और मैं आपको

विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि शरीर में प्राण रहते कुम्भकर्ण लंका की स्वतन्त्रता की रक्षा में शस्त्र हाथ से नहीं छोड़ेगा। अब जब कि आपने हमें सावधान कर दिया है आप आनन्द से महलों में बैठकर सुरापान करें, रानियों के साथ विहार करें, आपको समरभूमि की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। यह कार्य हम पर छोड़िये। निश्चय हम लोग मुँह का कौर नहीं, जिन्हें रामचन्द्र या कोई और सुगमतापूर्वक कण्ठ से नीचे उतार लेगा।

महापार्श्व—श्री महाराज! आपने आज हम लोगों के सन्मुख एक रहस्योद्घाटन किया है और इस उद्घाटन से उन लोगों के मुख सदैव के लिये बंद कर दिये हैं जो यह कह रहे थे कि एक स्त्री के सौंदर्य पर मुग्ध होकर आप लंका द्वीप की प्रजा और सेना को युद्धाग्नि में धकेल रहे हैं। अब हम लोगों के लिये कहनेवाली बात केवल यह रह गई है, कि आप हमें आज्ञा दें कि हम शत्रु सेना के एक-एक व्यक्ति का कचूमर निकाल दें। नीति की बातें नीतिवानों के लिये रहें, हम जो तलवार के धनी हैं, केवल महाराज का आदेश सुनना चाहते हैं, और जगत् देखेगा कि लंका की विश्व विजई सेना वानर और दण्डक देशों की सम्मिलित सेना को किस प्रकार पीसकर सुरमा बनाती है।

दशग्रीव—(प्रसन्न होकर) तुम से यही आशा थी।

विभीषण—श्री महाराज! भ्राता कुम्भकर्ण और महापार्श्व जी ने जो कुछ कथन किया है उनकी वीरता के अनुकूल ही है। परन्तु यह सभा समस्त प्रजा की समिति है, इसमें हमें बात के

सब अंगों को विचार करना है, ताकि किसी प्रकार की भूल की सम्भावना न रहे। महाराज ने जानकी सीता को जिस कारण से हरण किया, वह सब लोगों को ज्ञात हो गया। पर क्या उसका परिणाम इच्छानुकूल निकला? मेरे विचार में तो हमने इस कारण से दक्षिणापथ में अपने सर्वश्रेष्ठ मित्र को खो दिया। वानरराज बालि हमारे ऐसे मित्र थे जिन पर हम पूर्ण विश्वास रख सकते थे। रामचन्द्र ने उन्हें अपने हृदय वेधी बाणों का लक्ष्य बनाकर सुग्रीव को वानर देशाधिपति बना दिया। महाराज सुग्रीव ने अपना दूत यहाँ भेजकर हमें वानर देश की प्राचीन मित्रता को पुनः स्थापित करने का निमन्त्रण दिया, यदि उस स्त्री—जानकी सीता—का मामला बीच में न होता, तो अवश्यमेव लंका द्वीप और वानर देश उसी प्रकार परस्पर सहायक रहते, जैसे कि पहले थे। पर उस स्त्री ने, जो सर्प बनकर लंका द्वीप को काटने के लिये यहाँ आई है, हमारे मित्रों को हमारा शत्रु बना दिया। हम देख रहे हैं कि राक्षस और वानर जो इससे प्रथम बड़े-बड़े युद्धों में एक दूसरे के अंग संग शूरवीरता दिखाते थे, अब आमने सामने खड़े होकर जग हँसाई का कारण बनने लगे हैं।

यही नहीं, आज हम लोगों में से जो व्यक्ति यह नहीं जानता कि रामचन्द्र वानर देश से लेकर उत्तर भारत तक सारे शूरवीरों की सेना का सेनापति है, हाँ, जिसे यह पता नहीं कि रामचन्द्र की पृष्ठ पर कोशल, मिथला ही नहीं, पंचनद देश तक सारे के सारे भारत की सेना है, वह इस सभा में बोलने का अधिकारी

नहीं। इसमें सन्देह नहीं, हमारे शूरवीरों ने बड़े-बड़े मैदान मारे हैं। परन्तु मुझे भावी युद्ध में जिस रक्तपात की सम्भावना दीख पड़ती है वह उससे बहुत अधिक है जो इन नेत्रों ने देखा है। इसलिये मैं श्री महाराज से, इस सभा का सभासद होने के नाते नहीं-नहीं उनका छोटा भाई होने के नाते, यह प्रार्थना करूँगा कि वह नीति के तीसरे अंग दण्ड का प्रयोग करने से पहिले उसके प्रथम दो अंगों साम और दान को प्रयोग में लायें। निश्चय यदि अब भी किसी भांति जानकी सीता को उसके पति के अर्पण किया जाय, तो उसमें किसी की हेठी नहीं होगी।

प्रहस्त—महाराजकुमारजी ने जो कुछ कहा है, उसे सुनकर मुझे दुःख हुआ। निश्चय राक्षस शूरवीरों के खड्ग जिन्होंने देवताओं की सिट्टी गुम करदी, जिन्होंने दक्षिण ध्रुव तक अपनी धाक बैठा दी, कुन्द नहीं हो गए। लंका द्वार पर आक्रमण करने वाले के सन्मुख लंका राज्य घुटने टेके! शोक है कि यह सम्मति हम लोग राजकुमार विभीषणजी के मुख से सुन रहे हैं जिनसे हमें बहुत सी आशायें थीं !!

युवराज इन्द्रजीत—चाचा जी! आपके भाषण ने हम लोगों को विस्मित कर दिया। आपको ज्ञात है मैंने कितने मैदान मारे हैं? कितने युद्ध विजय किये हैं? क्या राम और लक्ष्मण उन योद्धाओं से अधिक शूरवीर हैं जो आज लंका राज्य के सामने शिर झुका रहे हैं? समझ नहीं आती आप क्या विचार कर रहे हैं। महाराज के मुख से एक शब्द निकलने की विलम्ब है,

फिर आप देखेंगे कि वानर और अन्य लोग लंका के समुद्रों से ऐसे लोप होंगे, जैसे वायु के सामने मच्छर।

विभीषण—मुझे सेनापति प्रहस्त और युवराज जी से वाद-विवाद नहीं करना। पर पुनः निवेदन करता हूं कि जो सम्मति वह दे रहे हैं उसमें बुद्धि और नीति का प्रवेश नहीं। मैं पूछता हूं, इस समिति के सदस्यों से पूछता हूं, क्या यह बुद्धिमत्ता है कि जब एक स्त्री को उसके पति के पास लौटा देने से हम अपने पुराने मित्रों को सदैव के लिये अपना सहायक बना सकते हैं तो उसे बन्दी बनाकर उन मित्रों को शत्रु बनाया जाय? बात नितान्त सरल है। हमने उस स्त्री को उसके पति से अलग किया, इसके पीछे नीति का कोई भी उद्देश्य हो पर उसकी प्रशंसा नहीं की जा सकती है, और अब हम उसे बलात् अपने वश में रखकर सहस्रों राक्षसियों को विधवा और लाखों राक्षस बालकों को अनाथ बनाने का प्रबन्ध कर रहे हैं। अन्य लोग महाराज के रुख को देखते हुए इस विषय में कोई सम्मति दें, पर प्रजा और राजा का भला चाहते हुए, महाराज का भाई होते हुए, नीति का ज्ञाता होते हुए, मैं महाराज को यह सम्मत्ति न दे सकूंगा कि वह एक स्त्री के कारण सारे लङ्का द्वीप को युद्ध अग्नि में झोंकें। मैं जानता हूँ कि हम लोग बहुत शूरवीर हैं, यह भी जानता हूँ कि हमें इस युद्ध में सफलता की आशा है। पर उस सफलता का मूल्य क्या होगा? निश्चय लाखों नहीं तो सहस्रों वीरों के शिर इस युद्ध में मिट्टी में मिलेंगे, सहस्रों विधवायें इसे आरम्भ करने वाले को

कोसेंगी और कहेंगी कि महाराज दशग्रीव ने एक पतिव्रता के पतिव्रत को नष्ट करने के लिये उनके पतियों के प्राण लिये......

महाराज दशग्रीव (बात काटकर)—विभीषण ! तुम्हें इससे आगे बोलने की आज्ञा नहीं दी जा सकती। हमारा आत्मा कह रहा है कि तुम हमारे हितचिन्तक नहीं। तुम शत्रु के साथ मिले हुए हो और इसीलिये यह यत्न कर रहे हो कि लङ्कावासियों को, इस समिति के सदस्यों को, हमारे विरुद्ध भड़का कर हमें हानि पहुँचाओ। तुम्हारे भाषण का एक-एक शब्द हमारे विचार का समर्थन कर रहा है। हम तुम्हारे जैसे देशद्रोही का मुख देखना नहीं चाहते और आज्ञा देते हैं कि इसी समय सभा से बाहर निकल जाओ।

इस कठोर आज्ञा को सुनकर विभीषण के नेत्र भर आये। वह अपने स्थान से उठा और कुछ कहना चाहता था कि दशग्रीव ने फिर कहा—हम कह चुके हैं कि तुम्हें अधिक बोलने की आज्ञा नहीं दी जा सकती। यदि तुम स्वयं सभा से बाहर नहीं जाओगे तो हमें तुम्हें बलपूर्वक बाहर निकालने का प्रबन्ध करना होगा।

इस अटल आज्ञा को सुनकर विभीषण के लिये इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग न रहा कि वह सभामण्डप को छोड़कर बाहर चला जाये।

* * *

ठीक उस समय जब विभीषण का तिरस्कार करके उसे सभा से निकाला जा रहा था, महाराज दशग्रीव को यह समाचार मिला कि वानर सेना के वायुयानों ने लङ्का बन्दर में स्थित सब नाव अपने आधीन कर ली हैं।

विभीषण का राज्याभिषेक

"अभी अभी एक वायुयान लंका की ओर से आता हुआ हमारे शिविर में उतरा है, उसमें पाँच नवयुवक हैं, जिनमें से एक ने यह सन्देश दिया है कि वह श्री रामचन्द्रजी की शरण में आने के लिये उनके सन्मुख उपस्थित होने की आज्ञा मांगता है।"

बानरराज—यह नवीन बात है! उसने अपना नाम क्या बताया है?

पहरेदार— वह अपना नाम विभीषण बताता है।

बानर राज— विभीषण! महाराज दशग्रीव का छोटा भाई! उसने क्या सन्देश दिया है?

पहरेदार—उसका कथन है कि मैंने राक्षस समिति में यह प्रस्ताव रक्खा था कि श्रीजानकी सीता को श्री रामचन्द्र जी की सेवा में भेजकर भावी युद्ध को रोक दिया जाय। इस अपराध में मुझे धक्के देकर लङ्का से निकाल दिया गया है। मैं शरण लेने के लिये आया हूं।

सुग्रीव-- इस विषय में क्या प्रबन्ध किया गया है?

पहरेदार—सेनापति की आज्ञा से उसे पहरे में ले लिया गया है। उसका वायुयान अड्डे पर पहुंचा दिया गया है और सेना

के कुछ सैनिक उसकी और उसके साथियों की देख भाल कर रहे हैं।

सुग्रीव—बहुत ठीक! हम अभी महाराज से इस विषय में बातचीत करेंगे। फिर जो आज्ञा होगी वह बताई जायगी। पर सावधान रहना, वह शत्रु का भाई है धोखे की सम्भावना है।

❀ ❀ ❀

सारी कथा सुनकर रामचन्द्र जी ने शिर झुका लिया। फिर कुछ देर के पश्चात् उन्होंने पूछा—"वानरराज क्या सम्मति देते हैं?"

सुग्रीव—वह शत्रु की सेना से, नहीं उसके गृह से आया है उस पर विश्वास करना नीति विरुद्ध है। सम्भव है दशग्रीव ने ही उसे भेजा हो ताकि हमारे रहस्यों से परिचित हो जाय। इसलिये मेरी सम्मति में उसे शत्रु समझकर उससे वैसा ही वर्ताव करना चाहिये

रामचन्द्रजी—वानरराज जी ने राक्षसराज के कनिष्ठ भ्राता विभीषण के सम्बन्ध में जो सारगर्भित बातें कही वह आपने सुन लीं। अब आप लोग भी इस विषय में अपनी सम्मति देने की कृपा करें।

अंगद—विभीषण शत्रु के परिवार का मनुष्य है, इसलिये एकाएक उस पर विश्वास करना ठीक नहीं होगा। सम्भव है वह अवसर पाकर धोखा दे। इसलिये उसके गुण और दोषों की परीक्षा करके यदि वह हमारे लिये उपयोगी हो, तो अपनाया जाय, नहीं तो त्याग दिया जाय।

शरभ—अच्छा यह होगा कि साधारण वस्त्रों में किसी बुद्धिमान् गुप्तचर को विभीषण के पास रखकर उसके मनोभाव को जाना जाय। फिर जैसा उचित समझा जाय किया जाय।

जामवन्त—राक्षसराज की ओर से किसी व्यक्ति के आने का न तो यह समय है न स्थान। इसलिये इस विषय में अत्यन्त सन्देह की सम्भावना है।

मैंद—यह व्यक्ति शत्रु के पास से आ रहा है। नम्रतापूर्वक उससे सब बातें पूछनी चाहियें। फिर यदि उसकी भावना शुद्ध हो तो उस पर विश्वास किया जाय।

राम—हनुमान! आपकी क्या सम्मति है?

हनुमान—महाराज के सन्मुख कुछ कथन करना छोटा मुँह बड़ी बात है। परन्तु आज्ञा मिली है इसलिये बुद्धि अनुसार कहता हूं। प्रश्न यह है कि विभीषण को शरण दी जाय या न दी जाय। प्रश्न अत्यन्त जटिल है। सम्भव है वह धोखा देने की भावना से आया हो। उस अवस्था में उसे आश्रय देना भारी भूल होगी। यह भी सम्भव है कि वह भली नियत से आया हो, उस अवस्था में उसे आश्रय न देना भूल होगी। इस दशा में भावना का ज्ञान आवश्यक हो जाता है। परन्तु यह नहीं हो सकता जब तक कि उसे ऐसा कार्य न सौंपा जाय जिससे उसकी परीक्षा हो सके। ऐसा आवश्यक कार्य भी एकाएक उसे सौंपना उचित न होगा। दूसरी ओर उस पर गुप्तचरों के लगाने की जो सम्मति दी गई है वह भी कुछ सुगम नहीं होगी, और यह जो

विचार है कि समय और स्थान उसके आने का नहीं है यह भी ठीक नहीं जान पड़ता, क्योंकि ऐसे ही अवसरों पर तो ऐसी घटनाएँ हुआ करती हैं। सारी बातों पर विचार करके मेरा विचार है कि उसे इस समय शरण देनी ही चाहिये। यदि वह कुछ अनुचित करेगा तो उसे बन्दी बनाया जा सकता है।

रामचन्द्र—आप लोगों की आज्ञा से मैं भी कुछ कथन करना चाहता हूँ, और वह यह है कि विभीषण इस समय मित्र भाव से, रक्षा की भिक्षा मांगता हुआ, हमारे पास आया है। सम्भव है उसमें दोष हों, पर दोष किसमें नहीं ? इसलिये उसे शरण न देना उचित न होगा।

सुग्रीव—वह दुष्ट हो न हो, पर है तो राक्षस। जो व्यक्ति ऐसे कठिन समय में अपने सगे भाई को त्याग सकता है उससे अन्य को क्या आशा हो सकती है ? वह हमें भी त्याग सकता है। यदि आज वह अपने भ्राता के गुप्त रहस्य हमें बताता है, तो कल को हमारे रहस्य अपने भ्राता को बतायेगा। और मेरा सबसे अधिक ध्यान तो इस बात पर है कि जो अपने भ्राता को त्याग सकता है, उससे हमें क्या आशा हो सकती है ?

यह शब्द सुनकर रामचन्द्रजी का मुखकमल मुस्कराहट से खिल गया और उन्होंने लक्ष्मणजी की ओर देखकर कहा "वानरराज जी ने जो बात कही है वह कितने शास्त्रों का सार है, इसे वही जानते हैं जिन्होंने उन्हें अध्ययन किया है, परन्तु वानरराज जी ! परिस्थिति के उलट फेर से अपने कुटुम्ब के लोग

भी शत्रु बन जाया करते हैं। ऐसा ही इस विषय में हुआ है। परन्तु यह तो कोई गुप्त बात नहीं कि हम उसके कुटुम्ब से सम्बन्ध नहीं रखते और यह भी जानते हैं कि उसे राज्य की इच्छा है। इसलिये उसे अपने साथ मिलाकर क्यों न उससे लाभ उठाया जाय ? उसका यहां आना और शरण प्राप्ति की इच्छा करना इस बात का प्रमाण है कि राक्षस लोगों में एक दल दशग्रीव के विरुद्ध है। विभीषण उस दल का नेता है। उसे अपना कर हम उस दल को अपनी ओर कर सकते हैं। भाई ! जगत् में सारे भ्राता भरत जैसे नहीं, न तुम्हारे जैसे मित्र ही सब स्थानों में उपलब्ध हो सकते हैं।

सुग्रीव—आप जो उचित समझें करें, मैं विरोध नहीं करता। मेरा विचार है कि यह व्यक्ति रावण का भेजा हुआ है, और समय पर हमें धोखा देगा।

राम- यह राक्षस भला हो अथवा बुरा, पर हमारा कुछ बिगाड़ नहीं सकता। यदि हम लोग ऐसे ही बलहीन हैं कि एक व्यक्ति के धोखा देने से नाश हो जायं, तो हमें कोई बचा नहीं सकता। इसलिये सब विषयों पर विचार करके मेरा निर्णय है कि इस मनुष्य को शरण दी जाय। आज पर्य्यन्त मैंने किसी ऐसे व्यक्ति की रक्षा से मुख नहीं मोड़ा जिसने "मैं तुम्हारा हूं" ऐसा कहकर निजको मेरे अर्पण किया हो। विभीषण के लिये इस नियम का उल्लंघन नहीं किया जायेगा।

सुग्रीव—आपका निर्णय शिर आँखों पर। आप समर्थ हैं, हम आपके सन्मुख नत मस्तक हैं।

नियत समय पर विभीषण को श्री रामचन्द्रजी के सम्मुख उपस्थित किया गया और आते ही उसने उनके चरणों में गिरकर कहा, "भाई से दुत्कारा हुआ, देश से निकाला हुआ, बेघर, बेदर, विभीषण आपकी शरण में आया है। आप सारे जगत् के शरणागतवत्सल हैं, उसे भी शरण दें।"

विभीषण के मुख से यह शब्द सुनकर श्री रामचन्द्रजी ने उसे चरणों से उठाकर अपने सन्मुख स्थान दिया, और कुछ काल तक उस दृष्टि से, जो उसके मन के भीतर की तहों को पढ़ गई, उसकी ओर निहार कर बोले, "क्या आप हमें दशग्रीव की शक्ति और उसकी त्रुटियों का पूरा ब्योरा बता सकते हैं?"

विभीषण—जो कुछ जानता हूँ बता दूंगा। जो नहीं जानता उसके बारे में विवश हूँ।

यह कहकर उसने कुछ गुप्त बातें श्री रामचन्द्रजी को बताईं। उन्हें सुनकर श्री रामचन्द्रजी ने कहा:—

रामचन्द्र—विभीषण! आपने दशग्रीव की शक्ति के विषय में जो कहा, वह सत्य होगा। परन्तु स्मरण रखो, अब उस शक्ति के अन्त होने का समय आ गया है। दशग्रीव आकाश में चढ़ जाये या पाताल में घुस जाए, उसे कोई बचा नहीं सकता। आप देखेंगे और अतिशीघ्र देखेंगे, कि जानकी सीता को हरण करने वाला तस्कर दस्यु किस प्रकार की मृत्यु मरता है। यह भी स्मरण रखना, कि राम राक्षस राज्य को उलट पुलट करने के लिये यहाँ नहीं आया। उसे दशग्रीव का राज्य छीनने की इच्छा नहीं।

उसकी यदि कोई इच्छा है तो यह कि जगत् में प्रेम का राज्य हो। इसके लिये वह आपको लंका का भावी राजा बनाना चाहता है। यदि इस युद्ध में आप अपना धर्म निवाहने की प्रतिज्ञा करते हैं, तो लङ्का का राज्य आपका है।

विभीषण (कृतज्ञता प्रकाशन में आपे से बाहिर होकर) विभीषण आपके चरणों का दास है। राक्षसों के वध और लङ्का की विजय में वह अपने प्राणों की बाजी लगा देगा। इसके लिये यदि उसे दशग्रीव से भी युद्ध करना पड़ा तो करेगा और उसे सङ्कोच न होगा कि वह उसका भाई है।

रामचन्द्र—(उसे गले से लगाकर) हमें आपसे यही आशा थी। (लक्ष्मण से) लक्ष्मण जल लाओ! आज इसी समय हम वानर सरदारों तथा ऋषियों मुनियों के सन्मुख विभीषणजी का लङ्का की राजगद्दी पर अभिषेक करेंगे। तत्पश्चात् युद्ध विभीषणजी और दशग्रीव में होगा। हम केवल विभीषण जी के सहायक होंगे।

अन्तिम पत्र व्यवहार

"आपसे आज्ञा पाकर मैंने वानरवेश में वानर सेना के भीतर प्रवेश किया। परन्तु अभी कोई विशेष कार्य न कर पाया था कि महाराज कुमार विभीषण जी के सहकारियों ने देख लिया, यह ज्ञात होने पर कि मैं गुप्तचर हूँ, वानर सरदारों ने मुझे मारते पीटते श्री रामचन्द्र जी के सन्मुख उपस्थित किया। उन्होंने मेरी ओर ऐसी दृष्टि से देखा जो मेरे हृदयगत रहस्यों को पढ़ गई और फिर बोले "गुप्तचर तुम्हारा क्या नाम है ?"

"शार्दूल"—मैंने कहा।

"तुम किस प्रयोजन से यहाँ आये थे ?" श्रीरामचन्द्र जी की जिह्वा से निकला।

मैं सत्य से विमुख न हो सका, मुझे स्वीकार करना पड़ा, कि मैं भेद लेने के उपदेश्य से आया था। इस पर रामचन्द्र हँस पड़े और उनके मुख से निकला "शार्दूल ! प्रतीत होता है तुम्हारे भेजने वाले के सिर पर मनुष्य का नहीं गदहे का शिर है। अभी पिछले दिनों लंका के दो मन्त्री शुक और सारन तुम्हारी भान्ति ही पकड़े गये थे, और हमने उन्हें सारी सेना की सैर करा कर छोड़ दिया था, ताकि तुम्हारे राजा को और किसी के प्राण जोखम में डालने की आवश्यकता न रहे। परन्तु ज्ञात होता है अभी उसे विश्वास

नहीं हुआ और उसने तुम्हें भेज दिया है। जाओ हम तुम्हें भी छोड़ते हैं परन्तु अपने राजा को हमारा यह सन्देश सुना देना कि यदि उसे कोई ऐसी ही बात पूछनी है जिसका उसे ज्ञान नहीं, तो वह स्वयं यहाँ आकर पूछ सकता है और हम वचन देते हैं कि हम उससे कोई रहस्य नहीं छिपायेंगे। उसे यह भी कह देना कि हम अब उसे लंका का राजा स्वीकार नहीं करते। लंका के सिंहासन पर विभीषण जी का अभिषेक हो चुका है और वह समय दूर नहीं जब वह लोग जो दशग्रीव के हाथों दुखी हैं भुजा फैला कर अपने राजा का स्वागत करेंगे। दुखित लंका वासियों की ओर से हमें जो सन्देश मिला है उसे सुन कर हमें विश्वास हो गया है कि दशग्रीव ने अपने कुकर्मों से अपने आपको लंका के राज्य के अयोग्य प्रमाणित किया है। इसलिये उन लोगों की पुकार सुनकर हम अल्पकाल में ही उसे स्वेच्छा पूर्वक राज्य सिंहासन छोड़ने पर विवश करेंगे। उसके शुभ दिन व्यतीत हो गये हैं, अशुभ दिन आ गये हैं, उसके लिये वह स्वयं उत्तर दायी है।

दशग्रीव—तुमने इस व्यर्थ बकवाद का क्या उत्तर दिया ?

शार्दूल—मैं क्या उत्तर दे सकता था, चुप रहा !

दशग्रीव—क्या तुमने वहां कोई उपयोगी वस्तु देखी भी ?

शार्दूल—जो कुछ देखा उसे निवेदन करना चाहता हूं, पर पहले प्राणभिक्षा मांगता हूँ।

दशग्रीव—(हंसकर) हम वचन देते हैं कि तुम्हें कोई दण्ड नहीं देंगे।

शार्दूल—महाराज ने महाराज कुमार विभीषण को निर्वासित करने में भूल की।

दशग्रीव—कैसे ?

शार्दूल—मैंने देखा कि वानर सेना में एक राक्षस सेना भी तैय्यार हो गई है। महाराज कुमार विभीषण के हितचिन्तक किसी प्रकार उनके समीप पहुँच कर शत्रु की शक्ति बढ़ा रहे हैं।

दशग्रीव- क्या यह सत्य है ?

शार्दूल—महाराज को ज्ञात ही है कि विभीषण जी के साथ केवल उनके चार मित्र गये थे। पर अब उनके साथ एक बड़ी सेना काम कर रही है।

दशग्रीव—हूँ ! कोई और समाचार ?

शार्दूल—अन्तिम समाचार तो यह है कि शत्रु सेना इस समय सुवेल पर्वत पर पहुँच गई है। अब महाराज को या तो रणक्षेत्र में निकलना होगा, अथवा सीता को लौटा कर सन्धि करना !

* * *

गुप्तचरों का नेता चला गया तो दशग्रीव ने मन्त्रिमण्डल को बुला भेजा। अभी कठिनता से सब मन्त्री सभा मन्दिर में एकत्रित हुये थे कि समाचार मिला कि शत्रु का एक वायुयान लङ्का के ऊपर चक्कर काटता हुआ सभा मन्दिर के बाहर उतरा है और उसमें से एक सशस्त्र योद्धा उतर कर एक पत्र सहित सभा की ओर आ रहा है। दशग्रीव की आज्ञा से उसे सभा में लाया गया तो अपना परिचय देते हुये उसने कहा:—"वालि-पुत्र अङ्गद

महाराज दशग्रीव की सेवा में भारत नरेश रामचन्द्रजी का पत्र उपस्थित करने की आज्ञा मांगता है।"

आज्ञा मिल गई और एक मुद्राअङ्कित लिफाफा महाराज दशग्रीव की सेवा में अर्पित किया गया। महाराज ने उसे सेनापति प्रहस्त को देते हुये खोलने की आज्ञा देकर पढ़ने का संकेत किया। प्रहस्त ने पढ़ा :--

"दशग्रीव रावण! तुम्हारे शत्रु सुगमता-पूर्वक सागर पार करके लङ्कापुरी में पहुँच गये हैं। लङ्का के चारों ओर हमारी सेना ने घेरा डाल रखा है। अब बाहर से कोई सेना तुम्हारी सहायता को नहीं पहुँच सकती। तुम्हारी राज्यलक्ष्मी नष्ट हो चुकी है, ऐश्वर्य जाता रहा है, और मृत्यु की घड़ियां निकट आ गई हैं। यदि इन कारणों से तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट नहीं हो गई तो तुम्हें ज्ञात होगा कि तुम्हारे पापों ने ऋषि, देवता, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष और अन्य जातियों को तुम्हारे विरुद्ध कर दिया है। तुम अभिमान की अन्तिम सीमा पर पहुँच चुके हो, पर अब उस अभिमान के चकनाचूर होने का समय आ पहुँचा है। हम दुश्चरित्रों और परस्त्री-गामियों के प्राण लेवा हैं और तुम्हें तुम्हारे अपराधों का दण्ड देने के लिये लङ्का के द्वार पर खड़े तुम्हें ललकारते हैं। राक्षसों में नीच! जिस शक्ति के बल पर तुमने धोके से जानकी सीता को हरा था, उसे तुम्हें अब युद्धक्षेत्र में दिखाना होगा। परन्तु तुम्हें अन्तिम अवसर दिया जाता है, और यदि तुम जानकी-सीता को लेकर हमारी शरण में नहीं आओगे

तो तुम्हें तुम्हारे मूर्ख साथियों सहित इस पृथ्वी पर से उठा दिया जायेगा। अब तुम अधिक समय तक अधर्म का राज्य नहीं कर सकते। सोचो और निर्णय कर लो। भगवान् तुम्हें बुरे समय में भला समझने की बुद्धि दें।"

पत्र पढ़ा गया तो सभा में निस्तब्धता छा गई, जिसे राजकुमार अङ्गद ने यह कहते हुए तोड़ा, "दशग्रीव! मैं अयोध्यानाथ भगवान् रामचन्द्रजी का दूत और महाराज बालि का पुत्र हूँ। असम्भव है कि आपने मेरा नाम न सुना हो। मुझे इस पत्र के अतिरिक्त रामजी के यह शब्द भी आपके कान तक पहुँचाने की आज्ञा है। "रावण! पुरुष बन! और लङ्का से बाहर निकल कर दो-दो हाथ कर। हम तुम्हारे, तुम्हारे मन्त्रियों के, और तुम्हारे बेटों, पौत्रों और अन्य सम्बन्धियों के प्राण लेंगे। तुम्हारी मृत्यु से जगत् को जीवन मिलेगा। तुम देवता, दानव, यक्ष, नाग और राक्षस सबके शत्रु हो, यदि तुमने हमारे चरणों में गिरकर सम्मानपूर्वक सीता को न लौटाया तो हम तुम्हें समूल नष्ट कर देंगे। तुम्हारे मरने के उपरान्त लङ्का का सारा ऐश्वर्य्य विभीषणजी का होगा, और संसार इससे हर्षित होगा।"

दशग्रीव के नेत्र रक्तवर्ण हो रहे थे, नासिका फड़फड़ा रहीं थीं, जब अङ्गद ने क्षण भर चुप रहकर फिर कहा, "सभाजनो! मुझे एक सन्देशा आपकी सेवा में लंकापति महाराज विभीषण की ओर से भी पहुँचाना है और वह यह है, "लंकावासियो! लंका चारों ओर से घेर ली गई है, अब किसी ओर से कोई सहायता तुम

लोगों को नहीं मिल सकती। समुद्र पर सेतु बंध जाने से भारत के साथ आवागमन प्रारम्भ हो गया है। दक्षिण से लेकर उत्तर तक समस्त भारतवासियों को समाचार दे दिया गया है और कौशल, मिथला ही नहीं सारे उत्तर भारत से सेना और स्वयं-सेवक दशग्रीव के विरुद्ध युद्ध के लिये आ रहे हैं। श्री महाराज रामचन्द्रजी राक्षस जाति का विनाश नहीं चाहते, वह केवल दशग्रीव को दण्ड देना चाहते हैं, इसलिये उनकी इच्छा है कि तुम में से वह, जो पाप की सहायता में शस्त्र चलाकर नाश को प्राप्त होना नहीं चाहते, अपना मार्ग सोच लें। हम नहीं कहते कि वह हमारे साथ सम्मिलित हो जायं, यद्यपि ऐसा करने पर हम उनका स्वागत करेंगे, परन्तु यदि वह ऐसा नहीं कर सकते तो अत्याचारी, दुष्ट और दुष्चरित्र को सहायता देने से रुक जांय। यदि वह ऐसा करेंगे तो रामजी के क्रोध से सुरक्षित हो जायेंगे। नहीं तो ऋषि मुनियों के बनाये हुये अस्त्र शस्त्र तुम्हारे विनाश के लिये तैय्यार हैं। लंका से बाहर के टापुओं से लाखों शूरवीर हमारे साथ सम्मिलत होकर अत्याचारी के अत्याचार का अन्त करने को लंका के द्वार पर पहुँच गये हैं, उन्हें भीतर आते अधिक विलम्ब नहीं होगा।"

दूत की वक्तृता समाप्त हुई तो दशग्रीव की वाणी क्रोध से गरजती हुई ऊँची उठी, "इसे बन्दी बनालो"। परन्तु उसकी आज्ञा पालन के प्रथम ही अङ्गद एक छलांग में सभा से बाहर हो गया, जहाँ उसका वायुयान उड़ने के लिये तैय्यार था। मन्त्रिमण्डल देखता ही रह गया।

युद्ध का प्रथम दिवस

अङ्गद लौटे तो विभीषणजी ने श्री रामचन्द्रजी की सेवा में निवेदन किया, "मेरे गुप्तचरों ने समाचार दिया है, कि लंका के पूर्वी द्वार पर सेना की कमान प्रहस्त को सौंपी गई है। दक्षिणी द्वार पर महापार्श्व और महोदर नियुक्त हैं, पश्चिमी द्वार दशग्रीव के पुत्र इन्द्रजीत की कमान में हैं, और उत्तरी द्वार की रक्षा शक, सारन आदि सेनापतियों के साथ स्वयं महाराज दशग्रीव कर रहे हैं। मध्य में सब ओर सहायता पहुँचाने के लिये सेनापति विरूपाक्ष को नियुक्त किया गया है।"

इस समाचार के प्राप्त होने पर लंका के पूर्वी द्वार पर आक्रमण करने वाली सेना की कमान नील के हाथों में दी गई। बालिपुत्र युवराज अङ्गद महापार्श्व और महोदर का शिर कुचलने और दक्षिण द्वार को तोड़ने के लिये अपनी सेना के साथ आगे बढ़े, पवनसुत हनुमान को पश्चिमी द्वार के तोड़ने का काम मिला और उत्तरी द्वार को तोड़ने का भार रामजी ने स्वयं अपने ऊपर लिया। लक्ष्मण उनके एक ओर थे। महाराज सुग्रीव, जामवन्त और विभीषण मध्य में स्थित होकर समयानुसार सबको सहायता पहुँचाने लगे। अपनी सेना की पहचान के लिये "वानर रूप" संकेत शब्द (watch-word) नियुक्त किया गया।

वानर सेना का उत्साह बढ़ा हुआ था। उसने आज पर्य्यन्त किसी क्षेत्र में पीठ नहीं दिखाई थी, और आज तो उसकी कमान स्वयं वानरराज के अतिरिक्त भारत के महान्तम धनुर्धारी रामजी के हाथों में थी, इसलिये उसकी प्रथम इच्छा यह थी कि प्राचीर के गिर्द वाली खाई को फांदकर प्राचीर पर चढ़कर, लंका के बाजारों में घुस जाय। समुद्र फांदने वालों के लिये यह कठिन कार्य नहीं था। इसके लिये इञ्जनीयर शिरोमणि नल ने सारे प्रबन्ध कर रक्खे थे। परन्तु ज्यों ही सेनाएँ आगे बढ़ीं, प्राचीर पर लगी हुई शतघ्नियों ने दनादन अग्नि वर्षा प्रारम्भ करदी। उत्तर में अगस्त्य आश्रम के बने हुए शस्त्र काम में आये, और अल्पकाल में शतघ्नियां ठण्डी हो गईं।

परस्थिति को देखकर दशग्रीव ने सेना को क्षेत्र में निकल कर शत्रु पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही शूरवीर योद्धा कोट से बाहर निकले। युवराज अङ्गद का सामना इन्द्रजीत से हो गया, परजंघ के साथ सम्पाति भिड़ गया, जम्बूमाली की सेना हनुमान जी की सेना के साथ टक्कर में आई, विभीषण पर राक्षस सरदार शत्रुघ्न ने हल्ला बोल दिया। तपन नामक राक्षस जरनैल गज पर और निकुम्भ नील पर झपटा। वानरराज सुग्रीव परघस के साथ और लक्ष्मण जी विरूपाक्ष के साथ भिड़ गये।

अग्निकेतु, रश्मिकेतु, मित्रघ्न और यज्ञकूप राक्षस सरदार रामचन्द्रजी के सन्मुख आगये। वानर सरदार सुखैन का विद्युन्माली के साथ और द्विविध का अशिनीप्रभ के साथ युद्ध होने लगा।

मैंद के आक्रमण को वज्रमुष्टि ने रोका।

सारांश घमसान युद्ध प्रारम्भ होगया। चारों ओर "श्री रामचन्द्रजी की जय," "वानरराज सुग्रीव की जय" "दशग्रीव रावणजी की जय" के नारे शूरवीरों को एक दूसरे का रक्त बहाने के लिये उत्साहित करने लगे। अल्पकाल में ही लोगों ने देखा कि इन्द्रजीत का रथ अङ्गद की मार से टुकड़े-टुकड़े होगया, जम्बूमाली हनुमान जी की मार से रथ घोड़े सहित धराशायी होगया। प्रतपन जिसने नल के शरीर को छेदकर रक्त के सरोवर बहा दिये थे उसके बाणों की मार से नेत्रहीन होगया। परघस सुग्रीव के हाथों मारा गया।

लक्ष्मण जी के बाणों ने विरूपाक्ष के प्राण लिये। अग्निकेतू रश्मिकेतू आदि के शिर राम जी के बाणों ने उड़ा दिये। वज्रमुष्टी मैंद के हाथों से बच न सका। नील ने निकुम्भ का रथ तोड़ कर उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। द्विविद्ध के आक्रमण को अग्निप्रभ सहार न सका और अन्त में उसके हाथों वीर गति को प्राप्त होगया। सुखैन और विद्युन्माली के युद्ध में प्रथम तो राक्षस का पल्ला भारी था, पर अन्त में सुखैन ने उसे समाप्त कर ही दिया। इतने सरदारों की मृत्यु पर भी दशग्रीव की उपस्थिति राक्षस-सेना का उत्साह बढ़ा रही थी और वह उसी तीव्रता से लगातार आक्रमण किये जा रही थी कि सूर्यदेव ने अस्ताचल में पहुँच कर इस रक्तपात पर परदा डाल दिया।

———:०:———

रात्रि-युद्ध

रात्रि अन्धकारमय थी, पर अन्धकार में भी शस्त्र विद्युत की भांति चमक कर शत्रुओं के शरीर में लुप्त हो रहे थे। दशग्रीव की सेना की शूरवीरता जगद्विख्यात थी, पर आज वानर सेनापतियों और दण्डकवासियों ने उसके इतने सेनापतियों को सदैव की निद्रा में सुला दिया था कि वह पराजित होकर लङ्का में जाने को प्रस्तुत नहीं था। युवराज इन्द्रजीत ने सहस्रों क्षेत्रों में शत्रुओं के दांत खट्टे कर दिये थे, वह पिता के मनोभावों को समझता था, इसलिये उसने अङ्गद से पीछा छुड़ाकर मध्य सेना में श्री रामचन्द्र और लक्ष्मण पर आक्रमण कर दिया। रात्रि-युद्ध में राक्षस सेना सर्वदा प्रवीण रही है, इस बात को जानते हुए वह उन पर कभी आगे, कभी पीछे, कभी नीचे, कभी ऊपर से बाण वर्षा कर रहा था, पर रामचन्द्र जी के धनुष से निकले हुए बाण उसके अस्त्रजाल को तोड़ फोड़ कर निष्फल बना रहे थे। यह नाटक देर तक होता रहा कि रामजी ने देखा कि सामने मैदान खाली होगया, राक्षस सेना अपने सेनापति सहित लुप्त होगई। यह देखकर वह आगे बढ़े; परन्तु शीघ्र ही उन्होंने अनुभव किया कि एक नवीन प्रकार के शस्त्र उनकी सेना का वध कर रहे हैं। यह देखकर उन्होंने अपने दश सेनापतियों हनुमान, नील, द्विविध, मैंद, सुखैन, कुमुद,

अङ्गद, शर्भ सानुप्रस्त और ऋषभस्कन्ध को अदृष्ट शत्रु को घेरे में लेने में लेने का आदेश दिया। शूरवीर योद्धा आगे बढ़े परन्तु रात्रि के अन्धकार में रणक्षेत्र खाली दिखाई दिया। यह देख और अपने विचार में विजय प्राप्त करके जब वह लौटे तो ज्ञात हुआ कि राम लक्ष्मण दोनों भ्राताओं के शरीर नागपाश नामक शस्त्र से बंधे हैं और उनके एक-एक रोम से रक्त के फव्वारे छूट रहे हैं। सेनापति को मूर्छित देखकर बानरराज के पावों तले से पृथ्वी निकलगई। उधर आकाश में शब्द गूँजा "राक्षसराज दशग्रीव जी की जय" "खर और दूषण का प्रतिकार ले लिया गया, राम और लक्ष्मण की अपवित्र आत्माएँ लङ्का की पवित्र भूमि को छोड़ रही हैं।"

राक्षस सेना का कोलाहल बहुत बढ़ गया तो बानर सेनापति हनुमान, अङ्गद आदि ने उसे रोका। विपत्तिकाल देखकर राक्षसराज विभीषण मध्य सेना की ओर मुड़े और सुग्रीव जी को दुखी देखकर कहने लगे—"बानरराज! घबराने की बात नहीं। युद्ध में ऐसी बातें हुआ ही करती हैं।" (झुककर राम और लक्ष्मण की नासिका पर हाथ रखकर) "श्री महाराज और राजकुमार मूर्छित हैं इसलिये निराशा की बात नहीं। कौन जाने अगली घड़ी में क्या हो। सुखैन जी को बुलाइये।"

महाराज बाली की महारानी तारा के पिता सुखैन जी दूसरे क्षेत्र में युद्ध कर रहे थे। वह बानरदेश में अपनी वैद्यक विद्या के लिये प्रसिद्ध थे, इसलिये सबकी दृष्टि उस ओर लग गई जिधर

उनकी सेना युद्ध कर रही थी कि इतने में वायु में सरसराहट का शब्द गूंजने लगा। योद्धाओं ने समझा राक्षस सेनापति आकाश से आक्रमण करने आ रहा है, पर कुछ काल में ही विदित हो गया कि वनिता पुत्र गरुड़जी रामचन्द्र जी से मिलने आ रहे हैं। सुग्रीव उन्हें लेने को आगे बढ़े और उन्होंने दुखी हृदय से गरुड़जी को बताया कि रामजी इस समय नहीं मिल सकते, वह नागपाश से बंधे हुए इन्द्रजीत के बाणों से घायल होकर मूर्छित पड़े हैं।"

गरुड़जी ने हँसते हुए कहा—"तब तो हम उन्हें अवश्य मिलेंगे, नागपाश हमारे जाते ही छूट जायेगा" और सचमुच ऐसा ही हुआ; क्योंकि गरुड़जी के समीप पहुंचते और राम लक्ष्मण को हाथ लगाते ही नागपाश ढीला हो गया और जब उन्होंने एक डिबिया से औषधि निकालकर उन्हें सुंघाई तो नेत्र खोलकर चारों ओर देखते हुये उन्होंने कहा—यह क्या बात है ? क्या युद्ध समाप्त होगया ?

सुग्रीव—जय हो श्री महाराज की ! महाराज युद्ध में नागपाश से बंधकर मूर्छित होगये थे, यह ज्ञान होने पर शत्रु सेना में जय घोष होने लगे, पर परमात्मा की कृपा से समय पर गरुड़जी पहुंच गये। उनकी कृपा से नागपाश टूट गया।

राम—गरुड़ ! गरुड़जी कहां हैं ?

सुग्रीव—वह सामने लक्ष्मणजी की मूर्च्छा दूर कर रहे हैं।

रामजी ने करवट बदल कर देखा तो लक्ष्मणजी के अधर हिल रहे थे और वह अकड़े हुए शरीर को हिला रहे थे। राम-

चन्द्रजी को सुधि आई देख कर गरुड़जी ने कहा, "रामजी! हमें नहीं पहचाना? हम तुम्हारे पिता के मित्र गरुड़ हैं। हमें ज्ञात हुआ था कि तुम्हारे और राक्षस-राज के मध्य युद्ध प्रारम्भ हो गया है, उसे देखने के लिये आ गये थे, पर पहुंचे समय पर ही।

राम—राम चरणों में शीश झुकाता है।

गरुड़—आपको नागपाश से प्रथम बार साक्षात हुआ है, इसलिये इसके वश में आ गये। यह नागों और राक्षसों का विशेष अस्त्र है। इसके चलने पर सर्प जैसे यन्त्र मनुष्य के शरीर को घेर कर बांध लेते हैं। देखने वाले समझते हैं कि इतने नाग उन्हें डस रहे हैं और उसके समीप जाते भयभीत होते हैं, इस बीच में यन्त्र में से विषमिश्रित वायु निकल कर मनुष्य को मूर्च्छित कर देती है, और अधिक समय तक उसका उपचार न किया जाय तो मृत्यु की भी सम्भावना है। आपको विदित है कि हम नागवंश के विख्यात शत्रु हैं, हमें नागों के सब अस्त्र-शस्त्रों को जानने और उनको निष्फल करने की आवश्यकता रहती है। हम तुम्हें इसका रहस्य बता देंगे, फिर तुम्हें इस प्रकार के अस्त्रों से कोई भय नहीं रहेगा।

राम—हम सब आपकी कृपा के लिये कृतज्ञ हैं।

गरुड़—आप लोग देशके लिये प्राणोत्सर्ग कर रहे हैं इसलिये प्रत्येक व्यक्ति का यह धर्म है कि जैसे भी हो आपकी सहायता करे, इसलिये कृतज्ञता का प्रश्न उपस्थित ही नहीं होता।

❀ ❀ ❀

उधर राम और लक्ष्मण मूर्च्छित पड़े थे, इधर राक्षस-राज की आज्ञा से महारानी सीता को पुष्पक विमान में बैठा कर यह नाटक दिखाया जा रहा था। राम लक्ष्मण की यह दशा देखकर उस पतिव्रता देवी पर जो बीती, उसका वर्णन सुगम नहीं, क्योंकि राम मिलन ही एक आशा थी जिसके लिये वह जीवन व्यतीत कर रही थी; वह आश्रय भी अब जा रहा था। उसने चुपचाप यह सब कुछ देखा और फिर बिना अश्रुपात किये निकट बैठी दासी से बोली, "त्रिजटा! माता! आज अन्धे की लाठी टूट गई! आज भारत का सूर्य अस्त हो गया! आज जानकी के लिये अन्धकारमयी रात्रि है। अब उसका जीवन निरर्थक है!!

त्रिजटा—(उसके मुख को ओर निहार कर) जानकी! महारानी! क्यों क्या हुआ? क्या देखा?

सीता—जो देख रही हूं जिह्वा से वर्णन नहीं कर सकती। (अश्रुधारा बह निकली)

त्रिजटा—पर मैं कुछ और देख रही हूं।

सीता—क्या?

त्रिजटा—मुझे तो यह दो पुरुष, जो पृथ्वी पर पड़े हैं, जीवित दिखाई देते हैं, क्योंकि कोई चिह्न ऐसे नहीं जिनसे इन्हें मृत समझा जाय। आकाश से हमें इनकी श्वास गति का पता नहीं चलता पर इनके मुख पर इस समय भी कान्ति है।

सीता—क्या यह सत्य है? आप इस अन्धकार में यह कैसे देख सकती हैं?

त्रिजटा—जानकी ! तू भूल गई, अभी पिछले दिनों दशग्रीव ने तुझे क्या नाटक दिखाया था ? उस समय तुझे रामजी का शिर लाकर दिखाया गया था, फिर यह आज उसी शिर के साथ कैसे पड़े हैं ? भोली सीता ! तू नहीं जानती हमारी जाति के व्यक्ति किस-किस विद्या में प्रवीण हैं। राक्षस जाति इस समय ज्ञान-विज्ञान में सब जातियों से अग्रणीय है और उसके लिये तुझे ऐसे नाटक दिखाना बड़ी बात नहीं। इसलिये मैं कहती हूँ कि प्रथम तो यह सन्देह है कि यह दोनों राम और लक्ष्मण हैं, और हों भी तो मैं यह स्वीकार नहीं कर सकती कि यह मृतक हैं।

सीता—माता तेरे मुँह में घी शक्कर ! भगवान करे तेरा कहा सत्य हो। मुझ असहाय की तुम जो सहायता कर रही हो मैं उसका प्रतिफल कैसे दे सकती हूँ ?

त्रिजटा—मेरा कथन असत्य नहीं है। अभी तुझे इस प्रकार के और कई नाटक दिखाये जायेंगे। तुम्हें उनके लिये प्रस्तुत रहना चाहिये। बेटी ! तेरे दुःख ने मेरे पाषाण-हृदय को द्रवित कर दिया है, मैं तुझे अपनी पुत्री समझती हूँ इसलिये यह सब कुछ कह रही हूँ, भगवान तेरा भला करे।

* * *

राम और लक्ष्मण के सुधि में आते ही सारी सेना में हर्ष की लहर दौड़ गई, और उसने इतने उच्च-स्वर से नारा लगाया कि शत्रु के कान खड़े हो गये। वह उन्हें मृत समझ कर युद्ध के अन्त का स्वप्न देख रहा था कि गुप्तचरों ने समाचार दिया कि नागपाश

टूट गया और राम और लक्ष्मण अपनी सेना सहित अन्धकार में लंका के कोट की दीवारों को फांदने की तैय्यारी कर रहे हैं। यह सुन कर दशग्रीव ने धूमराक्ष नामी सेनापति को आज्ञा दी कि कोट से बाहर निकलकर शौर्य्य दिखाये। पर अभी वह रणक्षेत्र में भी न पहुँचा था कि हनुमान ने दबाच लिया। उसे मरा देख कर सेना बिना सवार घोड़े की भाँति पलायमान हो उठी। उसे भागता देखकर वज्रदंशट्र दक्षिण द्वार से अपनी सेना को लेकर आगे बढ़ा, परन्तु उसे आते ही अंगद जी ने सम्भाल लिया। कुछ काल तक दोनों का द्वन्द्व युद्ध होता रहा, अन्त में वज्रदंशट्र का वज्र समान शरीर अङ्गद की मार से टुकड़े टुकड़े हो गया।

वज्रदंशट्र के विनाश का समाचार पाकर अकम्पन नामी सेनापति राक्षस-राज की सेवा में जाकर बोला "मुझे वानर सेना पर आक्रमण की आज्ञा दीजिये।"

दशग्रीव—अकम्पन! हमने तुझे यह नाम तुम्हारी शूरवीरता के लिये दे रक्खा है। तुमने आज तक इतने क्षेत्रों में वीरता के जौहर दिखाये हैं और हमें आशा है कि तुम आज रात्रि को सुग्रीव, राम और लक्ष्मण को बांध कर हमारे सन्मुख लाने में सफल होगे।

अकम्पन—मैं क्या और मेरा अस्तित्व क्या! परन्तु महाराज की कृपा से अकम्पन पर्वतों को उलट देने का साहस रखता है, यह बनवासी और वानर तो हैं ही क्या?

दशग्रीव—जाओ हमारी आशायें तुम्हारी प्रतीक्षा करेंगी।

❀ ❀ ❀

"दशग्रीव की जय" के गगन भेदी नारों में अकम्पन की सेना कोट से बाहर निकली तो मैंद, नल और कुमद नामी वानर सेनापतियों ने उसका मार्ग रोका, पर अकम्पन सारी बाधाओं को चीर कर राम और लक्ष्मण तक पहुंचने पर तुला हुआ था। उसे बढ़ता देख कर हनुमानजी पवन वेग से उसके सन्मुख आ गये और दोनों शूरवीरों ने वानर और राक्षस सेना के रक्त से पृथ्वी को लाल कर दिया। अकम्पन कन्नी कतराकर राम और लक्ष्मण के समीप पहुँचना चाहता था कि हनुमानजी ने ललकार कर कहा "अकम्पन ! जगत् आज तुम्हें काँपते हुये देखना चाहता है।"

अकम्पन—उस शूरवीर ने अभी जन्म नहीं लिया जो अकम्पन को कम्पायमान कर सके।

हनुमान—जन्म ले लिया है और इस समय तुम्हारे सन्मुख खड़ा तुम्हें ललकार रहा है।

बस फिर क्या था राक्षस सेनापति का रथ आगे बढ़ा और उसने हनुमान जी पर गदा का एक भरपूर वार किया, जिसे हनुमान ने पैतरा बदल कर खाली दे दिया और उलट कर अपनी गदा के वार से अकम्पन के रथ को चकनाचूर करके सारथी और घोड़ों का कचूमर निकाल दिया। सारथी और घोड़ों को मरा देख कर अकम्पन तलवार लेकर रथ से कूदा परन्तु अल्पकाल में ही हनुमान जी ने राक्षस सेनापति को मृत्यु के घाट उतार दिया। हनुमानजी "श्री रामचन्द्रजी की जय" का नारा लगाते हुये राक्षस सेना में घुस गये और अल्पकाल में ही उस अन्धेरी रात में सब ओर लाशों

के ढेर लग गये। राक्षस लोग इस समय अपने चारों ओर वानर सेनापति की मूर्ति को घूमते देख रहे थे और जिस समय उन्हें "रामचन्द्रजी की जय" का नारा सुनाई देता वह यही समझते कि स्वयं यमराज वानर रूप में उनके प्राण लेने आ रहा है।

परिणाम यह हुआ कि राक्षस-सेना फिर रणक्षेत्र से भागी। परन्तु दशग्रीव पराजय के लिये तैयार न था इसलिये सेनापति प्रहस्त स्वयं सेना लेकर कोट से निकला; उसे देखकर राक्षस सेना का उत्साह बढ़ गया और वह नारे लगाती हुई आगे बढ़ी। सेनापति के चक्ररक्षक और पृष्ठरक्षक निरान्तक, कुम्भहनु, महानाद और सुमन्त यह चार सेनापति थे। उन्हें आता देख कर रामचन्द्र जी ने दूरबीन नेत्रों पर चढ़ाई और विभीषण से पूछा, "यह बांका राक्षस बड़े शान-बान से आ रहा है, इसका रथ चन्द्र और सूर्य की भांति कान्तिमान् है। क्या आप बता सकते हैं यह कौन है?"

विभीषण—(दूरबीन से देख कर) यह सेनापति प्रहस्त है जो युद्धमन्त्रि का कार्य भी कर रहा है। प्रतीत होता है आज के युद्ध ने दशग्रीव जी को बहुत तंग कर दिया है इसीलिये सेनापति स्वयं चढ़ा आ रहा है।

रामचन्द्र—अब दशग्रीव को सेना की कमान स्वयं अपने हाथों में लेनी पड़ेगी।

प्रहस्त चारों ओर लोहा बरसाता हुआ बढ़ा चला आ रहा था। उसके निकट पहुँचना मृत्यु को आवाहन करना था। क्योंकि वह दिन और रात के सारे युद्ध का हिसाब चुकाने पर तुला था

था। परन्तु अल्पकाल के युद्ध के पश्चात द्विविध ने निरान्तक का भेजा निकाल दिया, दुर्मख ने सुमन्त का नाश कर दिया, जामवन्त ने महानाद के प्राण लिये और तार ने कुम्भहनु को समाप्त कर दिया। अपने सहायकों का विनाश देख कर प्रहस्त आग हो गया और आँधी और झक्खड़ की भांति वानर सेना पर झपटा, जिसके सेनापति नीलजी थे। दोनों आमने सामने हुए तो प्रहस्त ने नील के माथे पर गदा का वार किया। नील घायल हुआ, पर घायल सिंह के समान झुंझला कर उसने अर्ध चन्द्र तीरों की बौछाड़ से प्रहस्त का धनुष काट कर उसके रथवान और घोड़ों को घायल किया। प्रहस्त यह देखकर रथ से कूदा परन्तु अभी पृथ्वी तक नहीं पहुंच पाया था कि नील की खड्ग ने उसके दो टुकड़े कर दिये।

* * *

राम—राक्षसराज! अब किस वीर योद्धा की सवारी आ रही है?

विभीषण—(आंखों पर दूरबीन चढाये) वह जो उदय होते हुए सूर्य की भांति दमकते हुए मुखमण्डल के साथ हाथी पर सवार सेना को आदेश दे रहा है, अकम्पन है। इसी नाम का एक योद्धा इससे प्रथम हनुमान जी के द्वारा वध हो चुका है। दूसरा जो रथारूढ़ है और जिसकी ध्वजा पर सिंह की मूर्ति है, इन्द्रजीत है। तीसरा जो पर्वत जैसे आकार के साथ दूसरे रथ पर अपने धनुष की टंकार से रणक्षेत्र को गुञ्जायमान कर रहा है,

अतिकाया नामक सेनापति है। एक अन्य हाथी पर आरूढ़ रक्त-वर्ण नेत्रों वाला सेनापति महोदर है। पांचवाँ जो स्वर्णभूषणों से भूषित अश्व को नचाता आ रहा है पिशाच नामी शूरवीर है। जो हाथ में त्रिशूल लिये श्वेत वृषभ पर सवार है त्रिशरा है। यह उस त्रिशरा से भिन्न है जिसे आपने खरदूषण के साथ वध किया था। वह जिसकी ध्वजा पर सर्प की मूर्ति लहरा रही है कुम्भ है, वह जो हीरों से जड़ित नेजा ताने आगे २ आ रहा है निकुम्भ है। इन्हीं के साथ २ जो धनुषबाण खड्ग आदि धारण किये रथ पर सवार चला आ रहा है दशग्रीव का पुत्र निरान्तक है। इन सब के मध्य में राक्षसराज दशग्रीव है, जिसके इर्द गिर्द हाथी घोड़ों की पंक्तियां चली आ रही हैं। उसके शिर पर चन्द्र समान उज्ज्वल छत्र लहरा रहा है। शिर पर सुनहरी मुकुट है जिस पर दश शिरों की मूर्तियां शोभा दे रही हैं। उसका शरीर हिमालय और विन्ध्य की भांति कठोर और मुख सूर्य के समान कान्तिमान है।

राम—प्रतीत होता है लङ्का का सारा शौर्य्य इस समय युद्ध के लिये बाहर निकल आया है। यह अच्छा ही हुआ (दूरबीन स्वयं पकड़ कर) दशग्रीव का शरीर और मुख कैसा सुन्दर है!

❀ ❀ ❀

युद्ध तीव्र से तीव्रतर हो गया। राक्षस शूरवीर अपने महाराजा की दृष्टि के सन्मुख शौर्य्य दिखाने लगे। राक्षस राज ने इन्द्रजीत और अन्य मंत्रियों को नगर रक्षा के लिये वापिस भेज दिया क्योंकि भय था कि शत्रु अवसर पाकर कोट में न घुस आये और

स्वयं सेना लेकर आगे बढ़ा। उधर से वानर राज सुग्रीव की सेना ने आक्रमण किया और दोनों सेनाएं भिड़ गईं। राक्षसराज का सामना वानर राज से हो गया। वानरराज ने राक्षसराज को आता देख कर उस पर गदा से वार किया, परन्तु राक्षस राज ने उसे मार्ग में ही काट दिया। यह देखकर सुग्रीव ने दांत पीसते हुए भाले का वार किया, जिसे बचाकर दशग्रीव ने उसके वक्ष में ताक कर एक ऐसा बाण मारा कि कवच को काटकर शरीर में घुस गया। वानर राज उस प्रहार से मूर्छित होकर गिरे, तो गवाक्ष, गवय, सुखेन आदि वानर सेनापति उनकी रक्षा करते हुए दशग्रीव की तीव्रता को रोकने लगे। उन्हें एक ओर छोड़ कर रावण मध्य सेना की ओर बढ़ कर राम जी पर वार करने को था कि हनुमानजी ने उसके रथ के निकट पहुँच कर ललकारा, "राक्षस राज! तुम्हें अभिमान है कि तुम देव, दानव, यक्ष, गन्धर्व किसी से मारे नहीं जा सकते; पर स्मरण रक्खो सामने उनमें से कोई भी नहीं। तुम वानर सेना से युद्ध कर रहे हो।" इस ललकार का उत्तर देते हुए राक्षस राज ने कहा, "वानर! दशग्रीव इस जगत् के किसी जीव से भयभीत नहीं हो सकता।"

हनुमान—जानते नहीं तुम्हारे पुत्र अक्ष का संहारक तुम्हारे सन्मुख खड़ा है।

यह स्मरण कराना आवश्यकता से अधिक था। राक्षस राज ने आग बगूला होकर हनुमान पर अपने लोह-मुष्टि का प्रहार किया जिसकी चोट से हनुमान घबरा उठा। परन्तु दूसरे क्षण में

उसका तमाचा राक्षस राज के कपोल को लाल कर गया। उसके वार को सम्हालते हुए राक्षस राज ने कहा, "तुम वीर हो, हमारा सामना करने के योग्य हो।"

हनुमान—धिक्कार है मेरी वीरता को ! जो मेरा थप्पड़ खाकर तुम अभी तक जीवित हो।

फिर क्या था मुष्टि और तमाचों से बढ़ कर शस्त्रों की बारी आई। हनुमानजी ने भारी गदा को उठाया और घुमा कर दश-ग्रीव पर छोड़ दिया। परन्तु दशग्रीव ने उसे बचाते हुए अपनी गदा का वार किया और हनुमान अभी सम्भलने न पाये थे कि दशग्रीव रथ को आगे बढ़ाकर नील पर झपटा और उसे घायल करके लक्ष्मण जी पर चढ़ दौड़ा। उसे आता देख कर लक्ष्मण ने कहा, "राक्षस राज ! मैं आ पहुँचा, तुम्हें अब वानर वीरों से युद्ध की आवश्यकता न होगी।"

दशग्रीव—अच्छा हुआ जो आ गये। अब तैयार हो जाओ मेरे बाण तुम्हें यमलोक पहुँचाने के लिये व्याकुल हो रहे हैं।

उसके मुख से इन शब्दों का निकलना था कि लक्ष्मण जी के धनुष से अनगिणत बाणों ने निकल कर उसके गिर्द चक्कर बना दिया। छुरे की प्रकार के, अर्ध चन्द्र की भांति, सर्पाकार के, नुकीले और ज्ञात नहीं किस २ प्रकार के बाण उनके धनुष से निकल रहे थे जिन्हें काटता हुआ दशग्रीव उन पर बाण वर्षा कर रहा था। धनुषबाण के पश्चात् अन्य शस्त्रों की बारी आई। अब रावण ने एक भारी शक्ति घुमा कर लक्ष्मण पर छोड़ी और यद्यपि लक्ष्मणजी

ने उसे काटने का यत्न किया फिर भी वह उनके शरीर को स्पर्श करती हुई कुछ क्षण के लिये उन्हें मूर्च्छित कर गई।

लक्ष्मण जी को मूर्च्छित देखकर हनुमान जी एक छलाँग से उनके रथ पर आ गये और उन्हें दूसरी ओर निकाल ले गये। यह देखकर स्वयं रामचन्द्रजी राक्षसराज को ललकारते हुए बोले—"दशग्रीव! तुम अब इन्द्र, यम, सूर्य, ब्रह्मा, अग्नि, महादेव किसी को भी सहायता के लिये ले आओ मेरे हाथों से बचकर निकल नहीं सकते। जिस शक्ति ने जनस्थान में अकेले चतुर्दश सहस्र राक्षसों का वध किया वह अब तुम्हें रणक्षेत्र से निकलने नहीं देगी।"

इन शब्दों ने दशग्रीव के तन में आग लगा दी और उसने बड़े जोर से रामचन्द्रजी पर प्रहार कर दिया। परन्तु थोड़े ही समय में रामजी के नुकीले बाणों ने उसके हाथ का धनुष तोड़ कर रथ के पहिये, धुरे, ध्वजा और छत्र को काट दिया और उसके सिर के मुकुट को पृथ्वी पर गिरा दिया। यह देख कर दशग्रीव ने दूसरा धनुष हाथ में लिया, पर अभी उस पर प्रत्यञ्चा न चढ़ी थी कि वह भी कट कर पृथ्वी पर जा पड़ा। तत्पश्चात् रामचन्द्र जी ने उसे अपने पैने बाणों से घायल करते हुए पुकार कर कहा, "दशग्रीव रावण! तुम बहुत थक गये हो और राम थकित शत्रु पर वार नहीं किया करता। जाओ' आज रात के लिये इतना ही पर्याप्त है। थोड़ी देर विश्राम करके ताजा हो लो, सूर्योदय होने पर हम फिर तुम्हारे हृदय का साहस और भुजा का बल देखेंगे।"

कुम्भकर्ण और इन्द्रजीत

दिन निकला और युद्ध क्षेत्र फिर गर्म हो गया। राक्षस सेना का सेनापतित्व आज दशग्रीव के कनिष्ठ भ्राता कुम्भकर्ण के हाथ में था, जो राक्षसराज के सन्मुख शपथ खाकर समरभूमि में आया था कि वह लंका की भूमि को राम और लक्ष्मण हीन कर देगा। कुम्भकर्ण का शरीर लम्बा, मूँछें चढ़ी हुईं, नेत्र लाल और मुख भयानक था। उसने आज पर्यन्त किसी युद्ध में पीठ नहीं दिखाई थी और दशग्रीव जानता था कि वह बात का धनी है, इसलिये शपथ पूरी किये विना समरभूमि से नहीं लौटेगा। इसलिये उसकी पुकार सुनकर राक्षस सेना का उत्साह बहुत बढ़ गया था। दूसरी ओर वानर सेना प्रथम विजय से और भी उत्साहित हो रही थी; इसलिये संग्राम बहुत भीषण हो गया। कुम्भकर्ण ने रामचन्द्रजी को सन्मुख आने के लिये ललकारा। उस ललकार को सुनकर वानर वीर गज, गवैय आदि आगे बढ़े; परन्तु थोड़े समय में ही ज्ञात हो गया कि कुम्भकर्ण के आक्रमण को रोकना उनके वश की बात नहीं। यह देख कर हनुमान जी अपनी सेना के साथ उसके सामने आये, पर वह भी उसके हाथों से छूटे हुये शस्त्रों से घायल हो गये। हनुमान जी को घायल देख कर वानर-राज सुग्रीव ने कुम्भकर्ण का मार्ग रोका। उन्हें सन्मुख देख कर

कुम्भकर्ण एक भारी त्रिशूल उठाकर उन पर झपटा। हनुमान उस समय तक संभल चुके थे, वानरराज को खतरे में देख कर झपटे और कुम्भकर्ण के हाथ का त्रिशूल छीन कर उसके टुकड़े २ कर दिये। यह फुर्ती देख कर राक्षस सेनापति विस्मित रह गया और अति शीघ्र संभल कर हनुमान और वानरराज की सम्मिलित सेना का वध करने लगा।

वानरराज फुर्तीले थे, हनुमान वीर शिरोमणि थे; परन्तु कुम्भकर्ण भी कम नहीं था। चिरकाल पर्यन्त उन्होंने उसका मार्ग रोका। इस युद्ध में राक्षस सरदार कई स्थानों पर घायल हुआ, पर घाव की चिन्ता न करता हुआ वह उधर बढ़ा जा रहा था जिधर राम और लक्ष्मण युद्ध कर रहे थे। लक्ष्मण को सन्मुख देख कर उसने पुकार कर कहा, "प्रतीत होता है तुम दशरथ कुमार हो। यदि यह सत्य है और तुम राम हो तो मैं तुम्हें ललकारता हूं मेरी ललकार का उत्तर दो।" लक्ष्मण जी ने यह सुना तो हँस कर बोले, "राक्षस! मैं दशरथ कुमार हूं पर राम नहीं, उनके चरणों का दास लक्ष्मण हूँ और तुम्हारी ललकार के उत्तर में मैं तुम्हारे सन्मुख आ रहा हूं। संभल जाओ मेरे बाण आज तुम्हारा नाश कर देंगे।"

कुम्भकर्ण—मैं आज तुम से नहीं लड़ूंगा। मैं आज राम को समाप्त करके इस झगड़े को समूलोच्छेदन करना चाहता हूं।"

यह कह कर वह आगे बढ़ा तो राम जी के बाणों ने आगे बढ़ने से रोक दिया। उनकी बाण वर्षा देख कर कुम्भकर्ण बोला

"तुम अच्छे धनुषधारी हो, यह मैं स्वीकार करता हूं। पर तुम्हारे बाण मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकते, यह तुमने देख लिया। अब संभलो; इन्द्र, वरुण और अन्य देवताओं को जीतने वाला शूरवीर तुम पर आक्रमण कर रहा है।"

यह कहते हुए एक भारी गदा घुमा कर उसने रामचन्द्रजी पर आक्रमण किया; पर वह विस्मित रह गया जब राम जी तक पहुँचने से प्रथम ही वह गदा टुकड़े २ होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। यह देख कर उसने दूसरी गदा उठाई, पर अभी यह चक्कर में न आई थी कि रामचन्द्र के धनुष से छूटे हुये वायव्य अस्त्र ने गदा और उस बाहु को जिसने उसे चक्र दिया था, काट कर दूर फेंक दिया। बाहु के कटने की चिन्ता न करते हुये कुम्भकर्ण ने दूसरे हाथ से त्रिशूल उठाया; पर यह हाथ भी इन्द्र अस्त्र ने काट कर दूसरी ओर फेंक दिया। दोनों हाथों के कट जाने से घायल हुए कुम्भकर्ण ने जोर से नारा मारा परन्तु उसका मुख खुला रह गया, रामचन्द्रजी की चुटकी से निकले हुये बाणों ने जिह्वा विदीर्ण कर दी। अब अर्धचन्द्र बाणों की बौछाड़ हुई और थोड़े ही समय में कुम्भकर्ण का शिर शरीर से पृथक होकर किसी अज्ञात स्थान पर जा पड़ा। उसे मरा देख कर वानर सेना में विजय ध्वनि होने लगी और राक्षस सेना में भगदड़ मच गई। पराजय को विजय में परिवर्त्तन करने का दृढ़ संकल्प किये हुये दशग्रीव के पुत्र निरान्तक, देवान्तक, त्रिशरा और अतिकायक ने सेना का संचालन किया, परन्तु थोड़े ही समय में निरान्तक तो युवराज अंगद के

और देवान्तक और त्रिशरा हनुमान के हाथों और अतिकायक लक्ष्मण जी द्वारा मिट्टी के ढेर हो गये।

भाई और पुत्रों की मृत्यु ने दशग्रीव की कमर तोड़ दी। सेना की भगदड़ ने सैनिकों में निराशा फैला दी और लोगों में यह चर्चा उच्चस्वर में सुनाई देने लगी कि "राक्षसराज कामपूर्ति के लिये लंका की सेना के विनाश पर तुला हुआ है"। सर्वसाधारण युद्ध की राजनीति को नहीं समझते थे। यह देखकर युवराज इन्द्रजीत ने राक्षसराज की सेवा में उपस्थित होकर निवेदन किया "पिताजी हमारी सेना को इस समय तक जो पराजय हुई हैं उनकी ओर से नेत्र मूंदना ठीक नहीं। उसका परिणाम यह हो रहा है कि लंका में वह दल जो विभीषण के नेतृत्व में युद्ध के विरुद्ध था, प्रवल हो रहा है। यदि इसका कोई उपाय न किया गया तो आन्तरिक कष्ट वाह्य आक्रमण से अधिक भयानक होगा।

दशग्रीव—मैं तुम्हारे कथन को भली-भांति समझता हूँ पर इसका क्या उपाय है ?

इन्द्रजीत—इसका उपाय है विजय, और वह उस समय तक प्राप्त नहीं हो सकती जब तक हम साधारण अस्त्र-शस्त्रों से युद्ध करते रहेंगे, क्योंकि यह तो प्रमाणित हो चुका है कि शत्रु के अस्त्र-शस्त्र हमारे शस्त्रों की अपेक्षा अधिक बलवान हैं और शायद उनमें से अधिकांश ऐसे हैं जो हमारी सेना ने प्रथम बार देखे हैं।

दशग्रीव—यह ठीक है।

इन्द्रजीत—तो मुझे आज्ञा दीजिये, मैं शत्रु पर उन अस्त्र-शस्त्रों

से आक्रमण करूँगा जो उस ने आज पर्य्यन्त नहीं देखे। उनके प्रयोग से विजय निश्चित है और विजय के पश्चात् सेना का उत्साह बढ़ना और विपक्ष का दब जाना समझ में आ सकता है।

दशग्रीव—मुझे तुमसे बहुत-सी आशाएँ हैं। तुम्हारी बुद्धि, दूरदर्शिता, शौर्य और वीरता पहले ही जगद्-विख्यात है, और यदि तुम उसे और भी बढ़ाना चाहते हो तो मुझे आज्ञा देने से इन्कार नहीं। जाओ मैंने आज्ञा दी।

❀ ❀ ❀

पिता से आज्ञा लेकर इन्द्रजीत लंका से बाहर निकला। इस बार राक्षस सेना का आक्रमण पृथ्वी से नहीं आकाश से था। उसके वायुयान काले मेघों की भांति उड़ने और उनमें से आग्नेय शस्त्र निकल-निकल कर वानर सेना का विनाश करने लगे। यह देखकर वानर सेनापति ने भी अपने वायुयानों को युद्ध में आने की आज्ञा दी। परन्तु जिस समय वह ऊपर उठे तो राक्षस सेना का कोई चिह्न नहीं था चारों ओर धूआँधार था, पर शस्त्रों की वर्षा उसी जोर से चारों ओर बिखर कर सबको घायल कर रही थी। सुग्रीव, अङ्गद आदि वानर सेनापतियों ने इसे रोकने का यत्न किया, परन्तु अदृष्ट शत्रु पर वार करना असम्भव था, जिसके बाणों के अतिरिक्त और कोई वस्तु दीख नहीं पड़ती थी।

हनुमान, सुग्रीव, अङ्गद, गन्धमादन, जामवन्त, सुखेन, मैंद, द्विविध, नील, गवाक्ष, गवैय, केसरी, हरिलोमा, सूर्य्यानन, ज्योतिर्मुख, दधिमुख, पावकाक्ष, नल, कुमुद, नील सारे ही वानर

सेनापति घायल हो गये, तो बाण-वर्षा मध्य सेना की ओर मुड़ी और राम और लक्ष्मण पर शस्त्र गिरने लगे। उस समय रामचन्द्र जी ने लक्ष्मणजी से कहा, "यह ब्रह्मास्त्र कार्य कर रहा है, इसे चलाने वाला हमारी दृष्टि से ओझल है, इसलिये इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता कि शान्ति से इसके प्रहार को सहा किया जाय"। परन्तु दिन का अन्त हो रहा था, सूर्यदेव अपना दैनिक कर्म समाप्त करके अस्ताचल को जा चुके थे और चारों ओर अन्धकार अपना साम्राज्य फैला रहा था। इसलिये शेष रक्तपात दूसरे दिन पर जा पड़ा।

❀ ❀ ❀

रात्रि अन्धकारमय थी, पर उससे अधिक अन्धकार वानर सेना के हृदयों में फैला हुआ था, क्योंकि राम और लक्ष्मण ब्रह्मास्त्र का सामना करते हुए मूर्च्छित थे। अङ्गद, जामवन्त आदि के शरीरों से रक्त बह रहा था और किसी को भी कुछ न सूझता था। उस समय विभीषण ने सबका साहस बँधाते हुए कहा, "निराश होने का कोई कारण नहीं। महाराज ने ब्रह्मास्त्र का सामना जानबूझ कर नहीं किया; वह मूर्च्छित अवश्य हैं, पर अभी-अभी सुधि लेंगे। आप अन्य सरदारों की ओर ध्यान दें और उन्हें सुरक्षित स्थान में पहुँचाने का प्रबन्ध करें। समय और औषधि मिलकर उन लोगों के जिनके भीतर अभी जीवन शेष है, सुधि लेने का कारण बनेंगे।"

विभीषण, हनुमान और अन्य शूरवीरों के साथ समर-भूमि

का निरीक्षण करने लगे। ढूंढ़ते-ढूंढ़ते वह जिस समय जामवन्त जी के निकट पहुँचे तो उनके एक-एक अंग को बाणों से घायल देखकर विभीषण जी ने कहा, "आर्य! इन भयानक शस्त्रों ने आपको अधिक कष्ट तो नहीं दिया?"

वाणी परिचित थी, उसे पहचान कर जामवन्त धीरे से बोले "राक्षस राज! मैं आपकी वाणी पहचानता हूँ। क्या आप ही मुझे पुकार रहे हैं?"

विभीषण—विभीषण सेवा में उपस्थित है।

जामवन्त—घाव अनेक हैं, शरीर जर्जर है इसलिये नेत्र खोलकर नहीं देख सकता। कृपया बताइये पवनसुत हनुमान जीवित हैं या ब्रह्मास्त्र का शिकार होगये?

विभीषण—(विस्मय से) आपको हनुमान जी से बहुत प्रेम है? आपने वानर राज, युवराज और अन्य सबको छोड़कर केवल उन्हीं के लिये पूछा है, इसका कारण?

जामवन्त—राक्षस राज! यदि वह जीवित हैं तो वह हम सबों को जीवन प्रदान कर सकते हैं।

हनुमान—(आगे बढ़कर चरणों को छूते हुए) महाराज जी, हनुमान चरण-वन्दना करता है।

जामवन्त—पवन सुत! सारी सेना को जीवित करने के लिये भारी प्रयत्न की आवश्यकता है, और उसे केवल वही कर सकता है जिसने अकेले समुद्र फांद कर सीता की खोज निकाली थी।

हनुमान—आज्ञा कीजिये।

जामवन्त—सारी सेना ब्रह्मास्त्र से मूर्छित है। इन्द्रजीत ने उसे जिस भांति प्रयोग किया है और उसका जो प्रभाव हम लोगों पर हुआ है, वह बताता है कि उसके भीतर विषमिश्रित वायु भरी थी जिसने हमें मूर्छित करने में पर्य्याप्त भाग लिया है। उसके विष को दूर करने का उपाय जहां तक ज्ञात है केवल एक है। हिमालय पर्वत पर कैलाश और ऋषभ पर्वत के मध्य में औषधियों से भरा हुआ पर्वत है, उसके शिखर पर चार महौषधियां हैं रात्रि के समय जिनके प्रकाश से सारा पर्वत जगमगाता है। उनके नाम यह हैं (१) मृत संजीवनी (२) विपल्य करनी (३) स्वर्ण करनी (४) सवानी। आप इन बूंटियों को जितनी भी ला सकें ले आवें। उनकी सुगन्धि इन्द्रजीत के ब्रह्मास्त्र की विषैली वायु को दूर करने का प्रभाव रखती है।

वृद्ध जामवन्त अनुभवी सेनापतियों में से थे। उनके महापितर ब्रह्मा जी ने ही ब्रह्मास्त्र का निर्माण किया था। उसके तोड़ करने का उपाय भी उनके वंश के गुप्त रहस्यों में से था। इसलिए उनकी आज्ञा पालन में हनुमान जी अपनी सेना के सर्वश्रेष्ठ वायुयान में बैठकर उड़े। रात अन्धेरी थी, पर आकाश में चमकने वाले तारागण सूर्यमंडल के मार्ग का पता देते थे। हनुमान जी में वही उत्साह दीख पड़ता था जिसे जामवन्त जी ने भारत सागर को पार करने के समय उभारा था। इसलिए वह विद्युत गति से सेना के ऊपर उठे और पर्वतों और नदियों को फांदते, ऋषियों-मुनियों के आश्रमों के ऊपर से होते हुये, दिनों का मार्ग

घंटों और घंटों का मिनटों में तय करते हिमालय पर पहुंचे ❀।

यहां उन्हें इन्द्र, हयग्रीव, अग्नि, कुवेर आदि के स्थान दीख पड़े पर उस समय उन्हें उनमें से किसी को भी देखने की इच्छा न थी, न ही अवकाश था। वह शीघ्र-से-शीघ्र अपना उद्देश्य पूर्ण करके उलटे लौटने पर तुले हुये थे।

महादेव जी के प्रसिद्ध पर्वत कैलाश को लांघ कर जब वह आगे बढ़े तो उनकी दृष्टि औषधियों के पर्वत पर पड़ी जो अंधेरी रात में चमकीली बूंटियों के प्रकाश से जगमगा रहा था।

यहां पहुंचकर वह एक विस्तृत मैदान देखकर नीचे उतरे; पर यह वायुयान के आने का प्रभाव था या क्या ? उनके नीचे उतरते ही सारा प्रकाश लोप हो गया और वह एक क्षण के लिए दुविधा मे पड़ गए ! समय अमूल्य था और एक-एक क्षण सहस्रों प्राणों के विनाश का कारण हो सकता था। इसलिये उन्होंने उस समय वह कुछ करने का निर्णय किया जिसे शायद और कोई न कर सकता। अन्धकारमय रात्रि में उन्होंने वृक्ष, बूंटी, धातुओं से भरी हुई चट्टानों को उठा कर वायुयान में रखना आरम्भ कर दिया और जिस समय यह विश्वास होगया कि अब और कोई स्थान ऐसा नहीं रहा जहाँ औषधियों के कारण पहिले प्रकाश हो रहा था तो फिर पर्वत से

❀ बताने वाले आज भी शिमला पहाड़ी के सबसे ऊंचे शिखिर जाखू पर उनके पद चिन्ह बताते हैं। ईश्वर जाने यह कहां तक सत्य है ?

ऊपर उठे। ऊपर उठकर उनके हर्ष विस्मय का ठिकाना न रहा जब उन्होंने देखा कि बूंटियों का वह प्रकाश जो लुप्त हो चुका था वायुयान को प्रकाशित करके मार्गदर्शक का कार्य देने लगा।

❀ ❀ ❀

शिविर के निकट पहुंचकर हनुमान जी ने जोर से नाद किया जिसने मित्र और शत्रु सबको विश्वास दिला दिया कि वह सफल मनोरथ होकर लौट आये हैं।

इन औषधियों के आते ही और उनकी सुगन्धि फैलते ही सहस्त्रों वानर इस भाँति उठकर बैठ गये मानो सोकर उठे हैं। श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मण जी को उनकी सुगन्धि सुंघाई गई तो उन्होंने मन्द मुस्कान से नेत्र खोल दिये। यही दशा सुग्रीव, अङ्गद, जामवंत आदि की हुई और दिन निकलने से प्रथम सेना में जय-ध्वनि होने लगी।

इन्द्रजीत का अन्तिम युद्ध

वानर सेना कल की हार को स्मरण करके दांत पीस रही थी। इन्द्रजीत ने विषैली गैसें छोड़कर उसे मूर्छित कर दिया था और वह उसका प्रतिकार लेने के लिये आतुर हो रही थी। उसके आवेश का लाभ उठाकर चुने हुए सेनापति अपनी-अपनी सेना के साथ लंका के द्वारों को तोड़ने के लिये आगे बढ़े। उन्हें रोकने के लिये कुम्भकर्ण के पुत्र कुम्भ और निकुम्भ पिता के वध का प्रतिकार लेने के लिये युद्ध-भूमि में आये। उनके साथ राक्षस-सेना का एक भारी भाग कम्पन, प्रजंघ, यूपाक्ष और शोणिताक्ष के नेतृत्व में आगे बढ़ा, और युद्ध आरम्भ में ही घमासान का हो गया। राक्षस-सेना "दशग्रीव महाराज की जय", 'राक्षस राज की जय" के घोष कर रही थी, दूसरी ओर "रामचन्द्रजी की जय", "लक्ष्मण जी की जय", यह शब्द कानों में गूंज रहे थे। अंगद वानर सेना की कमान कर रहे थे और उनके सिंहनाद सेना को असाधारण वीरता के लिये उत्तेजित कर रहे थे। सहसा सेना में सनसनी फैल गई, लोगों ने नेत्र ऊँचे करके देखा तो आकाश में इन्द्रजीत का रथ चारों ओर उजाला कर रहा था। उसमें उसके अतिरिक्त एक स्त्री की आकृति दृष्टिगोचर हुई, जिसकी चीत्कार पृथ्वी और आकाश को गुञ्जा

रही थी। इन्द्रजीत उसे केशों से पकड़ कर खेंच रहा था और वह रुदन करती हुई दया के लिये प्रार्थना कर रही थी। इसी बीच में दुष्ट राक्षस ने उसे खेंचते हुये खड्ग का एक भरपूर हाथ मार कर उसका शीश काटते हुए गर्ज कर कहा, "जनक नन्दिनी सीता! तेरे ही कारण इतना रक्तपात हो रहा है! तेरे ही लिए काका कुम्भकरण मृत्यु को प्राप्त हुये! तुझे अधिक समय तक जीवित नहीं रहने दिया जा सकता, जा मर।" हनुमान ने यह देखा, अंगद जी ने श्रवण किया, तो उनके शरीर से स्वेद स्रोत बह निकले, पांव तले की मिट्टी निकल गई और उन्होंने उचित समझा कि श्री रामचन्द्रजी को यह समाचार पहुँचा दिया जाय।

युद्ध की चाल धीमी पड़ गई, वानर सेना के शस्त्र मंद हो गये जब हनुमानजी ने यह समाचार सेनापति को रोते-रोते सुनाना आरम्भ किया।

राम और लक्ष्मण ने इसे सुना तो उनके भी हाथ-पांव फूल गये, पर ठीक उस समय राक्षसराज विभीषण वहाँ पहुँच गये और सारा समाचार सुनकर हँसी से लोट-पोट हो गये।

उन्हें हंसता देखकर लोग विस्मित रह गये। सबके पूछने पर उन्होंने कहा, "आपको चकमा दिया गया है और आप धोके में आ गये हैं। जानकी सीता जीवित जाग्रत हैं और परमात्मा की इच्छा होगी तो युद्ध के अन्त पर जीवित मिलेंगी। जहाँ तक मुझे सूचना मिली है और वह ठीक है, इन्द्रजीत यह सनसनी फैलाकर हमारी सेना को धोखा देकर लंका से लोप हुआ है, क्योंकि उसे

अपनी अपवित्र इच्छाओं को पूर्ण करने के लिये अवकाश की आवश्यकता है और वह समझता है कि हमारी सेना को घबराहट में डालकर उसने वह प्राप्त कर लिया है।

रामचन्द्र—हम आपका अभिप्राय नहीं समझ सके।

विभीषण—श्री महाराज! इन्द्रजीत न केवल अत्यन्त शक्तिशाली है बल्कि नीति के शतरञ्ज का भी अद्वितीय खिलाड़ी है। पर यदि आप आज्ञा दें तो हम उसे आज उसी के खेल में अद्वितीय हार दे सकते हैं।

रामचन्द्र—कैसे?

विभीषण—लंका के बाहर एक गुप्त-स्थान है, जिसे निकुम्भला देवी का मन्दिर कहा जाता है। उस स्थान पर राज्य परिवार के इने-गिने व्यक्तियों के अतिरिक्त किसी को जाने की आज्ञा नहीं। सर्वसाधारण में यह प्रसिद्ध है कि इन्द्रजीत वहाँ यज्ञ कर रहा है और उस यज्ञ की पूर्ण आहुति पड़ने वाली है। जनता कहती है कि उस आहुति के पड़ने पर और यज्ञ में सफल होने पर इन्द्रजीत अजेय हो जायेगा और वह आज उस यज्ञ को पूर्ण करना चाहता है। परन्तु मेरी सूचना यह है कि उस स्थान पर एक अति भयंकर अस्त्र को पूर्ण करने के लिये अन्वेषण हो रहा है। इन्द्रजीत इस समय तक उस स्थान पर लंका राज्य के प्रसिद्ध वैज्ञानिकों के साथ उस भयानक अस्त्र को पूर्ण करने में व्यस्त है और यदि युद्ध न प्रारम्भ होता तो निश्चय अल्पकाल में ही यह अन्वेषण पूर्ण हो जाता। युद्ध के कारण इसमें अनेक बाधायें पड़ गई हैं,

पर युद्ध ने उसकी आवश्यकता को भी उन लोगों पर जो उसे पूर्ण कर रहे हैं, व्यक्त कर रक्खा है। इसलिये जो भी समय शेष मिलता है वह उसमें लगाया जाता है। भौतिक पदार्थ और रसायन विद्या के विद्वानों ने आज का दिन उस सम्बन्ध में अन्तिम तजुर्बो के लिये नियत किया है। यदि वह इसमें सफल हो गये, तो निश्चय राक्षस सेना का सामना असम्भव नहीं तो अत्यन्त दुष्कर अवश्य हो जायेगा।

रामचन्द्र—तो आपने क्या सोचा है?

विभीषण—मेरा निवेदन यह है कि जो सेना कुम्भ और निकुम्भ से युद्ध कर रही है वह करती रहे ताकि शत्रु को यह ज्ञान न हो सके कि इसके अतिरिक्त कुछ और भी हो रहा है। इधर हम लोग पूर्ण तैय्यारी से निकुम्भला पर आक्रमण कर दें। यदि हमारा आक्रमण सफल रहा, तो इन्द्रजीत के सारे तजुर्बे धरे-के-धरे रह जायेंगे, और सम्भव है हम उसके नाश में भी सफल हो जायें।

यह बात सबकी बुद्धि में आ गई और उसे कार्य रूप में परिणित करने के लिये सेना का एक भाग चुपके से लक्ष्मणजी के नेतृत्व में विभीषण, जामवन्त और हनुमान आदि सेनापतियों की सेना को लेकर निकुम्भला पर आक्रमण करने के लिये चल दिया।

रात्रि का दूसरा पहर बीता जा रहा था, अन्धेरे में मार्ग नहीं दीख पड़ता था, चन्द्रदेव अभी ड्यूटी पर नहीं आये थे, जब चुने

हुए शूरवीरों की यह सेना विभीषण के नेतृत्व में निकुम्भला पहुँची, और बाज की न्याई वहाँ के राक्षसों पर टूट पड़ी। उन्हें इधर किसी आक्रमण की आशा न थी, इसलिये आनन्दपूर्वक लेट रहे थे, जब कि "रामचन्द्रजी की जय" का नारा वायु में गूंजा, और साथ ही सहस्रों तलवारें वायु में चमक कर शत्रुओं के शरीर में घुस गईं। रक्षकों का वध करके वानर शूरवीर आगे बढ़े और मन्दिर के इर्द-गिर्द घेरा डाल दिया।

मार-धाड़ के शब्द कार्य व्यस्त इन्द्रजीत के कानों में पड़े, तो थोड़े काल के लिये वह सन्नाटे में आ गया। परन्तु शीघ्र ही संभल कर बाहर खड़े रथ पर सवार होकर मैदान में आ निकला। उस समय मन्दिर के अन्तिम भाग के इर्द गिर्द उपस्थित सेना उसके साथ थी। बाहर निकलते ही उसकी दृष्टि विभीषण पर पड़ी तो सब वृतान्त ज्ञात हो गया। इसलिये क्रोध से नेत्र लाल किये हुए उसने चाचा को सम्बोधन करके कहा:—"राक्षस! ज्ञात हो गया, यह अग्नि तेरे हाथों की ही सुलगाई हुई है। तू लंका की पुण्य भूमि में उत्पन्न हुआ है और पिता जी का कनिष्ठ भ्राता है। देशद्रोही! क्या तुझे देशघात करते समय यह भूल गया कि चाचा कुम्भकर्ण की मृत्यु भी तेरे कारण ही हुई थी? क्या तेरी विद्रोह पिपासा भ्राता का रक्त पान करके शान्त न हुई थी, जो तू ने इस रहस्य को, जो राजवंश के अतिरिक्त किसी को ज्ञात न था, शत्रु पर प्रगट करने का साहस किया? वंशघातक! देश प्रेम, पारिवारिक स्नेह, जातीय भावना, क्या यह सब तेरे

हृदय से मिट गये ? क्या दासता तेरे रक्त में इतनी शीघ्र छा गई कि तू सगे भतीजे का वध कराने के लिये शत्रु को लेकर यहाँ आया है ? परन्तु तू अपने इस आसुरी संकल्प में सफल नहीं हो सकेगा। मेरी चुटकी से निकले हुए बाण तेरा रक्त पीकर लंका की पुण्य भूमि को तेरे जैसे निर्लज्ज से हीन कर देंगे। ...... (धनुष पर डोरी डाल दी)

विभीषण—इन्द्रजीत ! वीर शेखी नहीं बघारा करते। मुझ पर आरोप लगाते समय तुम्हें भूलना नहीं चाहिये कि तुम्हारे पिता ने ......हाँ, हाँ, मुझे यह कहते हुए लज्जा आती है...... मेरे ज्येष्ठ भ्राता ने क्या-क्या आसुरी कार्य किये हैं। मुझे गालियाँ देते समय तुझे यह विचार करके लज्जित होना चाहिये कि तूने कितनी पतिव्रता स्त्रियों के धर्म भ्रष्ट करने में अपने पिता की सहायता की है।

दुष्ट ! तुझे ज्ञात है कि मैंने कभी अधर्म को प्रेम नहीं किया और तुम सब लोगों को उससे बचने की सम्मति देता रहा हूँ। पर तुम सदैव उसे ठुकराते रहे। अब वह वृक्ष जिसे तुमने इतने समय तक पाप के जल से सींचा है फलीभूत हो रहा है, और उसके फल तुम्हें खाने पड़ेंगे। निश्चय जो बोता है वह खाता है, जो करता है वह भरता है।

यह शब्द सुनकर इन्द्रजीत का धैर्य्य जाता रहा। वह अपने चारों ओर शत्रु को घेरा डाले देख रहा था और चाहता था कि दूसरों को लक्ष्य बनाने से प्रथम जाति और देश के शत्रु विभीषण

को समाप्त करदे। इसलिये उसने एक गदा उठाकर जोर से घुमाई, और विभीषण को लक्ष्य करके छोड़ दी। परन्तु दूसरी ओर से लक्ष्मणजी के धनुष से निकले हुए अचूक बाणों ने उसे मार्ग में ही काट कर गिरा दिया। लक्ष्मणजी को सन्मुख देखकर इन्द्रजीत की जिह्वा से निकला:—"वीर! हम तेरी धनुषविद्या की सराहना करते हैं, परन्तु अब अपने शस्त्र सम्हाल कर तैयार हो जाओ, सामना इन्द्रजीत से है जिसके प्रहार से पृथ्वी आकाश दोनों त्राहिमाम-त्राहिमाम् पुकारते हैं।"

लक्ष्मण—निशाचर! ऐसे कार्य जिह्वा से नहीं हुआ करते उनके लिये हाथों को हिलाने की आवश्यकता है।

इन्द्रजीत—क्या वह दिन भूल गये जब तुम दोनों भ्राता नागपाश से बंधे पड़े थे और फिर ब्रह्मास्त्र की मार से मृतकों की भाँति गिरे थे?

लक्ष्मण—वीर छिपकर वार नहीं किया करते। वह जो कुछ था तुम्हारे गुप्त कार्यों का परिणाम था, परन्तु यदि कुछ भी साहस शेष है तो आओ यही पृथ्वी और यही आकाश साक्षी होंगे कि इन्द्रजीत वीरों के सन्मुख क्या कुछ कर सकता है?

दोनों वीरों में धूआंधार युद्ध प्रारम्भ होगया। दोनों अपने युग के अनुपम योद्धा थे, दोनों धनुर्विद्या के विशेषज्ञ थे, दोनों मैदान के धनी थे। दोनों के धनुषों ने आग उगली, तीर छोड़े, नाराच, अर्धचन्द्र और पता नहीं किस-किस प्रकार के बाण बरसाये। उनके कवच टूट गये, शरीर लहूलहान हो गये, पर

क्या मजाल किसी की तीव्रता में अन्तर आया हो। इसी बीच में लक्ष्मण ने इन्द्रजीत के सारथी का शिर काटा, तो इन्द्रजीत ने एक हाथ से घोड़ों को संभालकर दूसरे से बाणवर्षा आरम्भ कर दी। तब लक्ष्मण के बाणों ने बागें काट दीं और घोड़ों के प्राण लेकर रथी को रथहीन कर दिया।

सारथी और घोड़ों को मरा देखकर इन्द्रजीत ने कुछ काल तक पैदल युद्ध किया। फिर एक ऐसा अस्त्र छोड़ा कि चारों ओर धुआंधार होगया। लक्ष्मण जी उसे देख न सके, पर जिस समय धूम्र कम हुआ तो ज्ञात हुआ कि इन्द्रजीत नवीन रथ पर सवार पहिले से दुगुणे जोश से युद्ध कर रहा है! अब साधारण शस्त्र छोड़कर अस्त्रों का युद्ध प्रारम्भ हुआ। दोनों इस विद्या में प्रवीण थे, दोनों एक दूसरे के विनाश पर तुले हुए थे। दोनों के हृदय में विजय कामना थी। विभीषण सामने खड़ा कौतुक देख रहा था। इन्द्रजीत का हृदय उसे देखकर जल रहा था। उसने तीन बाणों से उसके मुख को घायल कर दिया। विभीषण ने उसके सारथी के प्राण लिये और लक्ष्मण के बाणों ने घोड़ों को समाप्त करके उसे पदाति युद्ध पर विवश कर दिया।

इन्द्रजीत क्रोध से लाल-पीला हो रहा था। उसने वह अस्त्र जो यमराज से छीना था विभीषण पर फेंका; परन्तु लक्ष्मण ने कुबेर अस्त्र फेंककर उसे मार्ग में ही ले लिया। दोनों अस्त्र एक दूसरे से टकराये तो एक भीषण अग्नि प्रचण्ड हुई और दोनों के दोनों परस्पर कट कर ऐसे गिरे जैसे दो नक्षत्र टूटकर पृथ्वी पर

गिरजायँ। उन अस्त्रों को व्यर्थ देखकर दोनों का क्रोध और बढ़ गया और लक्ष्मण ने इन्द्रजीत को लक्ष्य करके वारुण अस्त्र छोड़ दिया। उधर इन्द्रजीत के हाथ से छूटे हुए रौद्र अस्त्र ने वारुण अस्त्र का विनाश करके शूल, मुद्गर, भुशुण्डी, गदा, खंजर आदि चारों ओर बिखेर दिये। अब लक्ष्मण ने एक के बाद दूसरा माहेश्वर अस्त्र और ऐन्द्र अस्त्र इन्द्रजीत पर छोड़े। उन अस्त्रों के छूटते ही अग्नि ज्वाला वायु में भड़की और दोनों सेनाओं ने विस्मय से देखा कि इन्द्रजीत का शरीर शस्त्र चला रहा है पर शीश का पता नहीं।

उस अद्वितीय योद्धा का विनाश करके लक्ष्मण जी "रामचन्द्र जी की जय" के जयकार बुलाते हुए शिविर को लौटे तो पता लगा कि उनकी अनुपस्थिति में राक्षस सेना के सरदार कम्पन और प्रजंघ अङ्गद के हाथों मारे जा चुके हैं, शोणिताक्ष का वध द्विविध ने कर दिया है, यूपाक्ष मेंद के खड्ग से कट चुका है, कुम्भ वानरराज सुग्रीव की गदा का ग्रास हो गया है, खर का पुत्र मकराक्ष रामचन्द्र जी के बाणों से मरकर धराशायी हो रहा है, राक्षस सेना में चारों ओर भगदड़ मच रही है, वानर शूरवीर उसे चुन-चुनकर मार रहे हैं और चहुं ओर रामचन्द्र जी का जयघोष हो रहा है।

यह युद्ध तीन दिन और तीन रात्रि होता रहा और चतुर्दशी के दिन समाप्त हुआ। लक्ष्मण लौटे तो उनका शरीर घावों से भर रहा था। रामचन्द्र जी ने उन्हें विजय-पताका उड़ाते हुए आते

देखा तो मन भर आया और उन्होंने आगे बढ़कर उसे हृदय से लगा लिया। लक्ष्मण जी चरणों में झुके, परन्तु भ्राता ने आदरयुक्त उन्हें गोदी में लेलिया और हनुमान और विभीषण को सन्मुख देखकर कहा, "आज आप लोगों ने जो कार्य किया है उसके मूल्य का अनुमान करना असम्भव है।" फिर सेना के प्रधान चिकित्सक (Surgeon general) सुखैन जी को बुलाकर घायलों को उनके सुपुर्द किया गया। कहने की आवश्यकता नहीं कि उनकी अचूक औषधियों ने सब के घाव ठीक करके उन्हें फिर युद्ध के लिये तैयार कर दिया।

❀ ❀ ❀

इन्द्रजीत की मृत्यु ऐसी बात न थी जो लङ्का में सनसनी न फैला देती। जिसने भी उसे सुना दांतों में उँगली दबाकर रह गया और दशग्रीव तो आग बगूला ही हो गया। उसने शिर कुचले हुए सर्प की भान्ति पेच और ताव खाये। उसके क्रोध का प्रथम शिकार उसका निःसहाय बन्दी जानकी सीता थी। खड्ग लेकर दौड़ा और चाहता था कि उसका सिर काटकर हृदय की अग्नि को उसके रक्त से शान्ति करे; परन्तु मार्ग में सुपार्शव से भेंट हो गई। यह मन्त्री उनके सारे मन्त्रियों से अधिक बुद्धिमान था; दशग्रीव को क्रोध से लाल पीला और खड्ग पर हाथ मारते देखकर बोला, "सरकार किधर जा रहे हैं।"

दशग्रीव-- इद्रन्जीत मारा गया! उसका प्रतिकार लूंगा।

सुपार्शव—क्या शत्रुसेना ने इधर आक्रमण कर दिया?

दशग्रीव शत्रु का आक्रमण तो इधर नहीं हुआ पर हमारा महान शत्रु इधर बन्दी है उसके रक्त से हाथ रगूंगा।

सुपार्श्व—क्या महाराज विस्तारपूर्वक बतायेंगे ?

दशग्रीव—हम पहेलियां नहीं कह रहे। आज जानकी सीता को मृत्यु के घाट उतारने का निश्चय करके निकले हैं।

सुपार्श्व—क्या सत्य ?

दशग्रीव—सर्वथा।

सुपार्श्व—(कर जोड़कर) परमात्मा के लिये इस विचार को त्याग दीजिये।

दशग्रीव—क्यों ?

सुपार्श्व—यह लङ्का के महाराज की शान से गिरी हुई बात है।

दशग्रीव—क्यों ?

सुपार्श्व—स्त्री पर, फिर बन्दी पर और तिस पर निःशस्त्र पर वार करना वीर पुरुषों का धर्म नहीं। किसी भी धर्म में, किसी भी देश और जाति में, इसकी आज्ञा नहीं। यदि महाराज ऐसा करेंगे तो सदैव के लिये अपने नाम के साथ वह कलंक लगा लेंगे जो किसी के मिटाये नहीं मिटेगा। इन्द्रजीत के वध का प्रतिकार लिया जाना चाहिये और अवश्यमेव लिया जाना चाहिये, परन्तु खडग यदि चलनी ही है तो उनके विरुद्ध चलनी चाहिये जिन्होंने उस शूरवीर का वध किया है। ऐसा होने पर उस शूरवीर की आत्मा सन्तुष्ट होगी। नहीं तो विश्व यही कहेगा कि लंकापति

पुत्र के वध का प्रतिकार उसके मारने वाले से तो न ले सके, पर उसके स्थान में एक अबला बन्दी स्त्री पर तलवार लेकर चढ़ दौड़े। उन्होंने रणक्षेत्र में योद्धाओं का सामना करने के स्थान में स्त्री पर शस्त्र चलाये, क्योंकि वह निःशस्त्र थी।

दशग्रीव--(कुछ सोचकर) तुमने ठीक कहा। सेना तैय्यार हो, हम स्वयं उसके सेनापति बनेंगे। हमारे धनुष से निकले हुये बाण अब राम और लक्ष्मण का रक्त पियेंगे। हम खर, दूषण, कुम्भकर्ण, इन्द्रजीत सबकी हत्या का बदला लेंगे। हमारे शस्त्र मेघ घटा की भाँति सब ओर छाकर आकाश, पृथ्वी, सागर सबको ढाँप लेंगे। वानर सेना टुकड़े-टुकड़े होकर उड़ जायगी। शत्रुओं का विनाश करके हम लंका निवासियों के अश्रु पोछेंगे। रथ तैय्यार हो, उस पर हमारे अस्त्र-शस्त्र रक्खे जायं, शेष हमारे साथ-साथ भेजे जायें, जिन लोगों में साहस और धैर्य्य है हमारे साथ चलें और शत्रु के रक्त में हाथ रंगने के लिये तैय्यार हो जायं। ऐसे अवसर बार-बार नहीं मिला करते।

❀ ❀ ❀

राक्षस सेना अग्नि और प्रलय लेकर लंका से बाहर निकली। विरुपाक्ष, महोद्र और महापार्श्व उसके तीन भागों के सेनापति थे और स्वयं राक्षसराज धनुष उठाये चारों ओर विनाश की वस्तुयें फेंक रहे थे। उनके हृदय की अग्नि चारों ओर मृत्यु बखेर रही थी। वानरराज सुग्रीव ने उन्हें आता देखकर नाका रोक दिया। राक्षस सेना की अग्रसेना के सेनापति विरुपाक्ष से जो हाथी पर

सवार सेना के आगे-आगे चल रहा था, उसका सामना हुआ। सुग्रीव ने गदा घुमाकर हाथी के मस्तिष्क पर दे मारी, उसकी मार से हाथी चिंघाड़ता हुआ पीछे हटा और पृथ्वी पर लेटकर मूर्छित हो गया। यह देखकर विरुपाक्ष एक छलांग में उससे विलग होकर तलवार लिये सुग्रीव पर झपटा, परन्तु वानरराज का सामना न कर सका और थोड़े ही काल में घायल होकर सदैव की नींद सो गया। अग्रसेना सेनापति की मृत्यु के कारण ठिठकी, पर थोड़े ही काल में महोद्र ने विरुपाक्ष का स्थान लेकर वानर सेना पर आक्रमण कर दिया। अपनी सेना पर दबाव पड़ता देखकर वानरराज फिर आगे बढ़े और एक ही धक्के से राक्षस सेना को दूर तक पीछे धकेल कर ले गये। महोद्र ने यह देखकर सुग्रीव को अपने बाणों का लक्ष्य बनाया, परन्तु विपक्षी की गदा की मार ने उसके सारथी की जान लेकर घोड़ों को हताहत कर दिया। महोद्र यह देखकर पैदल उनकी ओर बढ़ा, परन्तु खड्ग के युद्ध में वानरराज का सामना सुगम नहीं था। परिणाम यह हुआ कि वह भी विरुपाक्ष की भांति शीघ्र ही यमलोक को प्रस्थान कर गया।

महोद्र के वध का समाचार सुना, तो महापार्श्व के नेत्र क्रोध से लाल हो गये और उसने सम्पूर्ण शक्ति से वानर सेना पर हल्ला बोल दिया। पर उसके स्वागत के लिये युवराज अङ्गद प्रस्तुत थे। उन्होंने गदा की एक ही मार से उसकी सिट्टी गुम कर दी। उधर जाम्बवान जी ने उसके घोड़ों के प्राण लिये। महापार्श्व

की जब सुधि ठिकाने आई, तो वह कटार हाथ में लेकर अङ्गद पर झपटा। परन्तु युवराज की भारी गदा की मार न सहारकर पृथ्वी पर गिरा और गिरा ही रह गया।

शूरवीर सेनापतियों की मृत्यु ने दशग्रीव के क्रोध पर वही काम किया जो अग्नि पर घृत करता है। वह दूर निकट प्रलय मचाता, प्रत्येक ओर नवीन प्रकार के शस्त्र फेंकता, उधर बढ़ा जिधर राम और लक्ष्मण वानर सेनापतियों को आदेश दे रहे थे। उसे आता देखकर लक्ष्मणजी उसके सन्मुख आये और बाणों की बौछाड़ से गगन में वर्षा ऋतु के मेघों की छटा बांध दी। परन्तु दशग्रीव का लक्ष्य रामचन्द्रजी थे। उसने तामस अस्त्र चलाकर अपने इर्द गिर्द का मार्ग साफ कर लिया। उस अस्त्र के वेग से वानर सेना का वह भाग, जो श्री रामचन्द्रजी की रक्षा कर रहा था, जलकर राख हो गया। अब संसार के सबसे बड़े धनुषधारी एक दूसरे के सन्मुख आ गये। उस समय एक ओर तो दोनों के धनुष से निकले हुए बाण प्रकाश को रोक रहे थे, दूसरी ओर सूर्यदेव अपना दिन भर का कार्य समाप्त करके अस्ताचल को जा रहे थे। इसलिये चारों ओर अन्धकार हो गया। साधारण अस्त्रों से काम चलता न देखकर दशग्रीव ने असुर अस्त्र निकाला, जिसके चलते ही नाना प्रकार के बाण चारों ओर गिरने लगे। श्री रामचन्द्रजी ने इसका उत्तर अग्नेय अस्त्र से दिया, जिससे चारों ओर अग्नि की ज्वाला भड़क उठी और असुर अस्त्र का जोश ठंडा पड़ गया। अपने चलाये हुए अस्त्र को निष्फल

देखकर दशग्रीव ने यम अस्त्र को रणक्षेत्र में छोड़ा जिसमें से दमकते हुये शूल, गदा, मूसल, मुग्दर आदि निकल कर चारों ओर मृत्यु फैलाने लगे। परन्तु थोड़े ही काल में रामचन्द्रजी के हाथों से छूटे हुए गन्धर्व अस्त्र ने यम अस्त्र को भी निष्फल कर दिया।

इधर दोनों शूरवीरों के हाथों से यह दिव्य अस्त्र निकल रहे थे, उधर लक्ष्मणजी भ्राता की सहायता को बढ़े आ रहे थे। उनके हाथों से छूटे हुये बाणों ने दशग्रीव के रथ की ध्वजा को काट और उसके सारथी की जान लेकर उसे आगे बढ़ने से रोक दिया और उसके हाथ के धनुष को काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दिया। दूसरी ओर से विभीषण ने उसके घोड़ों पर वार करके उनकी जान ले ली। विभीषण को सन्मुख देखकर दशग्रीव का क्रोध अन्तिम सीमा पर पहुँच गया और उसने रथ से कूदकर एक भयानक शक्ति उठाकर उस पर छोड़ दी। परन्तु लक्ष्मणजी के बाणों ने उसे मार्ग में ही काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दिया। शक्ति को टूटा देखकर दशग्रीव ने दूसरी शक्ति लेकर विभीषण पर वार किया, परन्तु लक्ष्मणजी ने आगे बढ़कर उस वार को अपने वक्ष पर ले लिया। शक्ति उनके कवच को तोड़कर उनके हृदय में घुस गई और वह मूर्छित होकर गिरे। उन्हें गिरता देखकर दशग्रीव के मुख से निकला—"अभिमानी राजकुमार ! तू ने विभीषण की रक्षा की है; परन्तु यह शक्ति तुम्हारे शरीर से तुम्हारे प्राण लेकर ही निकलेगी।"

लक्ष्मणजी का गिरना था कि निमिष मात्र में रामचन्द्रजी ने एक ही छलांग में उनके सिरहाने पहुंचकर शक्ति को दोनों हाथों से खेंचकर टुकड़े-टुकड़े कर दिया। दशग्रीव ने उस समय उनके शरीर को लक्ष्य बनाकर नाना प्रकार के शस्त्रों की वर्षा कर रखी थी पर उन्होंने उसकी चिन्ता न करके हनुमान और सुग्रीव से कहा :—"शूरवीरो ! लक्ष्मण जी की रक्षा अब तुम्हारे सुपुर्द है। मैं इस स्थान से हिल नहीं सकता जब तक कि दशग्रीव अथवा राम दोनों में से एक इस पृथ्वी से उठ नहीं जाता। आज परमात्मा की कृपा से यह राक्षस जो चोरों की भांति जानकीजी को जनस्थान से हर लाया था मेरे सन्मुख है। इसके पापों की सूची लक्ष्मण जी के घायल होने से और भी बढ़ गई है। आप सुखेन जी को बुलाकर लक्ष्मण जी को उन्हें सौंपें और मैं इसकी सुधि लेता हूं। अब दोनों सेनाओं को एक दूसरे का रक्तपात करने की आवश्यकता नहीं। सब लोग एक ओर होकर हमारे इस युद्ध का कौतुक देखें।" यह कहकर वह वापिस मुड़े और सन्मुख खड़े दशग्रीव पर शस्त्र वर्षा आरम्भ कर दी। उधर दशग्रीव भी कम न था। वह भी अपने जीवन का अन्तिम युद्ध लड़ने पर तुला हुआ था। इसलिये अनुमान किया जा सकता है कि युद्ध क्षेत्र की अवस्था क्या होगी? देर तक भीषण हत्याकाण्ड होता रहा। दोनों ओर से लाखों शस्त्र रणक्षेत्र में गिरे; परन्तु दोनों में से साहस किसी का कम न हुआ। पर अन्त में दशग्रीव ने अनुभव किया कि उसके शस्त्र समाप्त हो रहे हैं और अन्य सेनापतियों की

मृत्यु के कारण लंका से नवीन अस्त्रों के आने में गड़बड़ हो रही है। इसलिये उसका प्रबन्ध करने के लिये उसने कन्नी काटना ठीक समझा। रामचन्द्र जी का ध्यान भी लक्ष्मण की ओर था, इसलिये दशग्रीव को युद्धक्षेत्र से हटते देखकर उन्होंने उसका पीछा करना उचित न समझा।

❀ ❀ ❀

लक्ष्मण जी मूर्छित पड़े थे, घाव से रक्त बहुत बह गया था, इस कारण दुर्बलता बहुत हो रही थी, नाड़ी की गति इतनी धीमी हो गई थी कि सुनाई नहीं देती थी इसलिये दशग्रीव के युद्ध-भूमि से भागने पर जब श्री रामचन्द्र उनके सिरहाने पहुंचे तो सहसा उनके मुख से निकला—"अब युद्ध में विजय भी हुई तो किस अर्थ! भाई लक्ष्मण! वन में आते समय तुम मेरे पीछे-पीछे आये थे अब यमलोक में राम तुम्हारे पीछे-पीछे होगा!! कपट और छल से युद्ध करने वाले राक्षसों ने तुझे इस दशा को पहुंचा दिया। मैं अब जीकर क्या करूँगा? जानकी को प्राप्त करके क्या बनाऊँगा? स्त्रियां तो किसी भी देश में मिल सकती हैं, बन्धु भी प्रत्येक देश में मिल जाते हैं, परन्तु ऐसा कोई देश दृष्टिगोचर नहीं होता जहां पर भ्राता मिल सकें। देश में लौटने पर माता सुमित्रा को क्या उत्तर दूँगा? माता कौशल्या और कैकेयी से क्या कहूंगा? भरत और शत्रुघ्न पूछेंगे, "भैया आप लक्ष्मण के साथ वन को गये थे, वह कहां है?" तो क्या उत्तर दूंगा? भाई लक्ष्मण! बोलते क्यों नहीं? मेरी ओर नेत्र खोलकर निहारो। वनों और

जङ्गलों में जब मैं दुखी होता था तुम मुझे धैर्य बंधाया करते थे अब मुझसे क्यों नहीं बोलते ?"

रामचन्द्र जी के मुख से यह शब्द निकले तो श्रोताओं की आँखों से आँसू निकल गये। सुषेन रोगी को देख रहे थे, उससे निवृत्त होकर उन्होंने रामचन्द्र जी की ओर दृष्टि करके कहा—"श्री महाराज ! लक्ष्मण जीवित हैं। देखिये इनके मुख की कान्ति विद्यमान है हाथ पांव नरम हैं, नेत्र साफ हैं, आप रुदन बन्द करिये, इनका हृदय बराबर धड़क रहा है। (हनुमान की ओर लक्ष्यकर के) पवनसुत ! मुझे उन बूटियों की आवश्यकता है जो जामवन्त जी ने उस दिन आपको बताई थीं। वह महोदय पर्वत के दक्षिणी शिखर पर मिलेंगी। उनमें से विशल्यकर्णी शरीर में घुसे हुए अस्त्रों को बाहर निकालकर घाव भरती और पीड़ा हरती है। सावर्णकर्नी शरीर के वर्णों को ठीक करने में सहायता देती है। संजीवकर्णी मूर्च्छा हटाकर सुधि ठीक करती है। सन्धानी टूटी हुई अस्थियों को जोड़ती है। उन बूटियों के शीघ्र आ जाने से लक्ष्मण जी के जीवन की रक्षा हो सकती है अन्यथा नहीं।

हनुमान—मैं उस दिन यह औषधियां लेने कैलाश और ऋषभ पर्वत के मध्यवाले पर्वत पर गया था, और पहचान न होने के कारण उन शिलाओं को ही उखाड़ कर ले आया था जिन पर वह उगी थीं। आप थोड़ा कष्ट करके उन शिलाओं को देख लें, यदि वह औषधियां वहां हैं, तो कहीं जाने की आवश्यकता न रहेगी।

यह सुन कर सुखैन जी उठे, और शीघ्र ही कुछ औषधियां लेकर आगये। उन्होंने उन्हें पीस कर लक्ष्मण जी के नाक के समीप रख कर उन्हें सुंघाया, और शेष को पीस कर शरीर पर लेप कर दिया। उन्हें संूघते ही उनकी पीड़ा दूर हो गई, घाव भर आये, और वह शीघ्र ही सुधि में आकर बैठ गये। यह देखकर रामचन्द्रजी ने उन्हें अपने हृदय से लगा लिया, और उनके मुख से निकला "यह सौभाग्य है कि तुम मृत्यु के मुख से निकल आये हो, तुम्हारे बिना जीवन व्यर्थ था।"

लक्ष्मण—(धीमी वाणी से) आर्य्य! आप सत्य पराक्रमी हैं, मेरे जैसे तुच्छ सेवक के लिये आपको चिन्तित और निराश नहीं होना चाहिये। अब आप दशग्रीव को मार कर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करें। आप के बाणों का लक्ष्य बन कर शत्रु जीवित नहीं रह सकता। जहां तक हो सके सूर्य्यास्त से प्रथम मैं उस दुरात्मा का वध देखना चाहता हूं। यदि आप ऐसा करना चाहते हैं, यदि आपके मन में अपनी प्रतिज्ञा पूर्ति की इच्छा है, और यदि आप महारानी जानकी सीता को पाने की अभिलाषा रखते हैं तो दशग्रीव को मार कर मेरी प्रार्थना स्वीकार करें।

दशग्रीव का अन्तिम युद्ध

दिन निकला और उसके साथ ही दशग्रीव सम्पूर्ण तैय्यारी के साथ समर-भूमि में आकर रामचन्द्रजी को ललकारने लगा। उसकी ललकार सुनकर वानर सेना भी आगे बढ़ी। रामचन्द्रजी आज महाराज इन्द्र के भेजे हुये रथ पर सवार थे, जिसका सारथी उन्हीं का रथवान् मातुली था। मातुली अश्वविद्या में अद्वितीय गिना जाता था। रथारोहण के समय रामचन्द्रजी ने उससे कहा—"मातुली! दशग्रीव का रथ बढ़ा चला आ रहा है। जिस भांति वायु का वेग उमडे हुए मेघों को छिन्न-भिन्न कर देता है उसी भांति आज हम राक्षसराज को जड़ मूल से उखाड़ कर नष्ट करना चाहते हैं। तुम देवराज इन्द्र के सारथी हो, इसलिये तुम्हें बताने की आवश्यकता नहीं कि पूर्ण चतुराई से, घबराहट छोड़कर, मन और नेत्रों को स्थिर रखते हुये, घोड़ों को वश में रखना है। आज हम एकाग्रचित्त होकर युद्ध में जा रहे हैं, इसलिये तुम्हें तुम्हारे कर्त्तव्य का स्मरण कराना उचित समझा है, आगे बढ़ो।" मातुली ने हाथ बांधकर प्रणाम करते हुये कहा "भगवान् युद्ध में चलें, दास सेवा में अपनी जान लड़ा देना अपना सौभाग्य समझेगा।" यह कहकर उसने बागें उठाईं और थोड़े ही समय में दोनों शूरवीर फिर आमने सामने हो गये। दोनों सेनाएँ उस समय शत्रुता के भाव को छोड़कर कौतुक देखने लगीं, ऋषि, मुनि और महर्षि पर्वत शिखिर

पर खड़े होकर दृश्य देखने लगे। दशग्रीव का गन्धर्व अस्त्र रामचन्द्रजी के गन्धर्व अस्त्र से और देवास्त्र देव अस्त्र से टकरा कर नष्ट हो गया। चारों ओर भयानक धमाकों के शब्द होने लगे, वायु में भीषण गड़गड़ाहट उत्पन्न हुई और लोगों के नेत्र विद्युत् प्रकाश से चौंधियाने लगे। दशग्रीव क्रोध से अन्धा हो रहा था, उसके धनुष से निकले हुए राक्षस अस्त्र से नाना प्रकार के विष मिश्रित सर्प के आकार के बाणों ने रामचन्द्रजी को घेर लिया, पर शीघ्र ही रामजी के गरुड़ अस्त्र से निकले हुए अस्त्रों ने उनका विनाश कर दिया। यह देखकर दशग्रीव ने मातुली को लक्ष्य बनाकर उसे घायल किया। उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि उसके दो नहीं बीस हाथ काम कर रहे हैं, क्योंकि एक ही समय में खड्ग, परशे, मुग्दर, शक्ति और पता नहीं क्या-क्या अस्त्र उसके हाथों से निकल रहे थे। मातुली को घायल देखकर श्री रामचन्द्रजी की भौएँ तन गईं, नेत्र लाल हो गये और क्रोध में आकर उन्होंने राक्षस राज पर भारी बाण वर्षा की। उस समय यह प्रतीत होता था कि उनका क्रोध पृथ्वी आकाश को विनाश कर देगा। यह देखकर दशग्रीव ने एक भारी त्रिशूल उठाकर उसे रामचन्द्रजी पर फेंकते हुए कहा—"यह त्रिशूल तेरे और लक्ष्मण दोनों के प्राण लेकर मुड़ेगा"। रामचन्द्रजी ने देखा तो अग्नि का एक भयानक अङ्गारा उनकी ओर बढ़ा चला आ रहा था और उससे टक्कर खाकर उनके हाथ से निकले हुए बाण जलकर नीचे गिर रहे थे। यह देखकर उन्होंने इन्द्र की भेजी हुई शक्ति को हाथ

में लेकर त्रिशूल पर फेंका। उस शक्ति का लगना था कि त्रिशूल टुकड़े-टुकड़े होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा, साथ ही रामजी की चुटकी से निकले हुए बाणों ने दशग्रीव के घोड़ों को घायल करके उसके मस्तक को लहूलुहान कर दिया।

घायल होकर राक्षसराज पहले से भी अधिक झल्ला उठा और उसने बाण वर्षा से रामचन्द्रजी के वक्ष को बेंध दिया। रामचन्द्र इससे घबराये नहीं, परन्तु लाल-लाल रक्त ने उनके कवच को प्रफुल्लित पलाश का रंग दे दिया। उनके शरीर से रक्त बहते देखकर दशग्रीव के मुखमण्डल पर मुस्कान आ गई, परन्तु दूसरे ही क्षण में अनगिनत बाणों की वर्षा ने उसे मूर्छित कर दिया।

उसके सारथी ने रथी को मूर्छित देखा तो रथ को चक्कर देकर वापिस मुड़ा और थोड़ी देर में ही वानर सेना की दृष्टि से ओझल हो गया। युद्ध क्षेत्र से बाहर निकल कर दशग्रीव की सुधि ठिकाने आई तो अपने आपको लंका की ओर पलायमान देखकर उसने सारथी से कहा, "मूर्ख! तूने क्या कर दिया? क्या तूने मुझे कायर समझ लिया था जो मुझे रणक्षेत्र से हटा लाया? अरे! तूने मनमानी करके आज मुझे शत्रु की दृष्टि में गिरा दिया? अनार्य! यह हितचिंतक मित्र का नहीं शत्रु का काम है। शीघ्र रथ को लौटा ऐसा न हो शत्रु अवसर पाकर भाग जाय।"

सारथी—(हाथ बांधकर) महाराज! मैं न भयभीत हुआ हूँ, न मुझे शत्रुओं ने बहकाया है, आपके प्रति मेरी भक्ति में भी अन्तर नहीं आया है, न मैं उस कृपा को भूला हूं जो समय-समय

पर आपकी ओर से मुझ पर होती रही हैं। आप युद्ध में मूर्छित हो गये थे। मैंने समझा थोड़ा विश्राम करलें, घोड़ों को भी विश्राम की आवश्यकता थी, इसलिये मैं आपको क्षेत्र से निकाल लाया, क्योंकि योद्धा की समस्त बातों पर दृष्टि रखना और उसे विपत्ति से बचाना सारथी का धर्म है। मैंने जो कुछ किया है केवल आपके लाभ के लिये किया है। अब जो आज्ञा होगी उसका पालन होगा।

दशग्रीव—अच्छा! चलकर घोड़ों को बदल लो। रथ में शस्त्र जमा करलो। आज हम शत्रु का विनाश किये बिना रणक्षेत्र से नहीं हटेंगे। यह हमारी प्रतिज्ञा है।

❀ ❀ ❀

दशग्रीव के भाग जाने पर अगस्तजी ने श्री रामचन्द्रजी का ध्यान अपने नये बनाये हुए अस्त्र की ओर आकृष्ट करते हुए कहा:—"राम! यह अस्त्र इस समय तक किसी युद्ध में उपयोग में नहीं लाया गया। इसका नाम 'आदित्य हृदय' है। इसकी शक्ति सूर्य के हृदय की शक्तियों से ली गई है और यह सूर्य की किरणों से ही चलता है। अगस्ताश्रम में इसके सम्बन्ध में प्रयोग किये गये हैं और उन्होंने प्रमाणित कर दिया है कि इस अस्त्र के मुकाबले का कोई अस्त्र संसार में नहीं है। यदि आवश्यकता समझो तो इसे राक्षसराज के साथ युद्ध में प्रयोग करो।"

❀ ❀ ❀

दशग्रीव के लौटने पर युद्ध फिर घमासान का हो गया। राक्षसराज का प्रथम उद्देश्य यह था कि मातुली को मारकर राम

को रथहीन करदे। इसलिये उसके बाणों की वर्षा उसी ओर हो रही थी, परन्तु मातुली ने अश्व विद्या के जौहर दिखाते हुए यह बता दिया कि रथी के जीवन की रक्षा और शत्रु के नाश करने में सारथी का भाग रथी से कम नहीं। घोड़े उसके संकेत पर नाचते थे और एक ही क्षण में पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों ओर घूमते हुए दिखाई दे रहे थे। राक्षसराज का सारथी भी मुकाबले में अपनी चतुरता दिखा रहा था और चारों ओर पहियों और शस्त्रों का एक चक्कर सा चलता दिखाई दे रहा था।

दोपहर का सूर्य ढल चुका था और रामचन्द्रजी लक्ष्मणजी की इच्छा पूर्ति के लिये सायंकाल से प्रथम इस झगड़े को समाप्त कर देने पर तुल रहे थे। प्रतिवादी भी अन्तिम दाँव लगाये समझ रहा था कि रामचन्द्रजी के मारे जाने पर पांसा पलटने की सम्भावना है इसलिये वीरता के पूरे-पूरे जौहर दिखा रहा था। कभी कोई अस्त्र फेंकता, कभी किसी शस्त्र से काम लेता। उसकी दृष्टि इधर उधर सब स्थानों पर पड़ रही थी और उसकी भुजाएँ चारों ओर घूम रही थीं। उनसे छूटे हुए शस्त्र रामचन्द्रजी के दायें बायें सब ओर गिर रहे थे, उन्हें निष्फल करने के लिये रामजी ने धनुष पर एक असाधारण बाण रखकर राक्षसराज के शिर को लक्ष्य बनाया, पर वह बाण उससे टकराकर खट से नीचे गिर गया। दूसरी बार यत्न किया गया पर सफलता न हुई, पर जब तीसरी बार भी ऐसा ही हुआ तो रामजी विस्मित रह गये क्योंकि यह बाण अचूक थे।

राम सोच ही रहे थे कि राक्षसराज की ओर से नई बाण वर्षा ने उन्हें सावधान कर दिया। साथ ही मातुली के मुख से निकला, "प्रभु ! ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कीजिये।" यह चेतावनी समय पर थी, रामचन्द्रजी ने झटपट फुफकारते हुए सर्प की भांति वह बाण जो अगस्त आश्रम से चलते समय अगस्तजी ने दिया था हाथ में लिया और दशग्रीव को लक्ष्य करके छोड़ दिया। तब संसार ने देखा कि उस शूरवीर का जो इतने दीर्घकाल तक युद्ध से घबराया नहीं था, वक्षस्थल फटकर टुकड़े-टुकड़े हो गया। वह रथ से गिरकर पृथ्वी पर जा पड़ा। उसके हाथ से अस्त्र-शस्त्र छूट गये। उसका अमर आत्मा नश्वर शरीर को छोड़कर कहीं का कहीं पहुँच गया।

सीता की अग्नि परीक्षा

"सीता ! आज कोई मीठी वस्तु खिलाओ !"

सीता—क्यों कला क्या बात है ?

कला—पहले मिठाई का प्रबन्ध करो फिर बताऊँगी ।

सीता –(ठंडा श्वास लेकर) मिठाई का प्रबन्ध बन्दियों के पास ?

कला—तुम्हें बन्दी कहने वाले के मुँह में राख ! तुम हो लंका की महारानी ?

सीता—(त्योरी चढ़ाकर) कला ! एक बार यह शब्द कह दिया, दूसरी बार इसे मुख से निकाला तो बुरा होगा ।

कला—क्यों बुरा होगा ? क्या सत्य भाषण बुरा है ?

सीता –फिर वही बात ! दूध पीती बच्ची हो जो इसका अर्थ नहीं समझती ।

कला –(माँ को पुकार कर) माताजी ! देखो जानकीजी मुझ पर क्रुद्ध हो गई ।

सरमा—(कला की माता) तुमने कोई ऐसी-वैसी बात कह दी होगी । क्षमा मांग लो ।

कला—मैं तो अपने कथन से एक शब्द भी वापिस न लूँगी, न क्षमा मांगूंगी ।

सरमा—तुमने क्या कहा था ?

कला—कुछ भी नहीं ? केवल यही कहा था "तुम्हें बन्दी कहने वाले के मुख में राख ! तुम हो लंका की महारानी", इसी पर बिगड़ गईं।

सरमा—(आगे आकर सीता के चरणों को स्पर्श करते हुये) जानकी ! महारानी ! उठो, यह क्रोधित होने का समय नहीं, हर्षित होने का है।

सीता—दोनों माता पुत्री पहेलियाँ बुझा रही हो।

सरमा—(गम्भीरता पूर्वक) अभी-अभी समाचार मिला है कि ज्येष्ठजी रणक्षेत्र में मारे गये।

सीता—(चौंक कर) कौन मारा गया ? दशग्रीव ?

सरमा—हाँ दशग्रीव रणक्षेत्र में युद्ध करते हुए महाराज रामचन्द्रजी के हाथों वीर गति प्राप्त कर गये।

सीता—क्या यह सत्य है ? तुम्हारे मुख में घी शक्कर ! इतने दीर्घ काल के पश्चात् यही एक शुभ समाचार कर्णगोचर हुआ है।

सरमा—कला सत्य ही तो कह रही है, आप यूं ही क्रुद्ध हो गईं।

सीता—(कला का हाथ पकड़ कर) कला ! आओ अब मैं तुम्हें मनाती हूं।

कला—(मुँह दूसरी ओर करके) मैं नहीं मानूंगी।

सीता—इस शुभ अवसर पर कोई क्रुद्ध नहीं रह सकता।

कला—आप क्यों क्रुद्ध हुई थीं ?

सीता—तुम्हें ज्ञात है मुझे पता नहीं था।

कला—इससे क्या ? इस सुअवसर पर क्रुद्ध तो हुईं ना।

सीता—मानती हूँ, भूल हुई, क्षमा मांगती हूँ।

बाहर से आवाज़ आई, "महारानी, क्या मैं भीतर आ सकती हूँ।"

सीता—कौन ? त्रिजटा ? क्या आपको भी पूछने की आवश्यकता है

त्रिजटा—(भीतर आकर जानकी के चरणों में गिरते हुये) महारानी की जय हो।

सीता—(मुस्कराते हुये उसे उठाकर) माता यह क्या ?

त्रिजटा—पुत्री ! मैंने तुमसे कहा नहीं था कि मुझे स्वप्न आया है कि दशग्रीव गदहों से खिंचे जाते रथ पर आरूढ़ होकर दक्षिण दिशा की ओर भागा जा रहा है, मेरे स्वप्न साधारणतया सत्य हुआ करते हैं, सो वह स्वप्न भी सत्य ही हुआ। (सरमा से) महारानी ! रथ बाहर खड़ा है, दशग्रीव की मृत्यु के उपरान्त महाराज रामचन्द्रजी ने यह निर्णय किया है कि यदि लंका की प्रजा को कोई आपत्ति न हो, तो दशग्रीव की अन्तिम क्रिया के पश्चात् महाराज विभीषण को राज्य सिंहासन पर बैठाया जाय। आपको ज्ञात है वह तो उनका राज्याभिषेक उसी समय कर चुके थे जब महाराज विभीषण उनके निकट पहुँचे थे। पर अब वह विधि अनुसार लंका के सिंहासन पर आसीन होंगे और आपको उनके साथ राज्याभिषेक के लिये तैयार होना होगा।

सरमा—त्रिजटा क्या कहा ? क्या लंकावासियों के अपराध इतनी शीघ्र क्षमा हो गये ?

त्रिजटा—भोली महारानी ! तुझे ज्ञात नहीं महाराज रामचन्द्र कितने उदार हैं। उन्होंने समस्त लंका द्वीप में यह खुली घोषणा कर दी है कि उन्हें लंका निवासियों ही से नहीं उन सेनापतियों से भी कोई द्वेष नहीं जिन्होंने अपने राजा की आज्ञानुसार वानर सेना का रक्तपात किया है, क्योंकि जो कुछ हुआ राजआज्ञा से हुआ, उसके लिये आज्ञा देने वाला उत्तरदायी है न कि उसे पालन करने वाला। आज रणक्षेत्र में लंका की समिति की बैठक होगी और उसके निर्णय पर महाराज विभीषण का राज्यग्रहण निर्भर है। परन्तु सब जानते हैं कि समिति क्या निर्णय करेगी ? क्योंकि सारे लंका द्वीप में महाराज विभीषण के अतिरिक्त और कोई ऐसा नहीं जो इस आपत्ति काल में इन देशों का नेता बन सके और जिस पर भारतवासियों को भी विश्वास हो।

सीता—(अपने स्थान से उठकर) जानकी सीता महारानी सरमा को बधाई देती है (कला की ओर मुख करके) क्यों कला ! अब कुछ खिलाओगी या नहीं।

सरमा—(सीता के पांव छूती हुई) यह पतिव्रता के पतिव्रत का प्रभाव है ! यह तपस्विनी के तप का परिणाम है !

कला—(कृतज्ञता से रुंधे हुये कंठ से) सीता ! महारानी ! आपके पतिदेव ने पिताजी को इतना बड़ा राज्य दान कर दिया, उनसे अधिक दाता और त्यागी कौन होगा ?

सीता—इन बातों से मिठाई क्षमा नहीं होती।

सरमा—प्रभु की वस्तु प्रभु को अर्पण करके यदि प्रभु को प्रसन्न किया जा सकता है तो लंका भर की मिठाइयाँ आपके चरणों पर न्यौछावर हैं, परन्तु ऐसा करते लज्जा प्रतीत होती है।

* * *

दशग्रीव का अन्तिम संस्कार हो चुका, लंका द्वीप की समिति ने एक मत होकर अपना निर्णय सुना दिया। उस निर्णय के पालन में लक्ष्मणजी ने अपने हाथों से विभीषण को राजतिलक दे दिया। ऋषि, मुनि और महर्षि भारत के कोने-कोने से वायुयानों में बैठ कर रामचन्द्र जी को उनकी सफलता पर बधाई देने के लिये पहुँच गये। द्वीप समूह, अफ्रीका के राजे महाराजे विभीषण जी के राज्य तिलक में सम्मिलित हुये। भारत के निकट दूर से इन्द्र आदि देवता अपने अपने विमानों में बैठ कर इस शुभ अवसर पर एकत्रित हुये। लंका और भारत के मध्य सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर हो गये जिसके द्वारा दोनों देशों ने सदैव के लिये एक दूसरे को अपना साथी बना लिया। तब रामचन्द्रजी ने हनुमान को बुला कर कहा "हनुमान ! महाराज विभीषण से आज्ञा ले कर लंका में जाओ, और जनकनन्दिनी सीता को सुग्रीव लक्ष्मण के कुशल का समाचार सुना कर यह बताओ कि दशग्रीव संग्राम में मारा जा चुका है और उनका सन्देश लेकर वापिस आओ।

"जो आज्ञा" कहकर हनुमान राक्षसराज की आज्ञा लेकर

उड़े, और एकाएक अशोक वाटिका में पहुंचकर जानकी जी से कहने लगे "माता ! हनुमान चरण वन्दना करता है।"

जानकी जी ने सिर उठाया और उन्हें पहचान कर बोलीं "अरे ! पवनसुत हनुमान ! कहो बेटा कुशल तो हो।"

हनुमान—(हाथ बांध कर) माता ! मैं ही नहीं, श्री रामचन्द्र जी भी कुशल से हैं। रघुनाथ जी ने विभीषण जी की सहायता से लक्ष्मण जी और वानर शूरवीरों को साथ लेकर युद्ध में दशग्रीव को समाप्त कर दिया है। आपके पुण्य प्रभाव से ही महाराज को यह भारी विजय प्राप्त हुई है। आप चिन्ता छोड़ कर प्रसन्न हों, लंका का सारा ऐश्वर्य विभीषण जी को दिया गया है, आप इसे अब अपना ही गृह समझें।"

हनुमान जी के मुख से यह शब्द सुनकर जानकी जी का मन हर्ष से प्रफुल्लित हो उठा और वे कुछ भी बोल न सकीं। उन्हें मौन देखकर हनुमान जी ने कहा "माता क्या सोच रही हैं ? मुझसे बोलतीं क्यों नहीं।"

सीता जी के नेत्रों से हर्ष अश्रु बहने लगे, जिन्हें आंचल से पोंछ कर उन्होंने कहा—प्राणनाथ की विजय का जो शुभ समाचार तुमने सुनाया है इसने मुझे आनन्द मग्न कर दिया। इसलिये मुखसे कोई शब्द न निकल सका। इस समाचार को सुनाने के लिये तुम्हें क्या दूं ? बहुत सोचने पर इस भूमण्डल की कोई वस्तु ऐसी नहीं जान पड़ती जिसे तुम्हें दे कर सन्तुष्ट हो सकूं। चांदी, स्वर्ण तो

एक ओर दोनों लोकों का राज्य भी इस हर्ष समाचार की तुलना नहीं कर सकता।

हनुमान—माता! यह शब्द आप जैसी पतिव्रता देवी के मुख से ही निकल सकते हैं। इन्हें सुनकर मेरा पुरस्कार मुझे मिल गया। इस समय मैं कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।

सीता—कहो बेटा क्या कहते हो?

हनुमान—माता! मुझे ज्ञात है कि यह राक्षसियाँ, जो आपके गिर्द-गिर्द उपस्थित हैं, इन्होंने आपको बहुत कष्ट दिया है। यदि आप आज्ञा दें तो इनकी थोड़ी सी मरम्मत कर दूं।

सीता—शूर वीर! यह बेचारी अपने स्वामी की आज्ञा पालन करती थीं। उसमें इनका क्या दोष? मैंने यदि दुःख उठाना था तो उसे कौन रोक सकता था? भाग्य के लिखे को रोकने की शक्ति किस में है? मैं इनके अपराध पहिले से ही क्षमा कर चुकी हूँ। दशग्रीव की मृत्यु के पश्चात् इन्होंने मुझे कोई कष्ट नहीं दिया। बेटा! पापी हो या पुण्यात्मा, श्रेष्ठ पुरुषों को सब पर दया करनी चाहिये। ऐसा कौन व्यक्ति है जिस से कभी अपराध नहीं हुआ?

हनुमान—यह भाव श्री रामचन्द्र जी की अर्धांगी के न हों, तो किसके हों? मैं अब महाराज जी की सेवा में जा रहा हूँ, उनके लिये सन्देश देना हो तो दे दें।

सीता—मेरा सन्देश केवल यह है, कि मेरे हृदय में प्राणनाथ के दर्शनों की इच्छा अति प्रबल हो रही है।

हनुमान—मैं महाराज की सेवामें निवेदन कर दूंगा, और ईश्वर कीइच्छा हुई तो आज ही आप भगवान् राम तथा लक्ष्मण जी के दर्शन करेंगी।

❀ ❀ ❀

महाराज रामचन्द्र जी का दरबार लगा था। यक्षराज कुवेर, देवराज इन्द्र, समुद्रों के स्वामी वरुण और अन्य राजा लोग एक ओर बैठे थे, विश्वमित्र, गौतम, जमदग्नि, अगस्त्य, कश्यप, अत्रि, वाल्मीकि आदि महर्षि दूसरी ओर। वानर और राक्षस सेनाओं के सेनापति भी अपने अपने स्थानों पर उपस्थित थे कि विभीषण जी ने आगे आकर निवेदन किया "जनकनन्दिनी विदेहकुमारी सीता जी आगई। आज्ञा हो तो दरबार विसर्जन कर दिया जाय।"

यह सुनकर रामचन्द्रजी का मुख गम्भीर हो गया और उन्होंने विभीषण से कहा, "यहां जितने व्यक्ति हैं सब अपने हैं। जानकीजी बेखटके चली आयें, ताकि सब लोग उनके दर्शन कर सकें।"

लक्ष्मण, सुग्रीव और हनुमान जी ने उनके यह शब्द सुने तो उनके कान खड़े हो गये। उनकी दृष्टि रामचन्द्रजी के मुख की ओर उठी, पर वहां किसी प्रकार के भावविशेष का चिह्न न था। विभीषणजी जानकीजी को साथ लिये हुये मार्ग दिखा रहे थे, आगे २ जानकीजी थीं पीछे २ राक्षसराज। इतने जनसमूह में निज को पाकर सीता लज्जा से सिकुड़ी जा रही थीं, पर आज्ञा

पालन आवश्यक था। पति के निकट पहुंच कर उन्होंने उस मुख की ओर निहारा जिसे देखने को नेत्र तरस चुके थे और शीश झुकाकर चरणों में गिर गईं। यह दृश्य देखकर सबके नेत्रों से अश्रुधारा बह निकली। उस समय रामचन्द्रजी के मुख से यह शब्द निकलते सुनाई दिये :—"कल्याणी! संग्राम में शत्रु को परास्त करके हमने तुम्हें उसके चंगुल से छुड़ा लिया है। पुरुषार्थ जो कुछ कर सकता है, वह किया जा चुका है। हमारा परिश्रम सफल हो गया, हम अपनी प्रतिज्ञा से मुक्त हो गये। चंचलचित्त राक्षस हमारी अनुपस्थिति में तुम्हें हर ले गया था, यह दोष हम पर लगा था, जिसे हमने पुरुषार्थ द्वारा धो डाला। हनुमानजी ने सागर लाँघकर लङ्का को जलाया, वह सब सार्थक हो गया। वानरराज सुग्रीव ने अपनी सेना सहित युद्ध में पराक्रम दिखाया, और समय २ पर हमें शुभ सम्मति दी, उनका परिश्रम भी सफल हो गया। राक्षसराज विभीषण ने अपने पापी भाई को त्यागा, उनका परिश्रम भी व्यर्थ नहीं गया।"...............

जानकीजी अब महाराज के चरणों से सिर उठाकर एकटक उनके मुख की ओर निहार रही थीं। रामचन्द्रजी ने अपने भाषण को जारी रखते हुये कहा:—"अपने अपमान का बदला चुकाने के लिये मनुष्य का जो कर्त्तव्य है वह हमने कर दिया। तुम्हें यह ज्ञात होना चाहिये, कि हमने युद्ध के लिये जो परिश्रम किया और हमारे इन मित्रों ने इस विजय में जो भाग लिया, वह केवल तुम्हारे लिये नहीं था। उसमें भारतवर्ष को शत्रु से सुरक्षित करना

सदाचार की रक्षा, अपवाद से मुक्ति और अपने वंश के कलङ्क को मिटाना भी कारण थे। वह हो चुका। परन्तु तुम्हारे चरित्र में सन्देह का कारण बना हुआ है, फिर भी तुम हमारे सामने खड़ी हो। (वाणी ऊँची करके) जैसे नेत्र के रोगी को दीपक की ज्योति नहीं भाती, उसी भाँति तुम हमें अच्छी नहीं लगतीं। इसलिये जानकी! जहां तुम्हारी इच्छा हो जा सकती हो। हम तुम्हें आज्ञा देते हैं, दशों दिशायें तुम्हारे लिये खुली हैं, हमें अब तुम से कोई प्रयोजन नहीं। अन्य पुरुष के गृह में रही हुई स्त्री को ग्रहण करना तेजस्वी पुरुष का धर्म नहीं।"

रामचन्द्रजी मौन हुये तो जानकी के शरीर में काटो तो रक्त नहीं। इतने दीर्घकाल के पश्चात्, इतने कष्टसहन करने के उपरांत, इतने दुःख देखने के पीछे, उसे पति दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। यह किन २ उमंगों को सन्मुख रखकर अशोक वाटिका से बाहर निकली थीं? वह कहां गई? उसके कानों ने श्री रामचन्द्रजी के शब्द सुने, पर वह इतने अस्वभाविक थे कि उन पर विश्वास करना असम्भव था। एक बार उसे कल्पना हुई कि वह राम नहीं दशग्रीव के सन्मुख खड़ी हैं। परन्तु नेत्र ऊँचे किये तो सामने रामचन्द्रजी थे। वह उसी भाँति खड़ी एकटक उनके मुख की ओर निहारती रही। फिर नेत्रों से अश्रुधारा बह निकली। पर शीघ्र ही उसे आँचल से सुखा कर उसने कहा, "प्राणनाथ! आप ऐसे अनुचित और कठोर वचन क्यों कह रहे हैं? नीच स्त्रियों का आचरण देखकर आपका सम्पूर्ण स्त्री जाति पर सन्देह करना उचित

नहीं।" यदि आपने मेरे स्वभाव को भली प्रकार परखा है तो आपने मन से इस सन्देह को निकाल दीजिये। प्रभु! जिस समय दशग्रीव मुझे उठाकर लाया तो उसके शरीर से मेरे शरीर का स्पर्श अवश्यमेव हो गया। परन्तु मैं विवश थी, यह मेरे दुर्भाग्य का दोष था; तो भी मेरा हृदय मेरे आधीन है और यह आज पर्यन्त आप में ही लगा रहा है। हम इतने काल इकट्ठे रहे हैं यदि फिर भी आपने मुझे पहचाना नहीं तो अपने दुर्भाग्य के अतिरिक्त और क्या कह सकती हूं? महाराज! यदि आप ने मुझे त्यागना ही था तो मेरे देखने के लिये हनुमान को जिस समय भेजा था, उसी समय यह त्याग का सन्देश भेज देते, ताकि मैं उस शूरवीर के नेत्रों के सन्मुख इस शरीर का अन्त कर देती। ऐसा हो जाता तो आपको कष्ट उठाने की आवश्यकता न पड़ती। आपके मित्र भी कष्ट न झेलते। आप राजाओं में श्रेष्ठ हैं, तो भी केवल क्रोध के वशीभूत होकर ओछे नरों की भांति मेरे स्वभाव का विचार न करके साधारण नीच स्त्रियों के समान आपने मुझे कलंकित समझ लिया है। महाराज! मेरे नाम का सम्बन्ध जनकजी के साथ है, मैं यज्ञ से उत्पन्न हुई हूँ और कह सकती हूँ कि मुझ में चरित्र का बल है। मेरे त्याग की आज्ञा सुनाते समय आपने इन सब बातों को दृष्टि से ओझल कर दिया है। आपने विवाह में मेरा पाणि-ग्रहण किया था, उसे भी भूल गये हैं। आपके लिये मेरे हृदय में जो भक्ति है, उसकी ओर भी आपने ध्यान नहीं दिया........।"

यह कहते २ कण्ठ रुंध गया। नेत्रों से अश्रु बह निकले परन्तु

जी कड़ा करके और आँसुओं को पोंछकर समीप खड़े लक्ष्मणजी से बोलीं:—

"सुमित्रानन्दन ! मेरे लिये चिता स्थापन कर दो। मेरे दुःख की यही एक मात्र औषधि है। झूठे कलङ्क से दूषित होकर मैं जीवित नहीं रह सकती। मेरे स्वामी मेरे गुणों से प्रसन्न नहीं, उन्होंने भरी सभा में मुझ पर वह दोष लगाया है जिसे लगाने की राक्षसराज दशग्रीव को भी हिम्मत नहीं पड़ी थी और इतने राजाओं, ऋषियों और शूरवीरों के सन्मुख उसका निर्णय करके मेरा परित्याग भी कर दिया है। ऐसी अवस्था में मेरे लिये जो उचित मार्ग है उस पर चलने के लिये मैं अग्नि में प्रवेश करूंगी।"

जानकीजी के शब्द सुनकर लक्ष्मण ने रामचन्द्रजी की ओर देखा, पर उनका मुख भयानक हो रहा था। उनके किसी भी मित्र में यह साहस न था कि उन्हें समझा सके। उनसे कुछ निवेदन करना तो एक ओर, उनके मुख की ओर देखने की हिम्मत भी किसी में न थी। तथापि चुपचाप अग्नि सुलगा दी गई। सीता ने रामचन्द्रजी की प्रदक्षिणा की और राजाओं और ऋषि-महर्षियों को प्रणाम करके कहा—

"यदि मेरा हृदय कभी एक क्षण के लिये भी रघुनाथजी से दूर नहीं हुआ, तो सम्पूर्ण विश्व के साक्षी भगवान् मेरी सब ओर से रक्षा करें।

मेरा चरित्र शुद्ध है, तो भी मेरे पतिदेव मुझे दूषित समझते

हूँ। यदि मैं निष्कलङ्क हूँ तो प्राणीमात्र के साक्षी भगवान् मेरी सब ओर से रक्षा करें।"

महारानी जानकीजी प्रज्वलित अग्नि की परिक्रमा करके उसमें कूदने को थीं। उनके नेत्र बन्द थे, मन भगवान् के चरणों में लग रहा था, जिह्वा पर भगवान् की स्तुति और आराधना के मन्त्र थे, कि एकाएक उनके कानों में ये शब्द पड़े—"पुत्री! ठहरो, अग्नि में तुम्हारे प्रवेश करने का समय अभी नहीं आया"।

जानकीजी ने फिर कर देखा, तो महर्षि वाल्मीकि रामचन्द्रजी को सम्बोधन करके कह रहे थे—

"राजन्! इतनी बड़ी सभा के सामने, इतने राजाओं और ऋषि-मुनियों के सम्मुख तुमने इस समय उस स्त्री पर, जिसकी रक्षा का विवाह के समय पाणिग्रहण करके प्रण किया था, वह घृणित दोष आरोपित किया है, जिसे किसी साधारण स्त्री पर लगाते समय दुष्ट-से-दुष्ट मनुष्य का हृदय भी काँपता। इसी पर अन्त नहीं, तुमने उस दोष को लगाकर उसका निर्णय भी सुना दिया है। उस निर्णय को सुनाते समय तुमने यह भी आवश्यकता नहीं समझी कि उस व्यक्ति से जिस पर दोषारोपण किया गया है, उत्तर ले लेते। क्या यह न्याय है जिसकी तुमसे आशा की जा सकती है? ऋषियो! महर्षियो तथा राजाओ! मैं पूछता हूं क्या मौन धारण करके तुम इस निर्णय को स्वीकार कर लोगे? क्या भावी इतिहासवेत्ता इस घटना को लिखते समय यह लिखेंगे कि सभा में एकत्रित, विश्व के श्रेष्ठ पुरुषों में से एक भी ऐसा न

था जिसमें अन्याय को रोकने की शक्ति थी, (रामचन्द्रजी की ओर मुख करके) राजन् ! यदि यही दोष तुम पर लगा दिया जाय और यह कहा जाय कि "तुम अपनी स्त्री से इतने समय पृथक् रहे हो, इसलिये दूषित हो गये हो", तो क्या तुम उसे स्वीकार कर लोगे ? यदि नहीं, तो यह आशा कैसे रखते हो कि यह सारी सभा और वह स्त्री जो तुम्हारे मुख पर इस सभा को साक्षी रख कर इस कलङ्क से इन्कार कर रही है, तुम्हारे इस न्याय को जिसे न्याय कहना इस पवित्र शब्द की उपेक्षा करना है, स्वीकार कर ले ?"

महर्षि वाल्मीकि कुछ क्षण तक खड़े रामजी के मुख की ओर निहारते रहे, फिर ऋषियों और महात्माओं की ओर दृष्टि डाल कर बैठ गये। उस समय आवेश से उनका मुख तपते हुए ताम्बे की भांति दमक रहा था। उनकी अपील के उत्तर में महर्षि अगस्त्य उठकर खड़े हुए और उनके मुख से निकला—"निःसन्देह वाल्मीकिजी ने समय पर अपनी आवाज उठाकर एक भारी पाप को रोक दिया है। किसी भी पुरुष को, चाहे वह राजा हो या रङ्क, यह अधिकार नहीं कि सन्देह मात्र पर अपनी स्त्री को त्याग दे।"

अत्रि—अब जबकि यह दोष लगाया जा चुका है और सन्देह प्रगट किया जा चुका है तो न्याय-नियमों के अनुसार उसे प्रमाणित किया जाना चाहिये। फिर यदि जानकीजी दोषी हों तो रामजी उसे परित्याग कर सकते हैं, अन्यथा उन्हें इससे प्रथम ऐसा करने का कोई अधिकार नहीं।

विश्वमित्र—महर्षि अत्रिजी ने जो कथन किया, वह सर्वथा सत्य है। यह सभा और विशेषकर हम लोग मौन रहकर एक देवी के जीवन को नष्ट करने के पाप के भागी नहीं होंगे। (विभीषण से) राक्षसराज ! हम आपके राज्य में उपस्थित हैं, आप अपने न्यायाधीश को आज्ञा दीजिये कि वह इसी स्थान पर, इसी सभा के सम्मुख इस विषय की परीक्षा करे, ताकि किसी भी व्यक्ति को भविष्य में इस प्रकार के अपशब्द मुख से निकालने का साहस न हो। कहो राम क्या कहते हो ? (रामजी ने शिर झुका दिया) देवी सीता ! तुम्हें अपने को शुद्ध और पवित्र प्रमाणित करने के लिये जांच की अग्नि में से लांघना होगा।"

❀ ❀ ❀

लोगों के चलते हुए श्वास रुक गये, चारों ओर निस्तब्धता छा गई, जब हनुमानजी ने न्यायाधीश के सम्मुख शीश झुकाकर अपना बयान देना प्रारम्भ किया—

"मैं रात्रि के समय अशोक वाटिका में पहुँचा। मेरे वहाँ जाने की सूचना किसी को नहीं थी, क्योंकि मेरा कार्य नितान्त गुप्त था। उस समय मैं उस वाटिका के एक वृक्ष के ऊपर चढ़कर बैठ गया, जब दशग्रीव के आने का पता लगा। माता जानकी उस समय नहर के तट पर थीं। दशग्रीव ने आते ही उनके साथ जो वार्तालाप की वह मैंने वृक्ष के ऊपर चढ़े हुए सारी-की सारी सुनी और उसे सुनकर मुझे विश्वास हो गया कि माताजी अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकेंगी, क्योंकि दशग्रीव ने उन्हें

कहा—"मैं तुम्हारे साथ बलात्कार कर सकता हूँ, पर विवश हूँ, वचन दे चुका और तुम्हें एक वर्ष की अवधि दे चुका हूँ। उस वर्ष में से दश मास व्यतीत हो गये, अब मैं तुम्हें स्मरण कराता हूँ कि अब केवल दो मास अथवा साठ दिन शेष हैं, यदि इन तीन कोड़ी दिनों में तुमने दशग्रीव के कथन को स्वीकार न किया तो तुम्हें इसका प्रतिफल अपने रक्त से देना होगा।"

न्यायाधीश—क्या आपने यह वार्त्तालाप किष्किन्धा लौटने पर रामचन्द्रजी को सुनायी ?

हनुमान—शब्द ऐसे नहीं थे कि मैं उन्हें महाराज के सन्मुख मुख से कह सकता। पर उनका सार मैंने उनके सन्मुख रखने का यत्न किया था।

न्यायाधीश—आपने कहा, "जिस समय राक्षसराज दशग्रीव अशोक वाटिका में पहुँचे तो रात्रि का समय था"। क्या उस समय उनके साथ कोई और भी था ?

हनुमान—जहां तक स्मरण है उनकी कुछ रानियाँ उनके साथ थीं।

न्यायाधीश—(स्त्रियों की ओर देख कर) क्या आप में से कोई हनुमान के कथन का समर्थन करेंगी ?

महारानी जानकी सीता के मुकद्दमे की प्रसिद्धि लंका में हो चुकी थी, और उसे श्रवण करने के लिये महलों की रानियाँ ही नहीं, नगर की अन्य स्त्रियाँ भी उस विशाल मैदान में आ गई थीं,

जहां पर यह अद्वितीय अन्वेषण हो रहा था। न्यायालय में उनके बैठने के लिये अलग प्रबन्ध था।

न्यायाधीश के प्रश्न के उत्तर में महाराज दशग्रीव की रानी धान्यमालिनी अपने स्थान से उठती दिखाई दी, परन्तु फिर बैठ गई। न्यायाधीश ने समझ लिया कि साक्षी संकोच कर रहा है, क्योंकि इतने बड़े जन-समूह में जनता के सामने आने का उसे कभी अवसर नहीं मिला। इसलिये उसने उसे धैर्य्य देते हुए कहा, "जो नारी हमारे सन्मुख आकर कुछ कहने में लज्जाअनुभव करती हो वह अपने स्थान पर से ही सब कुछ बता सकती है, न्यायालय का एक कर्मचारी उच्च स्वर से उसके शब्दों को हम तक पहुँचा देगा।"

इससे उत्साहित होकर रानी धान्यमालिनी ने कहा—"मैं महाराज दशग्रीव की महारानियों में से एक हूँ। मुझे ज्ञात है कि महाराज दशग्रीव की यह इच्छा थी कि जानकी सीता को अपने महलों में ले आयें। परन्तु महिषी मन्दोदरीजी के कहने-सुनने और सीता की प्रार्थना पर ध्यान देकर उन्होंने उसे एक वर्ष की अवधि दे दी थी। वह अवधि उनके देहान्त के पश्चात् समाप्त हुई है। जिस रात्रि की बात वानर सेनापति ने की है, उस रात मैं महाराज के साथ थी, और जब जानकी के साथ झगड़ा बढ़ गया तो मैं ही उन्हें शान्त करके दूसरी ओर ले गई थी।"

इस कथन का महिषी मन्दोदरी ने समर्थन करते हुए कहा, "यह सर्वथा सत्य है।"

तत्पश्चात् राक्षसराज विभीषण की महारानी सरमा और उनकी राजकुमारी कला ने बताया कि वह साधारणतया जानकीजी के अंग संग रही हैं, इसलिये उनकी पवित्रता की साक्षी देती है।

महारानियों के पश्चात् जानकीजी की रक्षिका राक्षसियों की साक्षी हुई। सबने एक स्वर से बताया कि महाराज दशग्रीव ने उन्हें समय-समय पर यह आज्ञा दी कि सीता को भय दिखाकर, धमकाकर अथवा लोभ दिखाकर अपने निश्चय से गिराने का यत्न करें, पर उन्हें सफलता नहीं हुई। इस निष्फलता के कारण पूछने पर उनकी नेत्री वृद्धा त्रिजटा ने सबको सम्बोधित करके कहा—"ऋषियो, महर्षियो, राजाओ, राक्षसो, असुरो! मैं उच्च स्वर से सब को सुनाकर कहती हूँ और मुझसे अधिक इस विषय में कहने का अधिकार किसी को नहीं, कि सूर्य में कलंक हैं, चन्द्र में धब्बे हैं, परन्तु मेरी पुत्री जानकी सीता सर्वथा निष्कलंक है। इसने उठते, बैठते, जागते, सोते दशरथपुत्र राम के अतिरिक्त अपने हृदय में किसी पुरुष को स्थान नहीं दिया।"

चारों ओर करतल-ध्वनि और "जय हो चरित्रवती सीता की" "पतिव्रता जानकी की जय हो" का जयघोष गूंज उठा।

न्यायाधीश—शान्ति! अभी परीक्षा समाप्त नहीं हुई।

फिर निस्तब्धता छा गई। तत्पश्चात् राक्षसराज विभीषण न्यायाधीश के सन्मुख शीश झुकाकर बोले:—

"मेरी स्त्री और पुत्री जो कुछ कह चुकी है, वह पर्याप्त होना चाहिये। परन्तु महाराज दशग्रीव की सभा (Cabinet) का

एक सदस्य होते हुए जो कुछ मुझे ज्ञात है, उसे न्यायालय के सन्मुख रखना मेरा धर्म है। क्योंकि दुर्भाग्य से इस समय उस सभा का कोई और व्यक्ति जीवित नहीं।

"महाराज दशग्रीव ने जानकी हरण के जो कारणभरी सभा में हम लोगों के सामने रक्खे थे, वह अधिकतर राजनीति से सम्बन्धित थे, क्योंकि जब महाराज रामचन्द्र ने खर और दूषण को पराजय करके जनस्थान विजय किया, तो वह उस पराजय का प्रतिशोध लेना चाहते थे और भगिनी शूर्पनखा ने इस विषय को जिस प्रकार उनके सन्मुख रक्खा उससे उनके शौर्य्य, वीरता और स्वाभिमान को जानते हुए यह कहा जा सकता है कि वह इस विषय में अपनी नीति निर्धारित करने में पर्य्याप्त सीमा तक ठीक थे। हम लोगों ने इस विषय में उनके सन्मुख दूसरे विचार रक्खे, पर सफलता न हुई।

जानकीजी के प्रति प्रेम प्रदर्शन में उनका वास्तविक आशय जानकीजी के पतिव्रत धर्म और दृढ़ संकल्प की परीक्षा लेना था, न कि कुछ और। यदि ऐसा न होता तो यह असम्भव था, कि ऐसे समय पर जब वह उनसे प्रेम प्रदर्शन को जाया करते थे, किसी रानी अथवा महारानी को साथ ले जाते। उनका एक प्रयोजन अपनी रानियों और महारानियों को वहाँ ले जाने में यह भी था कि जानकीजी के दृढ़ संकल्प को दिखाकर उन्हें उनके चरण चिह्नों पर चलने के लिये प्रेरित करें। नहीं तो एक वर्ष की अवधि देना व्यर्थ था। वह जानते थे कि यदि रामचन्द्रजी पुरुष हैं और

उनमें आत्म सम्मान और वंश मर्य्यादा का भाव है, तो वह सात समुद्र पार करके भी अपनी विवाहिता स्त्री को उनके चंगुल से मुक्त करने का यत्न करेंगे। इस यत्न के लिये वर्ष भर की अवधि पर्य्याप्त थी।"

न्यायाधीश—आप उस दोष के सम्बन्ध में, जो जानकीजी पर लगाया गया है, क्या कहते हैं ?

विभीषण—यह कि वह सर्वथा असत्य है। महारानी सीता पतिव्रत धर्म की पूर्ण मूर्ति हैं और भावी सन्तानें उनका नाम सदैव आदर से लिया करेंगी।

न्यायाधीश—क्या राजकुमारी शूर्पनखा इस विषय पर कोई प्रकाश डालेंगी ?

राजकुमारी शूर्पनखा जनता के सन्मुख नहीं आना चाहती थी, पर न्यायाधीश के आग्रह पर उसे विवश होकर खड़ा होना और यह मानना पड़ा कि उसने महाराज दशग्रीव को यह कहा था कि मैं रामचन्द्रजी की धर्मपत्नी सीता को तुम्हारे लिये प्राप्त करना चाहती थी इसलिये रामचन्द्र और लक्ष्मण ने मेरा अपमान किया, तथा मैंने दशग्रीव को प्रतिशोध के लिये उकसाया।

न्यायाधीश—क्या राजकुमारी कृपया यह बतायेंगी कि वह जानकी-सीता को क्यों दशग्रीव के लिये प्राप्त करना चाहती थीं ?

शूर्पनखा—मैं इस प्रश्न का उत्तर नहीं देना चाहती।

न्यायाधीश—रामचन्द्रजी की कुटिया दण्डकारण्य में कहाँ पर थी ?

शूर्पनखा--जनस्थान के एक सिरे पर।

न्यायाधीश—क्या उस कुटिया में रहते हुये वनवासियों ने कभी जनस्थानवासियों को दुःख दिया था?

शूर्पनखा ने उत्तर देने से प्रथम रामचन्द्रजी की ओर देखा, परन्तु उन्होंने दूसरी ओर दृष्टि फेर ली।

शूर्पनखा–(कुछ सोचकर) जहाँ तक सूचना मिली है, उत्तर नहीं में है।

न्यायाधीश—जनस्थान की सेना और वनवासियों में युद्ध क्यों हुआ?

शूर्पनखा—इसका उत्तर भाई खर ही दे सकते थे। वह अब इस पृथ्वी पर नहीं हैं।

न्यायाधीश—क्या राजकुमारी शूर्पनखा जनस्थान की महारानी नहीं थीं? क्या यह युद्ध उनके ज्ञान के बिना हो गया था?

शूर्पनखा ने कोई उत्तर न दिया।

न्यायाधीश—क्या राजकुमारी और जानकीजी में जनस्थान में कोई झगड़ा हुआ था?

शूर्पनखा—नहीं।

न्यायाधीश—क्या राजकुमारी और रामचन्द्रजी में कोई कलह हुई थी?

शूर्पनखा ने इस प्रश्न का भी कोई उत्तर न दिया।

न्यायाधीश ने प्रश्न को पुनः दोहराया पर कोई उत्तर न मिलने पर कहा—"राजकुमारी इस प्रश्न का उत्तर नहीं देतीं। क्या मैं

समझ लूँ कि वह इस प्रश्न का उत्तर देना नहीं चाहतीं।"

शूर्पनखा—आपने ठीक समझा, मैं उत्तर देना नहीं चाहती।

कुछ और साक्षियाँ हुईं, उनके पश्चात् यह पूछा गया कि क्या कोई व्यक्ति विपक्ष में बोलना चाहता है? जब उत्तर में चारों ओर निस्तब्धता रही तो न्यायाधीश ने घोषणा करदी कि अन्वेषण समाप्त हो गया। सब लोग अब निर्णय सुनने के लिये उत्कण्ठित थे। उन्हें अधिक समय तक प्रतीक्षा में न रखते हुये न्यायाधीश ने उच्चस्वर से कहा "जो साक्षी लिखी जा चुकी है और जिसके विरुद्ध कोई साक्षी नहीं मिल सकी, उस पर विचार करने के पश्चात् हम इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि महारानी जानकी-सीता सर्वथा निर्दोष हैं। उनका कोई दोष प्रमाणित नहीं हो सका।"

निर्णय सुनते ही आकाश "पतिव्रत धर्म की जय"--"पतिव्रता की जय" "जानकी-सीता की जय" के गगनभेदी नारों से गूंज उठा। चारों ओर से पुष्प वर्षा होने लगी।

जनता का जोश कुछ कम हुआ, तो महर्षि वाल्मीकि यह कहते हुये सुनाई दिये—"सती जानकी के निर्मल चरित्र पर सन्देह और कलंक के जिन मेघों ने अधिकार जमा रक्खा था, आज की इस अग्नि परीक्षा ने उनको छिन्न-भिन्न कर दिया। शरद ऋतु के चन्द्रमा की भांति महारानी सीता का मुख उज्ज्वल हो गया। राम! हाथ पकड़ कर जानकीजी का सम्मान करो।"

"जो महर्षियों की आज्ञा" कहकर राम अपने स्थान से उठे। जानकी के लिये यह सब कुछ स्वप्न समान था, और उसका

तार उस समय टूटा जब राम ने उनका हाथ पकड़ कर कहा "जानकी! क्षमा करना, जगत् में तुम्हारे चरित्र की निर्मलता प्रमाणित करने के लिये इस अग्नि में से लांघना आवश्यक था।"

सीता—(पति के चरणों में गिर कर) जय हो आर्य्य पुत्र की!

चारों ओर से पुष्पवर्षा होने लगी, "पतिव्रता की जय" "जनकनन्दिनी की जय" "विदेहकुमारी की जय" के नारे उठने लगे। उनका जोश कुछ कम हुआ तो सर्व ऋषि मण्डल की ओर से वक्ता बनकर महर्षि अगस्त्य ने कहा:—

"राम! आपके वनवास का उद्देश्य तो उसी समय पूर्ण हो गया था जब आपने खरदूषण को मार कर भारत को राक्षसहीन कर दिया था। परन्तु महारानी जानकी सीता ने उस यज्ञ में जो आपने आरम्भ कर रक्खा था, एक वर्ष की तपस्या के पश्चात् पूर्ण आहुति डाल दी है। यह इन्हीं की तपस्या का फल है कि विश्व-विजयी होने का दावा करने वाले दशग्रीव और कुम्भकर्ण अब कहीं दीख नहीं पड़ते। यह इन्हीं की तपस्या का परिणाम है कि राक्षसराज विभीषण भारत के शत्रु नहीं उसके परममित्रों में सम्मिलित हो गये हैं। यदि यह अशोक वाटिका में बैठ कर ऐसी घोर तपस्या न करतीं तो भारत सुख की निद्रा नहीं सो सकता था। यह सारे ऋषि मुनि महर्षि ही नहीं बल्कि राजा और महाराजा जो इस समय राक्षसराज के अतिथि हैं, चैन से

नहीं रह सकते थे। इसलिये भारत ही नहीं, जगत् में शान्ति चाहने वाले समस्त मनुष्यों की ओर से कृतज्ञता का प्रकाश करता हुआ मैं इन्हें धन्यवाद देता हूँ। ईश्वर इन्हें चिरकाल पर्यन्त जीवित रक्खें! इन्हें पतिप्रेम अधिकाधिक मिलता रहे। और यह पुत्रवती होकर रघुकुल की वृद्धि करें।

लंका से प्रस्थान

भारत का स्वतन्त्रतायुद्ध समाप्त हो गया। राम राज्य का प्रभाव समुद्र पार पहुंच गया। श्री रामचन्द्र जी की नीति लार्ड डल्हौज़ी (Lord Dalhousie) की नीति न थी। वह देशों और जातियों की स्वतन्त्रता हरण करके उन्हें दास बनाने में गौरव नहीं समझते थे। वानरराज बालि का वध करके उन्होंने वानर देश की स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप नहीं किया था, और वानर देश के लोगों के स्वयं चुने हुये सुग्रीव को राज्यसिंहासन पर बैठाने में हर्ष अनुभव किया था। लंका में भी वही नीति उपयोग में लाई गई क्योंकि रामजी जानते थे कि किसी देश को दास बनाकर पददलित रखने के लिये भारी सेना और पुलिस की आवश्यकता है, परन्तु मित्र देश किसी ऐसी वस्तु पर निर्भर नहीं। उससे बिना बलात्कार किये और बिना किसी को दुःख दिये वह लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं जो पददलित रखकर नहीं किये जा सकते थे; क्योंकि मित्र की इच्छा मित्र के लिये आदेश है और वह उस इच्छा को पूर्ण करने के लिये प्राण विसर्जन कर देता है। रामराज्य का उद्देश्य संसार के सन्मुख एक ऐसे राज्यका उदाहरण रखना था जिस की नींव मित्रता और सहयोग पर हो, और उसकी जड़ें महाराज विभीषण के लंका के राज्यसिंहासन पर

बैठने के कारण दृढ़ हो गई थीं। भारत महासागर से लेकर दक्षिणी ध्रुव तक, और अफ्रीका से लेकर दक्षिणी अमरीका तक, सारा राक्षस द्वीप भारत की मित्रता पर गौरव अनुभव करता था।

संसार में यह अद्वितीय राज्य स्थापन करने के पश्चात् उनका उद्देश्य शीघ्र से शीघ्र अयोध्या पहुंचना और भरत जी के दर्शन करना था। लंका विजय पर भारत के अधिकतर ऋषि, मुनि, राजा और नरपति उनके निकट पहुंच गये थे, परन्तु मार्ग की दूरी अन्य के लिये बाधा थी। इसलिये वह चाहते थे कि शीघ्र से शीघ्र भारत भूमि में पहुँच कर यह घोषणा करदें कि भविष्य में ऋषि और महर्षि स्वतन्त्रता से अपना कार्य कर सकते और बेखटके देश देशान्तरों और द्वीपद्वीपान्तरों में वेद और धर्म का प्रचार कर सकते हैं। इसलिये उन्होंने राक्षसराज विभीषण से कहा, 'राक्षसराज! इस देश में हमारा कार्य अब समाप्त होगया, अब हम शीघ्र अयोध्या पहुंचना चाहते हैं।

विभीषण—इतना शीघ्र?

रामचन्द्र—हमारे बनवास की अवधि समाप्त हो रही है। चित्रकूट पर भ्राता भरत से हमने यह प्रतिज्ञा की थी कि चतुर्दश वर्ष से एक दिन भी अधिक बनों में नहीं रहेंगे। यदि हम उस अवधि की समाप्ति पर अयोध्या न पहुंचे, तो पता नहीं भरत जी क्या कर बैठें!

विभीषण—यदि आपकी यही इच्छा है तो मैं वायुयानों का बेड़ा तैय्यार कराये देता हूं। पुष्पक विमान आपकी सवारी में रहेगा, शेष पर सेना यात्रा कर सकती है। और यदि महाराज आज्ञा देंगे तो यह सेवक भी साथ चल कर अयोध्या देखने की इच्छा रखता है।

रामचन्द्र—इससे अधिक हर्ष का विषय और क्या हो सकता है? परन्तु आपका शासन अभी नया है ऐसा नहो कोई आपत्ति आजाये।

विभीषण—महाराज इस ओर से निश्चिन्त रहें। विभीषण का दल दशग्रीव के समय भी शक्तिशाली था, और अब तो राज्य की बाग डोर उसके हाथ में है। इसलिये इस ओर से कोई चिन्ता नहीं।

सुग्रीव—वानर सेना और उसके सेनापति भी अयोध्या देखने की इच्छा रखते हैं।

रामचन्द्र—(हँसकर) तो राक्षस और वानर दोनों सेनाओं के सेनापति हमारे अतिथि होंगे।

❀ ❀ ❀

प्रस्थान की तैयारियां आरम्भ हो गईं। जानकीजी ने राक्षस-राज की रानी और उनकी पुत्री को अयोध्या ले चलने पर आग्रह किया और महाराज विभीषण की आज्ञा से उन्होंने इस निमन्त्रण को स्वीकार कर लिया। चलने से प्रथम राक्षसराज ने कोष का मुख खोल दिया और वानर सेना के प्रत्येक सेनानी को पारितो-

षिक और पुरस्कार देकर प्रसन्न कर दिया। नियत समय पर पुष्पक-विमान अपने बहुमूल्य भार को उठाकर लंका के कोट से ऊँचा उठा। उसमें श्री रामचन्द्रजी, लक्ष्मण, सीता के अतिरिक्त बानर-राज सुग्रीव और राक्षसराज विभीषण तथा हनुमान और अन्य बड़े बड़े सरदारों के लिये भिन्न २ कमरे नियुक्त थे। नीचे चक्रों के स्थान में राजहंसों की मूर्तियां थीं, जिन्हें देखकर यही सम्भावना होती थी कि बड़े २ राजहंस आकाश में उड़े जा रहे हैं। रामायण रचयिता भगवान् बाल्मीकि उसका वर्णन करते हुए लिखते हैं, "उसकी भूमि पर पर्वत शृंखलाएं बनाई गई थीं, पर्वतों पर वृक्ष दिखाये गये थे, जिन पर पुष्पों में बीज और पंखड़ियां भी दृष्टि-गोचर होती थीं, कमरे श्वेत वर्ण के थे, और स्थान २ पर वन और नदी सरोवरों के चित्र निर्मित थे। हीरों और अन्य बहुमूल्य रत्नों की आभा दृष्टि को चकाचौंध करती थी।"

पुष्पक ने पृथ्वी से उठ कर लंका नगर पर एक चक्कर लगाया। लङ्कावासियों ने "महाराज रामचन्द्र", "तपस्विनी सीता", "पति-व्रता जानकी" की जय के जयघोष किये। रामचन्द्रजी ने समीप बैठी सीता से कहा, "जानकी ! यह देखो लंका नगरी त्रिकूट पर्वत पर बनी है, तुमने वर्ष भर इसके भीतर रहते हुए भी इसे नहीं देखा। वह सामने युद्धस्थल है, जहां इन्द्रजीत कुम्भकर्ण और दशग्रीव तथा राक्षस शूरवीरों ने प्राण दिये। यही वह स्थान है जहां पर दशग्रीव की महिषी मन्दोदरी अपनी सहस्रों सौतों के साथ विलाप करती रही है। इधर दृष्टि करो, वह सागरतट आ

गया। अब हम अथाह जल पर से उड़े जा रहे हैं। यह देखो नल-सेतु है, जिसे सेना को लंका पहुंचाने के लिये हमारे शिल्पज्ञ नल ने पांच दिन में निर्माण किया था। सामने वह स्थान है जहां हमें राक्षसराज विभीषण मिले थे—यह सागर के मध्य में मैनाक पर्वत दीख पड़ता है, जहां पर हनुमान जी ने सागर उल्लंघन समय थोड़ा विश्राम किया था; मैनाकवासियों ने उन्हें इस स्थान पर ठहरा लिया था—यह महेन्द्र पर्वत है, जो समुद्र में घुसा जाता दीख पड़ता है—यह लो यह सामने किष्किन्धा के बन और पर्वत आ गये; यह वानरराज का देश है, इसी विस्तृत देश की भूमि ने वानर शूरवीरों को जन्म दिया है............।

सीता—(बात काट कर) मैं एक प्रार्थना करनी चाहती हूं।

राम—कहो।

सीता—मैं वानरराज तथा वानर सेनापतियों की स्त्रियों को अयोध्या जाने का निमन्त्रण देना चाहती हूं।

"बहुत अच्छा विचार है" कह कर रामजी ने वायुयानों को नीचे उतरने की आज्ञा दी और सुग्रीव जी से बोले—"जानकीजी की इच्छा है कि आपकी महारानियां और वानर सरदारों की पत्नियां हमारे साथ अयोध्या चलें। यदि आपत्ति न हो तो अति शीघ्र उनके लिये विमान तैयार किये जायें।"

आज्ञापालन में सुग्रीव महलों में जाकर महारानी तारा और रोमा से बोले, "श्री सीताजी की इच्छानुसार रघुनाथजी ने आपको और वानर देश की सरदारनियों को अयोध्या चलने का

निमन्त्रण दिया है, शीघ्र तैयार हो जाइये। वहां आपको अयोध्या की सैर के अतिरिक्त महाराज दशरथ की महारानियों के दर्शन होंगे।"

यह सुनते ही किष्किन्धा के वानर सेनापतियों की पत्नियों को आदेश पहुंच गये, और चारों ओर दौड़-धूप आरम्भ हो गई। कोई साड़ी सम्भालने लगी, कोई चादर और बिस्तर ढूंढ़ने लगी, किसी ने भूषणों के डिब्बों में हाथ मार कर उन्हें उलटना प्रारम्भ किया। उस समय बहुतों के लिये यह कठिनाई हो रही थी कि किसी को साड़ी के साथ चोली नहीं मिलती तो किसी की मोहन-माला के धागे टूटे पड़े थे। उधर महारानी की आज्ञा पर आज्ञा पहुँच रही थी कि शीघ्रता करो, वायुयान तैयार खड़े हैं।

ईश्वर ईश्वर करके यह स्त्री सेना कील काँटे से लैस होकर वायुयानों पर सवार हुई और यात्रा आरम्भ हुई।

ऋष्यमूक पर्वत के निकट पहुंच कर रामचन्द्रजी ने फिर कहा, "जानकी! यह स्वर्णशिखा वाला पर्वत ऋष्यमूक है जहां वानर-राज सुग्रीव से हमारी भेंट हुई थी। वह देखो सामने पम्पा सरोवर दृष्टिगोचर होता है, उसके चहुं ओर अति विचित्र बन है। इसी सरोवर के तट पर हमें महात्मा शबरी के दर्शन हुये थे। वह देखो जनस्थान के वृक्ष हैं, जहां हमने दीर्घबाहु कबन्ध राक्षस का वध किया था। आगे वह स्थान है जहां पर महात्मा जटायु ने तुम्हारे लिये प्राण न्यौछावर किये। अब वह देखो हमारी कुटिया आ पहुँची।"

सीताजी का इस दृश्य को देखकर मन भर आया, परन्तु रामचन्द्रजी की दृष्टि दूसरी ओर थी और वह कह रहे थे, "वह गोदावरी आ गई—यह सामने कदली वृक्षों से वेष्टित अगस्त्य आश्रम है—यह शरभंग आश्रम है, जहां पर देवराज इन्द्र पधारे थे—वह देखो तपस्वी दीख पड़ते हैं जिनके कुलपति अत्रि मुनि हैं, यहां पर हमने विराध का नाश किया था। वह चित्रकूट पर्वत दिखाई देने लगा, यहां तुमने तपस्विनी अनुसूयाजी के दर्शन किये थे। इस पर्वत पर हमें लौटा लेने के लिये भरतजी आये थे—लो अब यमुना का जल दीख पड़ने लगा, यह संगम आ गया—वह सामने गंगाजी हैं—और वह महर्षि भरद्वाज का आश्रम—इधर शृंगवेरपुर है, जहां हमारे मित्र गुह रहते हैं—दूर फासले पर अयोध्या दिखाई दे रही है..............।"

सीताजी के नेत्रों के सन्मुख नाटक के दृश्यों की भांति चौदह वर्ष के बनवास की घटनाएं घूम रही थीं और वह मन ही मन परमपिता परमात्मा का धन्यवाद कर रही थीं जिनकी कृपा से वह अग्नि के समुद्र में से सकुशल निकल कर फिर से अयोध्या को देख रही थीं।

भरद्वाज आश्रम पर पहुंच कर वायुयान नीचे उतरे और रामचन्द्र जी ने महर्षि के चरणों में प्रणाम किया। ऋषि ने आशीर्वाद देकर उन्हें हृदय से लगा लिया और बोले, "राम! हमारे नेत्रों के सन्मुख वह दृश्य आरहा है जब आज से चतुर्दश वर्ष प्रथम बनवासियों के वस्त्र पहिरे आप यहां से गये थे। वह दृश्य

कितना हृदय विदारक था, परन्तु उसका परिणाम जो आज दृष्टिगोचर हो रहा है, कैसा सुन्दर है। तुम्हें हम लोगों को यह बताने की आवश्यकता नहीं कि तुमने भारत को राक्षसों से सुरक्षित करने और ऋषि-मुनियों की रक्षा के लिये क्या कुछ किया है ? क्योंकि वह विश्व विदित है। इसमें सन्देह नहीं महारानी कैकेई का उस समय का कार्य्य सबको अरुचिकर लगा था, परन्तु यदि वह चूक जातीं तो हम इस समय तक भारत के कोने-कोने में राक्षस ध्वजा को फहराते देखते। इसीलिये हम कहते हैं कि मनुष्य दुःख को दुख और सुख का सुख न समझता हुआ स्वयं को ईश्वर इच्छा पर छोड़ दे; क्योंकि वही भगवान जानते हैं कि किस समय क्या होना चाहिये। मनुष्य अल्पज्ञ है, वह उसके रहस्यों को नहीं समझ सकता। मनुष्य के नेत्र निर्बल हैं वह दूर तक नहीं देखते !

राम—भगवन् अयोध्यापुरी में कुशल मंगल तो है ना ?

भरद्वाज—(मुस्कराते हुये) भरत आपकी आज्ञा के आधीन हैं, वह वनवासी रूप धारे आपकी पादुका को सामने रक्खे बाट जोह रहे हैं। आप एक रात्रि के लिये यहां विश्राम करके हम वनवासियों का आतिथ्य ग्रहण करें।

राम—भगवान् की आज्ञा सिर आंखों पर ! (हनुमान को बुला कर) हनुमान जी ! आप शीघ्र अयोध्या पहुंच कर वहां की कुशल पूछें, शृङ्गवेरपुर जाकर गुह जी से मिलें, और हमारी ओर से उनका कुशल समाचार पूछें। वह हमारे मित्र हैं

और हमें लौट आया देख कर प्रसन्न होंगे। अयोध्या पहुँच कर आप भरत जी को हमारे लौटने का समाचार सुनाएँ और कहें कि राम शत्रु पर विजय पाकर सफल मनोरथ होकर राक्षसराज विभीषण, वानरराज सुग्रीव, और अन्य मित्रों सहित आरहे हैं। यह बता कर देखना भरत जी के इस समाचार को सुन कर क्या भाव होते हैं? वहां की परिस्थिति को समझने का यत्न करना, और भरत जी के हार्दिक भावों को समझ कर हमें सूचित करना। यदि वह स्वयं राज्य करना चाहते हों तो हम बड़ी प्रसन्नता पूर्वक यहां से लौट जायेंगे। हम भरत जी को प्रसन्न देखना चाहते हैं।

माण्डवी और उर्मिला

"माता जी! दासी माण्डवी चरणों में शीश झुकाती है।" राज माता कौशल्या को सम्बोधन करके महाराज भरत की महारानी माण्डवी ने कहा।

उत्तर में राज माता ने उसे हृदय से लगाकर शिर सूंघते हुए कहा, "सौभाग्यवती और दीर्घ आयु हो पुत्री!"

माण्डवी—माता जी बहिन उर्मिला कहाँ है?

कौशल्या—अभी-अभी यहीं थी। लक्ष्मण जी और तुम्हारी भगिनी सीता की चर्चा हो रही थी। आ जाती है।

माण्डवी—क्या प्रसंग था?

कौशल्या—प्रसंग क्या होगा? चतुर्दश वर्ष चालीस वर्ष के समान होगये हैं। व्यतीत होने में ही नहीं आते। कुछ दिन हुए कोई यह समाचार लाया था कि दक्षिणापथ में राक्षसों के साथ राम लक्ष्मण का युद्ध हुआ था। ईश्वर जाने उसका परिणाम क्या हुआ? पर तब से आत्मा दिन रात दक्षिणापथ में ही घूमता रहता है। मेरी सीता तो फिर भी स्वामी के अंग संग है बेचारी उर्मिला स्वामी सेवा से वंचित है। यदि मैं महाराज के देह त्याग के समय मृत्यु को प्राप्त हो जाती तो इस सती साध्वी को यह संकट तो काटना न पड़ता।

माण्डवी—माता जी! आपने यह क्या कहा? आपके चरणों की सेवा क्या थोड़ा सौभाग्य है जो बहिन उर्मिला को मिला? लक्ष्मण जी यहाँ होते तो यह कैसे हो सकता था? अब वहाँ पर वह महाराज जी की सेवा कर रहे हैं, यहाँ पर बहिन आपके दुःख की संगिनी बनी हुई हैं।

कौशल्या—सत्य कहती हो पुत्री! पर पति-सेवा कुछ और ही वस्तु है। मैं जिस समय उर्मिला को काय वस्त्र पहने देखती हूं तो नेत्र जल-प्लावित हो जाते हैं। इतने वर्ष हो गये उसे केशों में कंघी तक का विचार नहीं आया। रात को किसी समय सोते से जाग उठती हूँ तो उसे जागृत ही पाती हूं, मुझे तृषा अनुभव हो तो इतने सेवक होते हुए भी वही है जो सबसे प्रथम जल लिये खड़ी होगी। मेरे खाने, पीने, ओढ़ने के विषय में तो वह मेरे हार्दिक भावों को पढ़ लेती है! बहिन सुमित्रा उसकी सगी सास है परन्तु उर्मिला मेरी सेवा उससे भी अधिक कर रही है। परमात्मा वह शुभ घड़ी लावे जब मेरे लाल जीवित जाग्रित लौटें और यह सती साध्वी पति के दर्शन करके निहाल हो। ऐसी देवी को यह दुःख? (नेत्रों में आँसू भर आये)।

माण्डवी—माताजी! इस समय यदि कोई आपको यह समाचार सुनाए कि जीजा जी और बहिन जी शीघ्र पधारने वाले हैं तो आप उसे क्या दें?

कौशल्या—पुत्री! यही तो समाचार है जिसे सुनने के लिये आत्मा शरीर में अटक रहा है नहीं तो महाराज के परलोक गमन

के पश्चात् इस जीवन में सुख कहाँ रह गया था ? जब मैं पिता के घर में थी तो किसी रेखा देखने वाले ने मेरा हाथ देखकर रेखा पढ़ते हुए कहा था कि यह कन्या अन्तिम अवस्था में पुत्र सुख प्राप्त करेगी, आज पर्यन्त तो यह सत्य नहीं हुआ कल की ईश्वर जाने !

माण्डवी—माता जी ! दुःख को तिलाञ्जलि दे दीजिये । जगत में परमात्मा के अतिरिक्त कोई वस्तु अनन्त नहीं । जिसका आदि है उसका अन्त अवश्यमेव है। केवल परमात्मा अनादि और अनन्त हैं और इसी कारण उनकी सृष्टि की शक्ति भी अनादि और अनन्त है । परन्तु कुछ समय के लिए, प्रलयकाल में, इस सृष्टि का भी अन्त हो जाता है । ऐसा विद्वानों से सुना है ।

कौशल्या—तो क्या हमारे दुःख का भी अन्त होगा ?

माण्डवी—माताजी ! आप भूल गईं, चित्रकूट पर्वत पर आपके पुत्र ने जीजाजी से यह प्रतिज्ञा कराई थी कि वह चतुर्दश वर्ष से एक दिन भी अधिक बन में नहीं रहेंगे । आपके पुत्र उस दिन से आज तक एक-एक दिन गिनते रहे हैं और वह आज प्रातः कह रहे थे कि आज महाराज को बन गये चौदह वर्ष समाप्त हो जायेंगे।

कौशल्या—क्या सत्य ही वह काल रात्रि बीत गई ?

माण्डवी—अभी-अभी समाचार मिला है कि श्री महाराज बाहनजी और लक्ष्मणजी समेत भरद्वाज आश्रम में पहुँच चुके हैं और कल प्रातः ही यहाँ पधारेंगे। आर्य्यपुत्र ने इस समाचार के

प्राप्त होते ही महाराज के स्वागत की तैय्यारियों की आज्ञा दे दी है।

कौशल्या— (नेत्र ऊपर उठाकर) धन्य हो प्रभु! आप धन्य हो! पतितों को उठाने वाले प्रभु! आप धन्य हो।

माण्डवी—माताजी! मेरी प्रार्थना है, आप माता सुमित्रा और कैकेयीजी को सन्देश भिजवा दें। मैं उर्मिला को ढूंढ़ती हूँ।

❀ ❀ ❀

"क्यों री किधर लोप हो गई थी? मैंने तेरी खोज में सारा प्रासाद ढूंड मारा।" उर्मिला को सन्मुख देखकर माण्डवी ने कहा।

उर्मिला—महारानीजी किधर से भूल पड़ीं?

माण्डवी—चल तेरी महारानी की ऐसी-तैसी! बता इस समय किधर से आ रही है?

उर्मिला—महारानीजी क्रुद्ध न हों मैं अभी माता कौशल्याजी के पास से उठकर माता सुमित्राजी की सेवा में गई थी।

माण्डवी—फिर वही महारानी?

उर्मिला—महारानी महारानी ही रहेगी, कुछ भी हो।

माण्डवी—श्रुतकीर्ति भी आ रही है, मैं उसे सन्देश भिजवा कर आ रही हूँ।

उर्मिला—क्यों आज तुम दोनों ने इधर चढ़ाई की है क्या कोई उत्सव है?

माण्डवी—उत्सव का ज्ञान होगा जब लड्डू खिलाने पड़ेंगे।

उर्मिला—हमारे पास तो वन्यफलपुष्प हैं, लड्डू-वड्डू हम जानते नहीं। हम वनवासियों के पास आमला होगा, हारीतकी होगी, बहेड़े होंगे। जितने जी चाहो खा लो।

माण्डवी—अब हरड़ बहेड़े खाने के दिन गये, अब तो लड्डू खाने के दिन आ गये।

उर्मिला—(नेत्रों में अश्रु भरकर) तुम्हारा कथन शुभ हो ? वह दिन भी कभी आयेंगे ही। जब तक श्वास है तब तक आस है।

माण्डवी—(भागकर गले में भुजायें डालती हुई) तुम्हें मेरी सौगन्ध है जो इस समय आंखें भरो। आज का दिन रोने और दीर्घ श्वासों का नहीं है।

उर्मिला—क्यों आज क्या है ?

*माण्डवी— आज हँसने और नाचने का दिन है। मैं तुम्हारे समीप इसीलिये आई हूँ और श्रतकीर्ति भी जैसा कि मैंने कहा, आ रही है।

उर्मिला- मैं नहीं समझी।

माण्डवी—क्या तुम्हें भूल गया आज जीजाजी को वन गये चौदह वर्ष समाप्त हो गये।

उर्मिला—क्या सच ?

माण्डवी—अभी-अभी आपके जीजाजी के पास से एक पुरुष

---

* माण्डवी और श्रुतकीर्ति महाराज जनक के भ्राता कुशध्वज की पुत्रियाँ थीं जो राजकुमार भरत और शत्रुघ्न से ब्याही गई थीं। उर्मिला सीताजी की छोटी बहिन थी जो लक्ष्मणजी की धर्म पत्नी थी।

यह समाचार लाया है कि महाराज, बहिनजी और (उर्मिला की ठोढ़ी के नीचे उङ्गली देकर) छोटे जीजाजी कल प्रातः यहां पधारेंगे। सारे नगर में आनन्द मंगलाचार हो रहा है, कहो अब तो लड्डू खिलाओगी या अब भी नहीं?

उर्मिला—बड़ी बहिन होकर मजाक कर रही हो?

माण्डवी—मजाक की खूब कही! क्या माण्डवी को ज्ञात नहीं कि उसकी बहिन चौदह वर्ष से वृक्षों की छाल पहनकर तपस्विनी का जीवन बिता रही है? क्या वह नहीं जानती कि इतने दीर्घकाल में उर्मिला ने किसी स्वादिष्ट भोजन को हाथ नहीं लगाया? क्या वह इस बात से अनभिज्ञ है कि इस सती-साध्वी ने पति को वन गया जानकर अपने केशों में जटाएँ बाँध ली हैं? परन्तु उर्मिला! अमावस्या की अन्धकार मय रात्रि व्यतीत हो गई, आज कौशल देश के नगर-नगर में ही नहीं, गृह-गृह में उजाला होगा। आर्यपुत्र जो इस समय तक बनवासी रहे हैं आज फूले नहीं समाते, नगरवासी महाराज के स्वागत के लिये तैयारियाँ कर रहे हैं। यदि आज का दिन हँसने और नाचने का नहीं तो और कौनसा दिन होगा?

उर्मिला—बहिन को बहिन की प्रत्येक बात भली ही प्रतीत होती है. परन्तु हम लोगों ने महलों में रहकर चौदह वर्ष व्यतीत किये हैं यहां हमें क्या दुःख हो सकता था, दुःख तो बहिन सीता ने देखे होंगे जो इतने वर्ष पर्यन्त बनों में घूमती फिरती रही है।

माण्डवी—सत्य कहती हो उर्मिला ! परन्तु अब समय उस दुःख को स्मरण करने का नहीं, क्योंकि वह बीत चुका। बहिनजी के आगमन पर उनकी कथा विदित होगी, इतने में आज तो मैं जी खोल कर हँसूँगी। लो वह श्रुतिकीर्ति आ रही है।

उर्मिला—अच्छा तुम दोनों नाचो, वह देखो मुझे माताजी पुकार रही हैं।

कौशल्या—बेटी उर्मिला ! महल की रानियाँ श्री राम लक्ष्मण और जानकी के स्वागत के लिये तैयार हो रही हैं। तुम सब बहिनें भी तैयार हो जाओ।

राज्याभिषेक

भरद्वाज आश्रम में रात्रि व्यतीत करके और निषादराज गुह से मिलकर महर्षि की आज्ञा से रामचन्द्रजी फिर पुष्पक विमान पर आरूढ़ हो गये और निमेषमात्र में गोमती को पार करके नन्दी ग्राम के समीप पहुँच गये। भरतजी उस स्थान से कुछ मील आगे उनके स्वागत के लिये पहुँच गये थे। श्रीरामजी की पादुका उनके शिर पर थी और उनका शिर जटाओं से भरा था, शरीर पर भगवे वस्त्र थे और ऐसा प्रतीत होता था मानो दण्डक का कोई ऋषि खड़ा है। आसपास राज्य-मन्त्रियों का समूह था जो सारे-के-सारे गेरुवे वस्त्र पहिने थे। भरतजी के राज्य में भड़कीले वस्त्रों का स्थान गेरुवे ने ले रक्खा था।

भरतजी के पीछे राजमाताओं और रानियों की सवारियाँ थीं, जिनके पश्चात हाथी घोड़े लम्बी शृंखला में खड़े थे। अयोध्या निवासी आज चौदह वर्ष के उपरान्त प्रथम बार जातीय हर्ष प्रकाश के लिये एकत्र हुए थे, और उन सबकी दृष्टि आकाश की ओर ठीक इस प्रकार लग रही थी जैसे नवचन्द्र के दर्शकों की एकम और द्वितीया के दिन लगा करती है।

दूरबीन हाथों में लिये हुए एक वैज्ञानिक ने पुकार कर कहा, "महाराज की जय हो। विमान आकाश में दीख रहे हैं।" और सब लोग वाहनों से उतर कर पैदल खड़े हो गये। उनके हाथों में

पुष्प थे जिन्हें वह आगन्तुकों के स्वागत के लिये लेकर आये थे।

आकाश में दृश्यमान छोटा-सा धब्बा शनैःशनैः बढ़ने लगा, उसकी चमक जाज्वल्यमान् सूर्य की रश्मियों से मिलकर नेत्रों को चौंधियाने लगी। सहसा अब वह शिर के ऊपर पहुँचकर चक्कर लगाने लगा और चारों ओर "महाराज रामचन्द्रजी की जय" "रघुकुल भूषण की जय" "जानकी सीताजी की जय" के गगन-भेदी नाद गूञ्ज उठे। वायुमण्डल में राजहंस की भांति मण्डराता हुआ पुष्पक विमान पृथ्वीतल पर उतरा तो सबके शिर आदर से झुक गये।

अब महाराज भरत आगे बढ़े और वायुयान के निकट पहुँच कर आदर से दण्डवत् प्रणाम करते हुए झुक गये। श्रीरामचन्द्रजी ने विमान से निकल कर उन्हें हृदय से लगा लिया। उल्लास से उस समय दोनों के नेत्र अश्रुप्लावित थे।

रामचन्द्रजी से पृथक् होकर भरतजी जानकी सीताजी के चरणों में गिरे, फिर लक्ष्मणजी को हृदय से लगाकर उनके द्वारा सुग्रीव से मिले। उस समय उनके मुख से निकला "पहिले हम चार भाई थे, अब परमात्मा की कृपा से पांच भाई हो गये।"

तत्पश्चात् विभीषण से मिलते हुये कहा 'हम किस जिह्वा से आप का धन्यवाद कर सकते हैं? आप ही के कारण इतना महान् कार्य सफलतापूर्वक समाप्त हुआ।"

इधर भरत और शत्रुघ्न का परिचय वानर और राक्षस सर-दारों से हो रहा था, उधर रामचन्द्र जी माता कौशल्या के चरण

स्पर्श कर और उनसे आशीर्वाद लेकर माता कैकेयी और सुमित्रा के चरणों में गिर रहे थे। अयोध्यावासी इस स्वर्गीय दृश्य को देख कर पुष्प वर्षा कर रहे थे।

माताओं का आशीर्वाद लेकर राम जी ने गुरु वशिष्ठ के चरणों को स्पर्श किया। तत्पश्चात् नगरश्रेष्ठी ने आगे बढ़ कर कहा "श्री महाराज ! अयोध्या निवासियों के प्रतिनिधि के नाते यह दास आप का स्वागत करता है।" रामचन्द्र जी ने उचित शब्दों में इस स्वागत का उत्तर दिया, तो भरत जी ने उनके चरणों में पादुका धारण करवाते हुये कर जोड़कर निवेदन किया। "श्री महाराज ! आज मेरा जन्म सफल हो गया, आज मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया, क्योंकि मैं आज आपको अयोध्या में फिर से देखता हूँ। मैंने यथाशक्ति आपके राज्य को धरोहर समझ कर उसका प्रबन्ध करने का यत्न किया, और भगवान् का धन्यवाद है कि चौदह वर्ष के इस दीर्घ काल में आपके तेज से राज्यकोष भण्डार और सेना प्रथम से दश गुणा हो गये हैं। अब आप इसे सम्भालिये। वृषभ के बोझ को वत्स अधिक समय तक नहीं उठा सकता।"

भ्रातृभक्त भरत के यह शब्द सुन कर सुग्रीव और विभीषण के नेत्रों से अश्रु बह निकले।

थोड़े काल के पश्चात् जलूस नन्दी ग्राम की ओर चला जहाँ इतने समय तक भरत जी ने पृथ्वी पर सोते हुये, बनवासियों के वस्त्र पहनते हुये और मोटे से मोटा भोजन खाते हुये, अयोध्या के अस्थायी राजा का कार्य किया था।

वहां पहुंचकर आसन पर बैठे हुये श्री रामचन्द्र जी की सेवा में भरत ने फिर हाथ बांध कर निवेदन किया "नाथ! मेरी इच्छा है कि आप शीघ्र से शीघ्र राज्य सिंहासन पर बैठ कर राज्य का भार अपने शक्तिशाली कन्धों पर लें। यह संसार आपके तेज से प्रकाशित हो। चारों ओर आपके नाम का डंका बजे। और जब तक सूर्य्य मण्डल चक्र में रहे, आप इस विश्व के स्वामी रहें।"

रामचन्द्र जी (मुस्कराकर) यह आपकी अपनी इच्छा है या किसी और की भी?

भरत—मेरी ही नहीं, सारी प्रजा की, ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों की यही इच्छा है। आशा है कि आप इसका निरादर नहीं करेंगे।

रामचन्द्र जी—यदि सबकी यही इच्छा है तो इन्कार करना असम्भव है।

❀ ❀ ❀

नन्दी ग्राम में पहुँच कर राम, लक्ष्मण और भरत ने जटाओं का परित्याग किया, बनवासियों के वस्त्र त्याग कर राजकीय वस्त्र धारण किये, और जलूस ने अयोध्या की ओर प्रस्थान किया। उस समय श्री रामचन्द्र जी के रथ के घोड़ों की बागें भरत जी के हाथों में थीं, शत्रुघ्न जी छत्र सम्भाले थे, लक्ष्मण जी पंखे से हवा कर रहे थे और राक्षस राज विभीषण श्वेत चंवर लिये थे। बानर लोग सहस्रों हाथियों पर सवार साथ २ जलो में थे, अयोध्यावासी उन्हें देख कर हाथ बाँध कर प्रणाम कर रहे थे, इसका उत्तर भी

उसी प्रकार हाथ बाँध कर दिया जा रहा था। आगे २ राज्यवाद्य राष्ट्रीय गीत गाता जा रहा था, सारा नगर ध्वजाओं से सुसज्जित था। राज्यप्रसाद में पहुँच कर रामचन्द्र जी ने भरत से सम्बोधन करके कहा :—"हमारा महल जो अशोक वाटिका से घिरा हुआ है उसमें सुग्रीव जी को निवासस्थान दिया जाय। विभीषण जी के लिये भी एक महल खाली कर दिया जाय, और अन्य सरदारों को भी उचित स्थान दिये जायें।"

आज्ञा पालन हो गया। फिर राज्याभिषेक की सामग्री एकत्रित करने का प्रबन्ध होने लगा।

चारों समुद्रों और भारत भर की नदियों का जल एकत्रित हो गया तो प्रजा के नेताओं और मन्त्रियों ने गुरु वशिष्ठ को आगे करके महाराज से राज्याभिषेक की प्रार्थना की। श्रीरामचन्द्र और महारानी सीता को रत्न-जटित चौकी पर बिठाकर वशिष्ठ, विजय, जावाली, कश्यप, कात्यायन, गौतम, वामदेव ने समुद्रों और नदियों के सुगन्धित जल और औषधियों के रस के साथ महाराज का अभिषेक किया। उस अभिषेक में प्रथम ऋत्विक ब्राह्मणों ने, फिर सोलह कन्याओं ने, फिर मन्त्री और सेनापतियों ने और तत्पश्चात् बड़े २ व्यापारियों ने महाराज पर जल छिड़का, यह इस बात का चिह्न था कि प्रजा के सब श्रेणी के लोग एक मत होकर उन्हें अपना राजा चुन रहे हैं। यह हो चुका तो उन्हें स्वर्ण सिंहासन पर बिठाकर वशिष्ठ जी ने रत्न-जटित मुकुट उनके शिर पर रक्खा। ऋत्विक ब्राह्मणों ने नाना प्रकार के आभूषण उनके शरीर पर

धारण कराये। शत्रुघ्न जी ने उनके शिर पर श्वेत छत्र लगाया। उस समय एक श्वेत चंवर सुग्रीव जी ने दूसरा विभीषण जी ने हाथों में लिया।

महाराज के सिर पर मुकुट रखते समय गुरु वशिष्ठ जी ने कहा "श्री महाराज ! अयोध्या की प्रजा और मन्त्रि मण्डल उस समय को भूल नहीं सकते, जब आप के पूज्य पिता जी ने आपको युवराज बनाने के लिये दरबार बुलाया था। आज आपको राज्य-सिंहासन पर बैठाते समय प्रत्येक पुरुष के हृदय में यह इच्छा होती है कि इस अवसर पर महाराज दशरथ उपस्थित होते ! परन्तु ईश्वरीय इच्छा यह नहीं थी, फिर भी हमें विश्वास है कि महाराज दशरथ स्वर्ग में बैठे हुये भी आप जैसे सुपुत्र के कार्यों को देख कर प्रसन्न होते होंगे। श्री महाराज ! उस समय और इस समय में कितना अन्तर है ? उस समय हम लोग महाराज की इच्छा के साथ अपनी इच्छा मिला रहे थे, क्योंकि हमारे विचार में आप युवराज पद के अधिकारी थे। आज आप ने परीक्षा की अग्नि में पड़ कर यह प्रमाणित कर दिया है कि महाराज का उस समय का चुनाव गलत नहीं था, और आप कौशल देश के ही नहीं सम्पूर्ण जगत के नेता बनने के अधिकारी हैं। यही कारण है कि ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र राज्याधिकारी और अन्य सब लोग सर्व सम्मति से अपना भाग्य आपके कर कमलों में सौंप रहे हैं। परमात्मा करें कि आप का राज्य भावी राजाओं के लिये आदर्श हो, और विश्व रामराज्य को धर्मराज्य के अर्थों में

स्वीकार करें ! प्रजा के प्रेम का यह चिह्न, जो मेरे हाथों में है, इसे आपके मस्तिष्क पर रखते समय मुझे राजमाता कैकेयी को धन्यवाद देना है जिनकी कृपा से आज भारतवर्ष उस भारी चिन्ता से मुक्त हो गया है जिसने वर्षों से भारत के ऋषिमण्डल को चिन्तित कर रक्खा था। संसार में महारानियाँ हुईं और बहुत हुईं, परन्तु देश हित के लिये पति और पुत्र ही नहीं, अपने शुभ नाम को भी स्वाहा करना इसी देवीके भाग्य में था। हम जैसे तुच्छ लोगों के नेत्र इनके तेज को देख नहीं सकते। यह हम से बहुत उच्च हैं। इनके अतिरिक्त इस कार्य में महारानी सीता की तपस्या का जो भाग है उसे सब लोग जानते हैं। महाराज-कुमार लक्ष्मण जी की धर्मपत्नि उर्मिला देवी जी ने इन चौदह वर्षों में जो त्याग दिखाया है, उसे भरी सभा में स्वीकार करना मेरा कर्त्तव्य है। राजमाता कौशल्या और सुमित्रा ने जो कष्ट सहे हैं, उन्हें स्वेच्छा से सहना इन्हीं का कार्य था। किस किस का नाम लूँ, इस कुल के एक एक व्यक्ति ने देश का कष्ट निवारण करने में जिस भाँति अपना सर्वस्व बलिदान किया है, वह सदैव के लिये इतिहास का विषय बन गया है। संसार में राजा और राजकुमार आयेंगे, परन्तु भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न जैसे राजकुमारों, सीता, उर्मिला मांडवी, श्रुतिकीर्ति जैसी राजकुमारियों, और कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा जैसी राजमाताओं को कोशल देश की ही शोभा बढ़ाने के लिये उत्पन्न किया गया था। इनका नाम लेते ही हमारा सिर इनके चरणों में

स्वयंमेव झुका जाता है। इसलिये अधिक न कहता हुआ मैं कोशल देश की प्रजा की ओर से यह मुकुट आपके शीश पर रखता हूं। समस्त ब्राह्मणमण्डल, मन्त्रिमण्डल, नहीं नहीं भारत के मनुष्य मात्र का यह आशीर्वाद है कि आप इस मुकुट को धारण करते हुए देश के दुःख को अपना दुःख समझें और उसके सुख में सुखी हों।"

वशिष्ठ जी के भाषण के उत्तर में रामचन्द्र जी ने कहा "गुरुदेव! ऋषिवरो। राज्यधिकारियो! तथा कोशल देश के वासियो! जो कथन किया गया है उसके उत्तर में मुझ से कुछ कहते नहीं बनता। भारत देश और वानर देश तथा राक्षस द्वीप को मित्रता के सूत्र में पिरोने में मैंने जो कुछ किया है, वह असम्भव था यदि राजमाता कैकेयी जी समय पर अपना कर्त्तव्य पालन न करतीं। पिता जी ने इनकी महत्ता को न समझा, भ्राता भरत ने इन पर क्रोध किया, और असम्भव नहीं था कि यह उनके प्रेम में बन्ध कर सीधे मार्ग से भटक जातीं। परन्तु इनकी दृष्टि आदर्श से इधर उधर नहीं हुई। यह भारत देश का सौभाग्य था। इसलिये उस महान् कार्य की पूर्ति का सेहरा इन्हीं के शिर पर है, मैं तो निमित्त मात्र ही था। इसी भाँति भ्राता लक्ष्मण ने मेरी जो सहायता की है, दुःख सागर में डूबते हुये मुझे एक नहीं अनेक अवसरों पर जिस प्रकार इन्होंने सांत्वना दी है, वह असम्भव होता यदि बहिन उर्मिला अपनी तपस्या से इनकी सहायता न करती। बनों के

भीतर विचरते हुये जानकी जी मेरी सहायक थीं, परन्तु इस देवी ने पति की आज्ञा को शिरोधार्य करके माताओं की आज्ञा को अपना लक्ष्य बनाया। यह इसी की घोर तपस्या का परिणाम था कि जानकी जी के वियोग के समय जहाँ मैं अत्यन्त दुखी था, लक्ष्मण जी के पांव नहीं डगमगाये। मैं इन दोनों के प्रति कृतज्ञता का किन शब्दों में प्रकाश कर सकता हूं?

जगत् में माता पिता भ्राताओं को उत्पन्न करते हैं, परन्तु मेरे जैसा भाग्यवान कौन है जिसे भरत और शत्रुघ्न जैसे भ्राता मिले हों। संसार में राज्य के लिये मनुष्यों ने माता पिता तक के रक्त से हाथ रंगे हैं, परन्तु वही राज्य यदि किसी के लिये प्रलोभन नहीं बन सका तो वह यही महा-पुरुष हैं।

गुरु जी और मन्त्रिमण्डल तथा राज्याधिकारियों ने मेरी अनुपस्थिति में आप लोगों की जो सेवा की है उसके लिये कृतज्ञता का प्रकाश करना आवश्यक है। आशा है कि वह भविष्य में भी उसी भांति आप लोगों की सेवा में तत्पर रहेंगे।

परमपिता परमात्मा मुझे शक्ति दें कि जो भार आप आज मेरे निर्बल कन्धों पर रख रहे हैं, मैं उसे उठा सकूं।"

करतल ध्वनि और साधु साधु के शब्दों में महाराज सिंहासन पर विराजमान हुए, तो सभा मण्डप "श्री रामचन्द्र

जी की जय" "जनकनन्दिनी सीता महारानी की जय" के नारों से गूंज उठा।

इस अवसर पर श्री रामचन्द्र जी ने एक लक्ष घोड़े, एक लक्ष गौएँ, एक सहस्र वृषभ, और तीस करोड़ स्वर्ण मुद्रा, ब्राह्मणों को दान दीं। एक बहुमुल्य माला सुग्रीव जी के कण्ठमें डाली। रत्न जटित भुजबंद अंगद जी की भुजा पर पहनाया, और एक बहुमूल्य माला, नाना प्रकार के वस्त्र और आभूषण सीता जी को भेंट दिये। सीता जी ने माला को कण्ठ से निकाल कर वानर सेनापतियों की ओर देखा, तो रामचन्द्र जी ने उनके मनोभावों को पढ़ते हुये कहा, "महारानी जिस पर प्रसन्न हैं उसे यह माला दे सकती हैं"। आज्ञा पाते ही सीता जी ने माला हनुमान को अर्पण कर दी। सारी सभा करतल-ध्वनि से गूंज उठी। इसी भांति समस्त वानर सरदारों तथा विभीषण जी को अमुल्य भेंट दी गईं और उनकी सरदारनियों और रानियों का भी यथायोग्य सन्मान किया गया। प्रजा को कई वर्षों का कर क्षमा किया गया।

❀ ❀ ❀

समय बीत गया, रामराज्य में प्रजा सुख का जीवन व्यतीत कर रही थी, जब विदित हुआ कि मधुवन में मधु नाम राक्षस ने शरारतें आरम्भ कर दी हैं। उसे दण्ड देने के लिये स्वयंसेवक बुलाए गये तो शत्रुघ्न जी ने अपने को इस कार्य के लिये अर्पण किया। रामचन्द्र जी ने उसी समय अभिषेक

की सामग्री मंगाई और शत्रुघ्न जी को मधुवन (मथुरा) का राजा बना कर एक भारी सेना के साथ उधर भेज दिया। शत्रुघ्न जी इस सन्मान के लिये प्रस्तुत नहीं थे, परन्तु ज्येष्ठ भ्राता के सन्मुख आंखें ऊंची करना नहीं सीखे थे और कहने की आवश्यकता नहीं कि उन्होंने अल्पकाल में मधुवन को राक्षस हीन करके उस पर अधिकार कर लिया।

यह हो चुका तो समाचार मिला कि पंचनद के सीमावर्ती गन्धर्व लोग युधाजित जी को कष्ट दे रहे हैं। उनकी ताड़ना के लिये एक भारी सेना भरत जी और उनके पुत्रों पुष्कल और तक्ष की अध्यक्षता में पंचनद देश (पंजाब) को भेजी गई। उन्हों ने सीमा प्रदेश को विजय करके पुष्कलावती और तक्षशिला नामी नगरों की नींव डाली। तत्पश्चात् उस ओर का राज्य भरत जी को सौंपा गया।

इसी भाँति लक्ष्मण जी के पुत्रों अंगद और चन्द्रकेतु को कारूपथ ❋ और मल्लदेश × का राज्य देकर उनके नाम पर अंगदाय और चन्द्र कान्त नामक नगर बसाये गये।

❋ ❋ ❋

रामचन्द्र जी और सीता जी को ईश्वर ने युगल पुत्र दिये, जिनके नाम लव और कुश रक्खे गये। लव के नाम पर लवपुर बसा (जहां बैठ कर हमने इस कथा को समाप्त किया) और कुश के नाम पर कुशपुर या कसूर की नींव पड़ी।

❋ काला बाग–सिन्ध नदी के किनारे × मुल्तान प्रदेश

उपसंहार

श्री रामचन्द्र जी के सर्वप्रथम इतिहास लेखक महर्षि वाल्मीकि जी अपनी पुस्तक के अन्त में लिखते हैं :— "महाराज रामचन्द्र जी के राज्य में न विधवाओं का विलाप सुनने में आया, न सर्प से किसी को भय हुआ, न कोई रोग से दुखी हुआ। तस्कर तो राज्य में थे ही नहीं, पाप के कोई निकट न फटकता था, युवा मृत्यु कहीं न थी। सभी लोग प्रसन्न थे, सभी धर्मपालक थे और महाराज रामचन्द्र का आदर्श सन्मुख रखते हुये किसी को कष्ट नहीं देते थे। उस समय लोग दीर्घायु थे। वृक्षों की जड़ें दृढ़ होती थी, वृक्ष फल फूलों से लदे थे, वर्षा समय पर होती थी।"

क्यों न होता ? क्योंकि राज्य के स्वास्थ्य विभाग का प्रथम कर्त्तव्य रोग के कारणों का विनाश करना था। वैद्यों को वेतन रोग के उपचार के लिये नहीं रोग का बीज नाश करने के लिये मिलता था। वही वैद्य उच्चपद का अधिकारी समझा जाता था जिस के प्रदेश में कोई रोगी नहो। राज्य के कृषि विभाग का कार्य केवल कर एकत्र करना नहीं था, बल्कि भूमि में उत्पन्न होने वाले रोगों का प्रबन्ध करके उसे उपजाऊ बनाना था। पुलिस का कार्य्य प्रजा और उसके धनधान्य की रक्षा करना था न कि उस पर दबाव डालना।

अध्यापक देश की सन्तान को विद्या धन से धनवान बनाते थे, उसके बदले उनके और उनके परिवार के भरण पोषण की चिन्ता राज्य को थी, इसलिये उन्हें ट्यूशन (Tuition) ढूँडने की आवश्यकता न थी। राज्य कर्मचारी प्रजा के सेवक थे न कि हाकिम, इस लिये देश में अशान्ति का चिह्न भी न था। देश में चारों ओर दूध घृत की नदियाँ बहती थीं। राजा स्वयं यज्ञों के इच्छुक थे, इसलिये प्रजा का प्रत्येक व्यक्ति अग्निहोत्र करना अपना प्रथम कर्त्तव्य समझता था। परमात्मा करें कि फिर से वह समय आये, कि राजा और प्रजा परस्पर सुख दुःख के साथी बनें, ताकि जगत् में चारों ओर सुखशान्ति का सम्राज्य हो।

१२ अक्टूबर १६४८ शुक्रवार (लवपुर)

२१ अक्तूबर स० १६४६ ई० शुक्रवार (देहली)